UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186419
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 500.7 R25V   Accession No. H 3106

Author रावत, D.S.

Title विज्ञान-विहार 1961.

This book should be returned on or before the date last marked below.

विज्ञान-शिक्षण

(Teaching of Science)

(एल० टी, बी० टी०, बी० एड० आदि के विद्यार्थियों
तथा विज्ञान के अध्यापकों के लिये)

लेखक—

डी० एस० रावत

एम० एस-सी०, एल० टी०, एम० ए० एजूकेशन (बर्मिन्घम)
बी० आर० कालेज आफ एजूकेशन
आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक :
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

Checked 1965

[लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित]
प्रथम संस्करण—१९६१
मूल्य—चार रुपया

Checked 1969

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुज़फ़्फ़र खाँ, आगरा

विज्ञान प्रेमियों

को

दो शब्द

प्रायः सभी इस बात से सहमत हैं कि भारतीय विद्यालयों में विज्ञान की प्रगति मन्द गति से हो रही है। सरकार तथा जनता इस तथ्य से परिचित भी हैं। इस बात का हर्ष है कि सरकार विज्ञान की प्रगति हेतु कदम उठा रही है। इसके लिए सरकार विज्ञान के अनेकों अध्यापकों को विदेश भेज रही है ताकि वे वहाँ जाकर विज्ञान शिक्षण के सम्बन्ध में नवीन बातों का ज्ञान प्राप्त करें और उन्हें अपने देश के विद्यालयों में प्रयोग करें ताकि अपने देश के विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण का स्तर ऊँचा हो सके। लेखक ने भी इङ्गलैन्ड जाकर इस बात का अध्ययन करने का प्रयत्न किया कि किन कारणों से हमारे विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण का स्तर उतना ऊँचा नहीं उठ पाया है जितना कि इङ्गलैण्ड के विद्यालयों का है। इसी अध्ययन से प्रभावित होकर लेखक ने इस पुस्तक को रचने का प्रयास किया है। सम्भव है कि प्रशिक्षण विद्यालयों के छात्र तथा विज्ञान के अध्यापक इस पुस्तक से लाभान्वित हो सकेंगे।

लेखक ने पुस्तक को बोल-चाल की भाषा में लिखा है ताकि भाषा की जटिलता से वह उद्देश्य नष्ट न हो जावे जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पुस्तक को लिखा गया है। पुस्तक को लिखने में यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रशिक्षण विद्यालयों के छात्राध्यापक विज्ञान शिक्षण की आधुनिक समस्याओं को समझ सकें और उन समस्याओं का हल ढूँढ़ने में रुचि ले सकें। पुस्तक लिखते समय लेखक ने प्रशिक्षण विद्यालयों के पाठ्य-क्रम को भी ध्यान में रखा है। हाँ इतना अवश्य है कि विषय को एक नवीन ढङ्ग से प्रस्तुत किया है ताकि विज्ञान शिक्षण में एक नया परिवर्तन सम्भव हो सके।

लेखक ने इस पुस्तक में अपने द्वारा बनाई गई उस 'विज्ञान परीक्षा'

को भी दिया है जिसके द्वारा भारतीय विद्यार्थियों की तुलना इंगलैंड के विद्यार्थियों से की गई। विज्ञान शिक्षण की अनेकों समस्याओं को भी स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। विज्ञान शिक्षण का स्तर ऊँचा उठाने के हेतु कुछ सुझाव भी दिये गए हैं।

लेखक अपने प्रयास को तभी सफल समझेगा जब कि छात्राध्यापक तथा विज्ञान के अध्यापक इससे लाभान्वित हो सकेंगे।

लेखक अपने उन सभी मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता है तथा उनके प्रति आभार प्रकट करता है जिन्होंने उसे इस पुस्तक की रचना में सहयोग दिया। लेखक अपने प्रकाशक, श्री भोलानाथ जी अग्रवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, हॉस्पिटल रोड, आगरा, के प्रति अपना आभार प्रकट करता है जिन्होंने समय का अभाव होते हुए भी पुस्तक को प्रकाशित करने का प्रयास किया।

आगरा, १ जनवरी १९६१ —लेखक

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
(१)	भारतीय विद्यालयों तथा इंगलैन्ड के माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षण का विकास— प्रस्तावना, इङ्गलैन्ड में विज्ञान-शिक्षण का विकास, भारतवर्ष में विज्ञान-शिक्षण का विकास, प्रश्न ।	१–६
(२)	आधुनिक जीवन में विज्ञान की महत्ता तथा उसका पाठ्य-क्रम में स्थान— विज्ञान की महत्ता, विज्ञान का विद्यालय के पाठ्य-क्रम में स्थान, प्रश्न ।	१०–२०
(३)	माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षण के उद्देश्य— उद्देश्य की आवश्यकता, माध्यमिक विद्यालयों के लिए विज्ञान-शिक्षण के उद्देश्य, विज्ञान की विषय-वस्तु का वास्तविक ज्ञान, समस्या हल करने की योग्यता का विकास, अभिवृत्तियों का विकास, रुचियों का विकास, प्रश्न ।	२१–२८
(४)	विज्ञान का अन्य विषयों से सम्बन्ध— विज्ञान तथा साहित्य, विज्ञान तथा इतिहास, विज्ञान तथा गणित, विज्ञान तथा	२६–३४

भूगोल, विज्ञान तथा संगीत-शास्त्र, विज्ञान तथा स्वास्थ्य विज्ञान, विज्ञान तथा कला, प्रश्न ।

(५) माध्यमिक विद्यालयों के विभिन्न स्तरों के लिए सामान्य विज्ञान का पाठ्य-क्रम— ३५–४३

पाठ्य-क्रम के चुनाव पर कुछ विचार, प्रारम्भिक विज्ञान के लिए पाठ्य-क्रम का चुनाव, प्रारम्भिक विद्यालयों में विज्ञान की विषय-वस्तु चुनने के लिए सिद्धान्त, जूनियर स्कूलों के सामान्य विज्ञान के पठन-पाठन के लिए विषय-वस्तु का चुनाव, विषय-वस्तु के चुनाव में पाठ्य-पुस्तक का महत्त्व, विषय वस्तु को विद्यार्थियों की व्यवस्थापन सम्बन्धी आवश्यकताओं के आधार पर चुनना, माध्यमिक विद्यालयों के लिए विज्ञान की विषय वस्तु का चुनाव, प्रश्न ।

(६) विज्ञान-शिक्षण की विधियाँ— ४४–६१

विधि की आवश्यकता, व्याख्यान विधि, पाठ्य-पुस्तक विधि, समस्या विधि, योजना पद्धति, प्रयोग प्रदर्शन विधि, प्रयोगशाला विधि, पर्यटन पद्धति, प्रश्न ।

(७) अच्छे विज्ञान शिक्षक की योग्यताएँ— ६२–६९

अच्छे विज्ञान शिक्षक की आवश्यकता, विज्ञान शिक्षकों की योग्यता के सम्बन्ध में खोजें, अच्छे विज्ञान के अध्यापक की आवश्यक योग्यताएँ, प्रश्न ।

(८) विज्ञान प्रयोगशाला— ७०–७८

प्रयोगशाला की आवश्यकता, भारतीय माध्यमिक विद्यालयों की प्रयोगशाला के लिए सुझाव, प्रयोगशाला में वस्तुओं को सुरक्षित

रखने की आवश्यकता, प्रयोगशाला में सामग्री कहाँ से प्राप्त की जा सकती है, प्रश्न ।

(९) विज्ञान-शिक्षण के सहायक साधन— ७९–८७

पर्यटन, चित्र, पदार्थ, नमूना, प्रतिमान, फिल्म स्ट्रिप, चार्ट, ग्राफ, नकशे, रेखाचित्र, रेडियो, प्रश्न ।

(१०) विज्ञान-संग्रहालय, एक्येरियम, वाईवेरियम तथा टरेरियम— ८८–९७

विज्ञान संग्रहालय की आवश्यकता, विज्ञान संग्रहालय मे पदार्थों, नमूनों तथा प्रतिमानों को कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है ? जीवों, वनस्पतियों तथा अन्य पदार्थों को एकत्रित करने तथा सुरक्षित रखने के उपाय, एक्येरियम, वाईवेरियम, टरेरियम, प्रश्न ।

(११) पर्यटन— ९८–१०६

पर्यटन की आवश्यकता, पर्यटन के स्थान, पर्यटन के लिए तैयारी, पर्यटन के बाद क्या ? प्रश्न ।

(१२) भारतीय विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा के सुधार हेतु कुछ सुझाव— १०७–११४

(१३) विज्ञान परीक्षा— ११५–१५९

प्रस्तावना, अच्छी परीक्षा की विशेषताएँ, साफल्य परीक्षा का अर्थ, विज्ञान विषय में साफल्य परीक्षा का निर्माण तथा प्रमापीकरण, विज्ञान की साफल्य परीक्षा का उदाहरण, विज्ञान परीक्षा का प्रयोग करने के लिए साधारण आदेश, विज्ञान परीक्षा का प्रयोग करने की विधि, अंक प्रदान करने की विधि, विज्ञान परीक्षा के परिणामों की व्याख्या, साधारणविज्ञान परीक्षा (लेखक द्वारा

बनाई गई है), विज्ञान परीक्षा में अंक प्रदान करने की कुंजी, प्राप्ताङ्कों को प्रतिशतीय अंकों में परिवर्तित करने के लिये तालिकाएं, प्रश्न।
विज्ञान शिक्षण सम्बन्धी पाठ-सूत्रों के कुछ नमूने— १६१–२०५
परिशिष्ट २०७–२२०
सहायक पुस्तकों की सूची। २२१–२२३

— :o: —

अध्याय १

भारतीय विद्यालयों तथा इंगलैन्ड के माध्यमिक विद्यायलों में विज्ञान शिक्षण का विकास

(Dovelopment of the Teaching of Science in Secondary Schools of India and England)

प्रस्तावना :

भारतीय विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण के विकास का अध्ययन करने के लिये पाश्चात्य देशों के विद्यालयों और विशेषकर इंगलैन्ड के विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण का विकास देखना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि हमारे देश की शिक्षा में इंगलैन्ड की शिक्षा का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। यद्यपि प्राचीन भारतवर्ष में ज्योतिष विज्ञान, आयुर्विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि में अधिक प्रगति हुई परन्तु विज्ञान एक स्तर से अधिक प्रगति न कर सका और जो कुछ प्रगति हुई भी वह धीरे-धीरे मन्द होती चली गई। हमें इसका कारण स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है। हो सकता है उपजाऊ भूमि होने के कारण हमें वैज्ञानिक साधनों की आवश्यकता न हुई हो या सामान्य जलवायु की प्राप्ति के कारण उन साधनों की आवश्यकता न हुई हो जिनसे कपड़े अथवा मकान आदि तैयार करने में सहायता मिलती है। हम उन कारणों को निश्चित रूप से नहीं बतला सकते हैं।

वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दि में शिक्षा शास्त्रियों ने विज्ञान विषय को विद्यालयों में मुख्य स्थान देने की आवाज उठाई। उसके पहिले इस विषय को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता था। हम देखें कि इंगलेंड में विज्ञान शिक्षण का विकास किस प्रकार हुआ और तब हम भारतीय विद्यालयों में उसके विकास के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

इंगलैन्ड में विज्ञान शिक्षण का विकास—इंगलेन्ड में १८ वीं शताब्दि तक विज्ञान के ऊपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यूनिवर्सिटियों में इसको कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। हाँ, 'Non-conformist academies' में इसको थोड़ा बहुत माना जाता था। उस समय बहुत बड़े-बड़े वैज्ञानिक पैदा हुए जिनमें कैभेन्डिश, प्रीस्टले, जेम्स वाट आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उसी समय कला तथा व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ सोसाइटीज़ का निर्माण किया गया; जैसे—Society of Arts, London (१७५४); The Philosophical Society, Manchester (१७८१); The Lunar Society of Birmingham (१७६६) आदि। इन सोसाइटीज का निर्माण करने तथा सेवा करने का कार्य भार कुछ बड़े-बड़े वैज्ञानिकों; जैसे—जूल, वाट, प्रोस्टले, डाल्टन, डारविन आदि के ऊपर था। इन्हीं लोगों ने जनता में विज्ञान को फैलाने का प्रयत्न किया।

१७६६ में रमफर्ड (Rumford) के प्रयत्नों के प्रभाव से 'रौयल इन्स्टीट्यूशन आफ ग्रेट ब्रिटेन' की नींव पड़ी। इस संस्था के निर्माण का उद्देश्य यांत्रिक व्यवसाय वाले लोगों को दार्शनिक उपदेशों की सहायता से तथा प्रयोगों की सहायता से विज्ञान विषय की व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता बतलाना था। इस संस्था के कार्यकर्त्ताओं में सर हम्परी डेवी तथा फैरेडे सुविख्यात हैं। इन लोगों के अनुसन्धान इतने महत्त्वपूर्ण थे कि संस्था में इन लोगों के व्याख्यान सुनने के लिये जनता की भीड़ एकत्रित होने लगी। कुछ समय पश्चात् इस संस्था का उद्देश्य ही अनुसंधान कार्य करना हो गया और यह संस्था अन्वेषणों का केन्द्र बन गई।

उन्नसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में विज्ञान के इतिहास में एक महत्त्व पूर्ण घटना यह हुई कि इंगलैन्ड में अनेकों मेकेनिकस् इन्स्टीटयूटस् (Mechanic's Institutes) का निर्माण किया गया। इन संस्थाओं ने कारखानों में यांत्रिक कार्य करने वाले अनेकों नौजवानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। वे इन संस्थाओं में कला तथा विज्ञान सीखने के

लिये आने लगे। धीरे-धीरे अनेकों दार्शनिक संस्थाओं का उदय होने लगा और निर्धन लोगों की शिक्षा के लिये अनेकों संस्थाएं बनाई गईं। १८६१ से १८६४ तक सरकार ने एक जाँच कमीशन बिठलाया जिसका कार्य इंगलैन्ड के उस समय के ६ पब्लिक स्कूलों के संगठन तथा कार्य की जाँच करना था। इस कमीशन की रिपोर्ट से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय पब्लिक स्कूलों में विज्ञान विषय का क्या स्थान था। कमिशनरों का कहना है कि यद्यपि पब्लिक स्कूलों में लैटिन तथा ग्रीक को महत्व दिया गया था तथा उनके लिये सब सुविधा के साधन उपलब्ध थे परन्तु सामान्य विज्ञान को पाठ्य-क्रम में कोई स्थान नहीं दिया गया। इन कमिशनरों ने पाठ्य-क्रम में सामान्य विज्ञान के इस अभाव को उसका एक बहुत बड़ा दोष घोषित किया। उन्होंने सुझाव दिया कि जहाँ सम्भव हो पाठ्य-क्रम में सामान्य विज्ञान को स्थान दिया जाना चाहिये। उसको दो भागों में पढ़ाया जाना चाहिये—एक भाग में भौतिक विज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान तथा दूसरे भाग में शरीर विज्ञान तथा सामान्य इतिहास। रगबी (Rugby) नामक स्कूल में भौतिक विज्ञान १८३७ से ही पढ़ाया जाता था। १८-५६ में इसमें रासायान विज्ञान, वनस्पति विज्ञान तथा भू-विज्ञान का शिक्षण भी प्रारम्भ कर दिया गया। इसी समय इस स्कूल में एक विज्ञान प्रयोगशाला तथा विज्ञान की एक विशेष कक्षा का निर्माण किया गया।

इंगलैन्ड में १८५१ में महान् प्रदर्शनी (Great Exhibition) हुई और इसी प्रदर्शनी ने लोगों को विज्ञान विषय को विद्यालयों में स्थान देने के लिये प्रेरणा दी। अब स्थान-स्थानों से लोग विज्ञान विषय को पाठ्य-क्रम की विषय वस्तु बनाने का नारा लगाने लगे। इसके परिणाम स्वरूप १८५३ में सरकार ने विज्ञान तथा कला के लिये एक डिपार्टमैन्ट की स्थापना की ताकि इन विषयों को प्रोत्साहन मिल सके। इसी समय जान टिन्डल (John Tyndall) ने इस बात की घोषणा की कि भौतिक विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र का एक मुख्य अङ्ग है। फैरैडे (Faraday) ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करने की आवश्यकता पर बल दिया। हरबर्ट स्पैन्सर (Herbert Spencer) ने, जो कि इस बात पर विश्वास करते थे कि विज्ञान का ज्ञान अन्य सब ज्ञानों से महत्त्वपूर्ण है, १८६१ में अपने चार निबन्धों को प्रकाशित किया जिनका नाम था 'शिक्षा, बौद्धिक, नैतिक तथा शारीरिक'। इनमें उन्होंने सामान्य शिक्षा में

विज्ञान के महत्त्व पर बल दिया। टी० एच० हक्सले (T. H. Huxley) ने अपने प्रभावशाली शब्दों में इस बात का प्रचार किया कि माध्यमिक विद्यालयों की प्रत्येक योजना में विज्ञान को स्थान दिया जाना चाहिये। उनकी पुस्तक 'Physiography' एक प्रसिद्ध पाठ्य-पुस्तक मानी जाने लगी। इस प्रकार जब चारों ओर से विज्ञान की गूँज अध्यापकों के कान तक पहुँचने लगी तो उन्होंने सामान्य विज्ञान को पूर्ण शिक्षा का एक मूल्यवान अङ्ग मानना आरम्भ कर दिया और वे निरीक्षण, तर्क तथा निर्णय शक्ति पर बल देने लगे और यह भी समझने लगे कि इन शक्तियों के विकास के लिये वैज्ञानिक प्रशिक्षण आवश्यक है। इसी समय कैम्ब्रिज तथा ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में सामान्य विज्ञान कोर्स खोला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक विद्यालयों में भी सामान्य विज्ञान को पाठ्य-क्रम में रखने के लिये अध्यापकों को उत्सुकता बढ़ने लगी और इस विषय के लिये आगे का रास्ता खुल गया।

उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान की क्या स्थिति थी, इसके लिये हम 'डोविनशायर कमीशन' की रिपोर्ट (Report of Dovinshire Commission) को पढ़ सकते हैं जो कि १८-७५ में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट ने उन कुछ कठिनाइयों पर प्रकाश डाला जो कि विज्ञान विषय को विद्यालयों में स्थान देने के लिये थीं। साथ ही साथ इस कमीशन ने दो महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित सुझाव दिये।

(१) 'प्रत्येक पब्लिक स्कूल तथा उन स्कूलों में जिनको किसी प्रकार का दान मिलता है विज्ञान विषय को अध्ययन विषयों का एक विशेष अङ्ग मानना चाहिए तथा उसके अध्ययन के लिये अधिक समय दिया जाना चाहिये। इस विषय के अध्ययन के लिये एक सप्ताह में कम से कम ६ घंटे रखे जाने चाहिये।'

(२) 'भौतिक विज्ञान तथा रासायन विज्ञान के लिये प्रत्येक विद्यालय में अलग-अलग प्रयोगशालाएँ होनी चाहिये।'

यद्यपि स्कूलों के मैनेजर इस बात का अनुभव करने लगे कि इन प्रयोगशालाओं के निर्माण में तथा विद्यालयों में विज्ञान विषय प्रारम्भ करने में अधिक धन व्यय होता है इसलिये वे इस विषय को अपने-अपने विद्यालय में प्रारम्भ करने में हिचकते थे। परन्तु प्रधानाचार्यों को विज्ञान विषय का महत्त्व पूर्णरूप से ज्ञात हो चुका था और वे इस बात पर डटे रहे कि उनके विद्यालयों में विज्ञान विषय अवश्य प्रारम्भ

किया जाता है। वास्तव में डोविनशायर रिपोर्ट ने ही विद्यालयों में विज्ञान विषय का प्रारम्भ करवाया और इसी के परिणाम स्वरूप लड़कों के विद्यालयों में भौतिक विज्ञान तथा रासायन विज्ञान पढ़ाये जाने लगे और लड़कियों के विद्यालयों में वनस्पति विज्ञान पढ़ाया जाने लगा। जिन विद्यालयों में विज्ञान विषय खोला गया उन्हें सरकार सहायता भी देने लगी। पब्लिक इक्ज़ामिनेशन (Public Examination) में भी विज्ञान विषय को स्थान मिलने लगा।

विज्ञान शिक्षण के इतिहास में प्रोफेसर आर्म स्ट्रांग (H. E. Armstrong) का नाम प्रमुख है। उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान शिक्षण की प्रगति का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं को है। इन्होंने ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic Method) को जन्म देकर विज्ञान शिक्षण को एक बहुत बड़ी देन प्रदान की। इस विधि के अनुसार हम विद्यार्थी को विज्ञान विषय इस प्रकार पढ़ाते हैं कि वह एक मूल अनुसन्धानकर्त्ता की तरह कार्य करे और स्वयं नई खोज करे तथा खोज करके सीखे। आर्म स्ट्रांग महोदय के शब्दों में "All pupils even the beginners, should be allowed to discover things for themselves and should be put in a position of an original discoverer"*

इस विधि का बहुत शीघ्र प्रचार होने लगा और यह विज्ञान शिक्षण की एक प्रमुख विधि मानी जाने लगी। आजकल यद्यपि समय के परिवर्तन के साथ-साथ इस विधि में भी परिवर्तन कर दिया गया है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब भी हम इस विधि के आधार पर विज्ञान विषय का अध्यापन करते हैं। हम इस बात को मानते हैं कि विज्ञान विषय को विद्यार्थी के अनुभव के आधार पर पढ़ाना चाहिये न कि पाठ्य-पुस्तक के आधार पर। इस कथन में ह्यूरिस्टिक विधि का भाव छिपा है।

प्रथम महायुद्ध ने विज्ञान का महत्त्व समझने के लिये जनता की आँखें खोल दीं। द्वितीय महायुद्ध ने तो जनता को इस बात के लिये सचेत कर दिया कि व्यक्ति, समाज तथा देश की सुरक्षा तथा सत्ता के लिये विज्ञान अति आवश्यक है। इसी समय इंगलैन्ड के प्रधान मन्त्री ने सर जे० जे० थामसन (Sir J. J. Thomson) की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई जिसका कार्य विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में सामान्य

*Armstrong, H. E. : 'The Teaching of Scientific Method.' Macmillan Co., New York, 1910.

विज्ञान की स्थिति की जाँच करना तथा शिक्षा प्रणाली में उसके महत्त्व की जाँच करना था। इस कमेटी ने सन् १६१८ में 'नेच्यूरल साइन्स इन एड्यूकेशन' नाम की रिपोर्ट प्रकाशित की। यद्यपि इस कमेटी के कुछ सुझावों को अब तक कार्य रूप में परिणत नहीं किया जा सका फिर भी इस रिपोर्ट ने विद्यालयों में विज्ञान के पाठ्य-क्रम में अधिक सुधार किया। इसके आधार पर अनेक संस्थाओं में उच्च विज्ञान का अध्ययन कराया जाने लगा। इसी समय 'साइन्स मास्टर्स एसोशियेशन' (Science Masters' Association) नाम की संस्था तथा 'वीमन साइन्स टीचर्स' (Women Science Teachers) नाम की संस्थाओं का निर्माण किया गया। इसी कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर विज्ञान की अनेक अच्छी पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित की गई। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि विज्ञान शिक्षण में एन नवीन जीवन का उदय हुआ। विज्ञान के अध्यापकों की उक्त लिखित संस्था ने विज्ञान शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अनेकों प्रयत्न किये। अध्यापकों की सभाओं तथा वाद-विवाद के परिणाम स्वरूप पाठ्य-क्रम में अधिक सुधार सम्भव हो सका। इन्हीं के आधार पर परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन किये गये और उसमें सुधार किये गये। विज्ञान शिक्षण की नवीन विधियों को जन्म मिलने लगा।

भारतवर्ष में विज्ञान शिक्षण का विकास—पाठक इस बात में आश्चर्य करेंगे कि भारतवर्ष में विज्ञान शिक्षण का विकास देखने के लिये हमें इंगलैन्ड के विज्ञान शिक्षण के विकास को देखने की क्या आवश्यकता है। वास्तविक बात यह है कि हमारे देश में विज्ञान शिक्षण इंगलैन्ड की विज्ञान शिक्षण पद्धति से बहुत कुछ प्रभावित हुआ है। इसलिये अपने देश में विज्ञान शिक्षण का विकास देखने के लिये हमें इंगलैन्ड में इसका विकास देखना अनिवार्य है। जो कुछ इंगलैन्ड में होता गया उसका बहुत कुछ प्रभाव हमारे विद्यालयों में भी पड़ता गया। इतना अवश्य था कि हमारे देश में जो कुछ विकास होता था वह मन्द गति से होता था। ऐसा भी हुआ कि कमेटियों ने अनेकों सुझाव प्रस्तुत किये परन्तु उनको अलमारियों में बन्द करके रख दिया गया। इन सुझावों के अनुसार कार्य करने में कोई अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं थी परन्तु सुधार करने की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया। उदाहरण के रूप में केवल एक दृष्टान्त ले लीजिये। १८८७ में भारतीय सरकार ने कुछ एंग्लो वर्ना-

क्यूलर स्कूलों के उच्च विभागों में टैकनिकल एड्यूकेशन प्रारम्भ करने के लिये सुझाव दिया और प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इस ओर केन्द्रित करने का प्रयत्न किया। इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने वाले सर एन्टोनी मैकडोनल (Sir Antony Macdonnal) थे। टैकनीकल एड्यूकेशन को दो भागों में बाँटा गया--एक तो प्राथमिक तथा दूसरा विशिष्ट। प्राथमिक कोर्स का किसी व्यवसाय अथवा उद्योग से संबंध न था और न ही वह सामान्य शिक्षा से भिन्न था। केवल इतना ही था कि मिडिल स्कूलों तथा हाई-स्कूलों में ड्राइंग तथा साधारण विज्ञान को अनिवार्य विषय बनाया जाय। पंजाब सरकार ने इस प्रश्न की जाँच के लिये एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी ने जो सुझाव प्रस्तुत किये उसके अनुसार केवल ५० हजार रुपया प्रति वर्ष और व्यय होता। परन्तु सरकार ने उसके लिये केवल १० हजार रुपया प्रति वर्ष देना स्वीकार किया। इसके परिणाम स्वरूप कुछ ही एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूलों के उच्च विभागों में विज्ञान शिक्षण प्रारम्भ किया जा सका। इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान शिक्षण के लिये भारतवर्ष में कितना कम ध्यान दिया गया। सरकार द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट (१८८७-९२) को पढ़ने से यह विदित होता है कि उस समय भारतीय विद्यालयों में विज्ञान विषय का किस प्रकार तिरस्कार किया गया तथा उसकी प्रगति कितनी मन्द गति से हुई। वास्तव में देखा जाय तो इस शताब्दि के प्रारम्भ में विद्यालयों में विज्ञान विषय केवल नाम मात्र को ही था। पैंतालीस वर्ष पूर्व 'इन्डियन साइन्स कांग्रेस' का जन्म हुआ, परन्तु इसने भी विज्ञान विषय की विद्यालयों में प्रगति कराने की ओर ध्यान न देकर केवल वैज्ञानिक अन्वेषणों पर ध्यान दिया। यह नहीं सोचा गया कि वैज्ञानिक अन्वेषणों के लिये वैज्ञानिक तभी उत्पन्न होंगे जब विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण का स्तर ऊँचा उठाया जाय। मुदालियर कमीशन की रिपोर्ट को पढ़ने से यह ज्ञात हो जावेगा कि कुछ ही समय पूर्व तक भारतवर्ष में विज्ञान शिक्षण का किस प्रकार तिरस्कार किया गया। इस कमीशन ने विज्ञान शिक्षण की आधुनिक स्थिति की जाँच की और इस बात का सुझाव दिया कि सामान्य विज्ञान को हाई-स्कूलों में एक अनिवार्य विषय बनाना चाहिये। इस कमीशन ने यह तो कह दिया कि सामान्य विज्ञान को अनिवार्य विषय होना चाहिये परन्तु इस सम्बन्ध में सुझाव नहीं दिये कि उसे किस प्रकार पढ़ाया जाना चाहिए। इस कमीशन की रिपोर्ट से अध्यापकों

तथा सरकार को विज्ञान शिक्षरण के लिये प्रेरणा मिली। चूंकि अब हमारा देश भी स्वतन्त्र हो चुका था और सभी इस बात का अनुभव करने लगे थे कि अपने देश की रक्षा तथा सत्ता के लिये विज्ञान की प्रगति होनी चाहिये इसलिये विद्यालयों में विज्ञान विषय की ओर शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान आकर्षित होने लगा। स्थान-स्थान से विज्ञान-शिक्षरण में सुधार करने के लिये सुझाव दिये जाने लगे। मुदालियर कमीशन के सुझावों को कार्य रूप में परिरणत करने के लिये प्रयत्न किए जाने लगे। सन् १९५६ में तारादेवी में 'आल इन्डिया साइन्स सेमीनार' हुआ जिसमें पूरे देश के कुछ विज्ञान के अध्यापक तथा विद्वान आमंत्रित किये गये। इस सेमीनार के वाद-विवाद के परिरणाम स्वरूप विज्ञान शिक्षरण में अनेकों सुधार किये जाने लगे। सरकार ने अनेकों विद्यालयों को प्रयोगशाला के निर्माण के लिए सहायता देना प्रारम्भ किया। कुछ विज्ञान के अध्यापक विदेशों में भेजे गये ताकि वे वहाँ की विज्ञान शिक्षरण पद्धतियों से परिचित हो सकें और स्वदेश लौटकर विज्ञान शिक्षरण की प्रगति के लिए प्रयत्न कर सकें। इस बात का अध्ययन करने की आवश्यकता है कि वास्तव में इन अध्यापकों के विदेश भेजे जाने से विद्यालयों को कोई लाभ हुआ या नहीं। अभी तक कोई ऐसी बात प्रकाशित नहीं हुई है जिससे यह ज्ञात किया जा सके कि इन अध्यापकों ने देश में विज्ञान शिक्षरण की उन्नति के लिए कदम उठाया है। उक्त लिखित सेमीनार ने कुछ मुख्य सुझाव दिये जिसके परिरणाम स्वरूप देश के विभिन्न विद्यालयों में साइन्स क्लब खोले गये तथा कुछ विज्ञान मन्दिरों का निर्माण किया गया। 'विज्ञान शिक्षक' नामक पत्रिका प्रकाशित की जाने लगी जिसमें विज्ञान सम्बन्धी मूल्य-वान लेख प्रकाशित होने लगे। विज्ञान शिक्षरण के मूल्याङ्कन हेतु अनेकों सेमीनार किये जाने लगे। इन सबका परिरणाम यह हुआ कि आजकल भारतीय विद्यालयों में विज्ञान विषय को प्रमुख स्थान दिया जाने लगा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे विद्यालयों में विज्ञान शिक्षरण की तीव्र प्रगति होने लगी है। वास्तविक बात तो यह है कि इतना सब कुछ होते हुए भी हमारे विद्यालयों में विज्ञान का स्तर अभी अधिक ऊँचा नहीं उठ पाया है और बहुत कुछ करने को शेष है। विज्ञान के स्तर को ऊँचा उठाने का उत्तरदायित्व सबसे पहले विज्ञान के अध्यापकों के ऊपर है।

विज्ञान के अध्यापकों को चाहिये कि वे विज्ञान का स्तर ऊँचा

उठाने का प्रयत्न करें और भविष्य के लिए वैज्ञानिकों का निर्माण करें। तभी हमारी संस्कृति तथा सभ्यता का विकास सम्भव हो सकेगा और देश की प्रगति हो सकेगी।

प्रश्न

(१) इंगलैन्ड मे विज्ञान शिक्षण का विकास किस प्रकार हुआ ? उसके इतिहास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

(२) भारतीय विद्यालयों मे इंगलैन्ड की विज्ञान शिक्षण पद्धतियों का प्रभाव किस प्रकार पड़ा ? भारतीय विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण का विकास किस प्रकार हुआ ?

(३) आजकल भारतीय विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण की प्रगति के लिये क्या-क्या कार्य किये जा रहे है ? उनका संक्षेप में वर्णन कीजिये।

(४) अपने देश में विज्ञान शिक्षण की प्रगति के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत कीजिये।

अध्याय २

आधुनिक जीवन में विज्ञान की महत्ता तथा उसका पाठ्य-क्रम में स्थान

(The Value of Science in Present-Day-Living and its Place in Curriculum)

पिछले अध्याय में हमने इस बात का वर्णन किया कि इंगलैण्ड तथा भारतवर्ष के विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण को किस प्रकार स्थान दिया गया और उसकी प्रगति किस प्रकार हुई। इस अध्याय में हम संक्षेप में इस बात पर विचार करेंगे कि आधुनिक जीवन में विज्ञान की क्या महत्ता है।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि आज का युग हमारे पूर्वजों के युग से अधिक जटिल तथा अधिक परिवर्तशील है। आज का समाज तीव्र गति से प्रति दिन बदलता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने को इस बदलते हुए समाज में व्यवस्थापित करना है अन्यथा उसका जीवन दुर्लभ हो जावेगा। हर व्यक्ति यही कहते हुए सुना जाता है कि 'हम वैज्ञानिक युग में रह रहे हैं' और इस वैज्ञानिक युग के अनुसार कार्य करने को वह प्रयत्नशील रहता है।

इस वैज्ञानिक युग में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति वैसी ही है जैसी

समुद्र में एक छोटी नाव की होती है जो लहरों के थपेड़ों अथवा आँधी तूफान के प्रभाव से डगमगाती रहती है। आज के युग में विज्ञान की प्रगति से वातावरण में नित्य दिन नया परिवर्तन हो रहा है और इस परिवर्तन के कारण हमारे समाज की परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों में परिवर्तन हो रहा है। ऐसी परिवर्तनशील परिस्थिति में व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है कि वह इस बदलते हुए समाज में अपने व्यवस्थापन की चेष्टा करे। थोड़ा सा विचार कीजिए कि कुछ वर्षों पूर्व जब बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था तो लोग घरों में दीपक अथवा लेम्प जलाकर रहते थे परन्तु आज के दिन घर-घर में बिजली का प्रयोग किया जा रहा है। हर व्यक्ति को बिजली का कुछ न कुछ ज्ञान होना आवश्यक है अयन्था उसे जीवन हानि हो सकती है। बिजली के आविष्कार ने हमारी सामाजिक स्थिति में क्या परिवर्तन कर दिया है, इसे हर व्यक्ति जानता है। पहले जिन कामों को हाथ के किया जाता था अब बिजलो के यन्त्रों से किया जाता है। चूँकि बिजली के यन्त्रों से कार्य शोघ्रता तथा सरलता से हो सकता है इसलिये व्यक्ति को अवकाश मिलने लगा। उसके लिये अपने अवकाश का उचित उपयोग करने की समस्या उठ खड़ी हुई। बेकारी के बढ़ जाने से कई व्यक्तियों को रोजी के लाले पड़ गये। दूसरो ओर बिजली के चमत्कार ने लोगों की आँखें चकाचौंध कर दीं। उद्योग-धन्धे की प्रगति दिन दूनो रात चौगुनी होने लगो। क्या यह समाज का एक आश्चर्यजनक परिवर्तन नहीं है? क्या इसमें व्यक्ति को व्यवस्थापन की आवश्यकता नहीं है?

जरा सोचिये कि बेरोजगार व्यक्ति के हृदय में नित्य दिन क्या-क्या भाव उठते होंगे और वह अपने जीविकोपार्जन के लिए क्या-क्या सोचता होगा। इस छोटे से दृष्टान्त से हम समझ गये होंगे कि विज्ञान की प्रगति ने हमारो सामाजिक स्थिति में तथा आर्थिक स्थिति में क्या परिवर्तन कर दिया और व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति में अपने सही व्यवस्थापन की क्यों आवश्यकता है।

थोड़ा और आगे बढ़ें और देखें कि आधुनिक जीवन इस वैज्ञानिक युग में किस प्रकार डगमगा रहा है और किस प्रकार विज्ञान सामाजिक तथा आर्थित परिवर्तन कर रहा है तथा किस प्रकार समाज का कल्याण कर रहा है। विज्ञान के चमत्कार का दृश्य द्वितोय महायुद्ध के समय सब लागों के सम्मुख जगमगा उठा। मानव के इतिहास में पहली बार जैट प्लेन, एटम तथा हाइड्रोजन बम का नाम सुना

जाने लगा। एक बम से संसार को सैकिन्डों में नष्ट करने की शंका पैदा होने लगी। एक ओर व्यक्ति अपने को सुरक्षित समझने लगा और दूसरी ओर असुरक्षित। वास्तव में विज्ञान एक सर्प की तरह है जिसके फन के नीचे हमारा विश्व स्थित है। एक ओर वह हमारी रक्षा करता है परन्तु यदि हम उसे थोड़ा भी गलत प्रयोग करें तो हमारे प्राण ले लेता है। क्या ऐसे सर्प रूपी विज्ञान के विषय में ज्ञान अनिवार्य नहीं? क्या इस ज्ञान के अभाव में हम अपने प्राणों से हाथ नहीं धो सकते? धीरे-धीरे रेडियो तथा टेलीविजन का आविष्कार हो गया। यद्यपि भारतवर्ष में अभी टेलीविजन का प्रचार न हो सका परन्तु वह समय भी आने में अधिक देर नहीं है। कुछ स्थानों में इसका प्रारम्भ हो चुका है। रेडियो के आविष्कार के फल स्वरूप व्यक्तियों की मनोविनोद की आदतें बदलने लगीं। पहले लोग घरों के बाहर एक-दूसरे से मिल जुलकर मनोविनोद किया करते थे। अब व्यक्ति को बाहर जाने की आवश्यकता न रही। घर पर बैठे-बैठे वह देख सकता है तथा सुन सकता है कि दुनियाँ में क्या हो रहा है। जहाँ पहले चौपाल हुआ करती थीं तथा वृद्ध लोग उपदेश दिया करते थे वहाँ रेडियो की खबरें तथा आमोद-प्रमोद के प्रोग्राम सुने जाने लगे। क्या यह हमारी सामाजिक स्थिति का परिवर्तन नहीं है? पहले बच्चे तथा युवक वृद्धों के उपदेशों से लाभ उठाते थे; एक-दूसरे से मिल-जुलकर अनेक नई बातें सीखते थे परन्तु अब इसने दूसरा रूप धारण कर लिया। रेडियो के समाचार से व्यक्ति का ज्ञान भी बढ़ने लगा। विभिन्न देशों के समाचार उसे नित्य दिन ज्ञात होने लगे। संसार एक छोटी वस्तु के रूप में हो गया जिसमें व्यक्ति दूर की आवाज सुन सकते हैं। हवाई जहाजों ने व्यक्ति को दुनियाँ के एक कोने से दूसरे कोने तक का स्थान दिखला दिया है। एक ओर इससे हजारों व्यक्तियों की मृत्यु होती है तथा दूसरी ओर भिन्न-भिन्न देश एक-दूसरे के समीप आ गये। असभ्य देशों के लिये सभ्य देशों का अनुकरण कर अपनी सभ्यता का विकास करना सरल हो गया। इससे देशों की सभ्यता में एक नया परिवर्तन हुआ। इतना सब कुछ होते हुए भी अभी यह नहीं कहना चाहिये कि जो कुछ हो चुका है वह पर्याप्त है और आगे कुछ होने को शेष नहीं है। प्रत्येक देश की जन-संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। भूचाल, आँधी, बाढ़ तथा बीमारियों से लोगों को क्षति पहुँचती जा रही है। सम्भव है वह समय शीघ्र आ जावे जब मनुष्य के लिये भोजन पर्याप्त ही न हो। विज्ञान के

सम्मुख इस समस्या को हल करने की सबसे बड़ी समस्या है। लोग अणु की शक्ति से बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये बैठे हैं। एक ओर अणु शक्ति हमारे लिये नाशवान सिद्ध हो सकती है और दूसरी ओर यही हमारी जीवनदायिनी होने वाली है। बीमारियों से बचने के लिये विज्ञान ने अनेकों उपाय निकाले हैं। चीर-फाड़ में व्यक्ति विशेषज्ञ होने लगे। इस चीर-फाड़ के फलस्वरूप एक ओर व्यक्ति की जिन्दगी समाप्त हो सकती है और दूसरी ओर उसके प्राण बचाये जा सकते हैं। नवीन आविष्कार ने रेडियोएक्टिव आइसोटोप्स (Radioactive Isotopes) को जन्म दिया। इससे सरलता से बीमारियों से बचाव किया जा सकता है। इस प्रकार देखा जाय तो विज्ञान के क्षेत्र ने हमारे सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में एक नवीन परिवर्तन कर दिया है और करता जा रहा है। इस परिवर्तन का व्यक्ति के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन उसके लिये समस्याएँ हैं और उन समस्याओं का उसे हल ढूंढ़ना है। चूँकि विज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं से है इसलिये व्यक्ति को विज्ञान का ज्ञान इस प्रकार दिया जाना आवश्यक है कि वह इन समस्याओं का हल ढूँढ सके। हमें विज्ञान को इस प्रकार पढ़ाने की आवश्यकता है कि समाज में उसका प्रयोग किया जा सके। इस वैज्ञानिक युग में प्रत्येक व्यक्ति नित्य दिन नवीन बातों का अनुभव कर रहा है तथा उसके सम्मुख नवीन समस्याएँ प्रस्तुत हो रही हैं। इसलिये विज्ञान का अध्ययन इस प्रकार किया जाना चाहिये कि इन समस्याओं का हल किया जा सके और समाज के नये ढाँचे में अपने को अनुकूलित किया जा सके।

सम्भव है कि आलोचक यह प्रश्न करेंगे कि सामाजिक परिवर्तन से विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में क्या प्रभाव पड़ सकता है और उन्हें विज्ञान का ज्ञान क्यों दिया जाना चाहिए ? यदि इस प्रश्न में ध्यान पूर्वक विचार किया जाय तो हम देखेंगे कि सामाजिक परिवर्तन का कोई अंश ऐसा नहीं है जिसका प्रभाव विद्यार्थियों के तात्कालिक जीवन में न पड़ता हो। उनके सम्मुख अनेकों समस्यायें नित्य दिन प्रस्तुत होती हैं जिनका हल विज्ञान की सहायता से ही किया जा सकता है। इसलिए अध्यापकों को चाहिए कि विद्यार्थियों को विज्ञान का ज्ञान इस प्रकार दें कि वे अपनी समस्याओं को हल कर सकें।

अब हम एक दूसरे दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं। हर व्यक्ति में

विभिन्नता होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पृष्ठभूमि, वंशपरम्परा, आवश्यकताओं, तथा संवेगों आदि में दूसरे से भिन्न होता है। अब प्रश्न यह है कि यदि विद्यार्थियों के एक समूह के सम्मुख एक ही प्रकार की समस्या है तो क्या प्रत्येक विद्यार्थी उसे हल करने के लिए एक सा ही व्यवहार करेगा ? नहीं ! ऐसी परिस्थिति में शिक्षण कार्य कठिन हो जाता है क्योंकि हमें पहले यह देखना होगा कि विभिन्न परिस्थितियों में विद्यार्थी किस प्रकार का व्यवस्थापन करता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाला के अनुसार यह अत्यन्त कठिन है। इसके लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन इतिहास से परिचित होना आवश्यक है जो कि वह कर नहीं सकता। हाँ, शिक्षक इतना कर सकता है कि आधुनिक जीवन की समस्याओं का एक विस्तृत अध्ययन करे और विद्यार्थियों को इस प्रकार पढ़ाये जिससे अधिकांश विद्यार्थी अपनी व्यवस्थापन सम्बन्धी समस्याओं का हल कर सकें। इसके लिए विभिन्न आयु के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक होगा। विथार्थियो की आवश्यकताओं को उनके व्यवहार प्रतिरूप से ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक जीवन की समस्याओं तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का अध्ययन करने से हमें एक बात यह ज्ञात होगी कि विद्यार्थियों की व्यवस्थापन की समस्याओं में विज्ञान से अनेकों प्रकार को सहायता मिल सकती है। विज्ञान विद्यार्थियों को व्यवसाय सम्बन्धी मार्ग प्रदर्शन कराने में सहायक हो सकता है। विज्ञान से विद्यार्थियों के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य का विकास किया जा सकता है। विज्ञान से हमें अपने अवकाश का उपयोग करने में सहायता मिल सकती है। विज्ञान के अध्ययन से व्यक्ति अपनी सुरक्षा के साधन प्राप्त कर सकता है। प्राकृतिक श्रोतों का उपयोग करना भी विज्ञान को सहायता से सीखा जा सकता है। विज्ञान की शिक्षा से व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल ढूँढ़ सकता है। विज्ञान की शिक्षा से व्यक्ति अपने जीवन के दर्शनशास्त्र को समझ सकता है। विज्ञान की सहायता से व्यक्ति में सामाजिक दक्षता का विकास होता है।

विज्ञान का विद्यालय के पाठ्य-क्रम में स्थान—अभी तक हमने केवल इस बात का वर्णन किया कि विज्ञान का आधुनिक जीवन में क्या महत्व है। अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि विज्ञान को विद्यालय के पाठ्य-क्रम में क्यों स्थान दिया जाना चाहिए।

विद्यालय के पाठ्य-क्रम में विषयों को स्थान देने के लिए हम उन्हें तीन दृष्टिकोणों से देखते हैं। एक तो हम यह देखते हैं कि उस विषय से मानसिक अनुशासन में सहायता मिलती है अथवा नहीं। दूसरा, हम उसकी विद्यार्थी के व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता देखते हैं। तीसरा, हम उसका सांस्कृतिक मूल्य देखते हैं। विज्ञान के विषय को यदि इन तीनों दृष्टिकोणों से देखा जाय तो वह प्रत्येक के लिए न्याय-संगत प्रतीत होता है।

मानसिक अनुशासन (Mental Discipline) अथवा नियमित प्रशिक्षण (Formal Training) एक पुरानी मनोवैज्ञानिक विचार धारा हो चुकी है। इस विचारधारा के मानने वाले लोगों की धारणा थी कि विद्यालयों में ऐसे विषय पढ़ाये जाने चाहिए जिनसे मस्तिष्क को प्रशिक्षित किया जा सके। इस विचारधारा के अनुसार विषयों की उपयोगिता अथवा बालक की ग्रहण शक्ति पर ध्यान नहीं दिया जाता था। विद्यार्थियों को ऐसे विषय पढ़ाये जाते थे जिनसे उनकी मानसिक शक्तियों (Faculties of the mind) का विकास होने की सम्भावना होती थी। धीरे-धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन हुआ और मनोवैज्ञानिकों ने प्रशिक्षण के स्थानान्तर (Transfer of Training) पर बल देना प्रारम्भ किया। इसके अनुसार यह माना जाने लगा कि यदि दो या अधिक विषयों के लिए किसी एक ही प्रकार की योग्यता की आवश्यकता हो और यदि पहले विषय में प्रशिक्षण दिया जाय तो उसका स्थानान्तर उस दूसरे विषय में होता है जिसके लिए उसी योग्यता की आवश्यकता होती है। इसके लिए अनेकों खोजें की जाने लगीं। इन खोजों के परिणाम स्वरूप यह ज्ञात हुआ कि सब विषयों का स्थानान्तर मूल्य समान नहीं होता—किसी में कम होता है तथा किसी में अधिक। कभी-कभी नकारात्मक स्थानान्तर भी होता है।*

अमेरिका में जो खोजें हुई हैं उनमें अधिक खोजों से यह ज्ञात हुआ है कि बहुत कम विषयों में धनात्मक स्थानान्तर मूल्य होता है। हम इस वाद-विवाद में यहाँ नहीं जावेंगे। विज्ञान विषय के लिए हमें मानना ही होगा कि उसके अध्ययन से वैज्ञानिक प्रशिक्षण तथा

---

* इसका पूर्ण रूप से वर्णन लेखक की पुस्तक 'शिक्षा मनोविज्ञान की नई रूपरेखा' में किया गया है। पाठक उसके पाँचवे अध्याय को पढ़ सकते हैं।

वैज्ञानिक विधि से चिन्तन करने में अवश्य सहायता मिलती है। जैसा पहिले कहा गया है कि अमेरिका में इस बात पर अधिक विश्वास नहीं किया जाता परन्तु इङ्गलैंड में अब भी यह विश्वास है कि विज्ञान के विषय से किसी न किसी प्रकार का प्रशिक्षण अवश्य होता है। डा० पील (Dr. E. A. Peel) के कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने अपने लेख में लिखा है--'Research of Thorndike, Sleight and Winch caused the theorist to abandon the disciplinary claims, at least in their writings, but practice in the grammar schools seems always to belie this change. For implied in this practice is the assumption that science, together with the grammar school subject, train for something".*

यदि हम विज्ञान के प्रशिक्षण मूल्य को मानते हैं तो विद्यालयों में इस विषय का अध्ययन अवश्य करवाया जाना चाहिए। यदि बचपन में बालकों को वैज्ञानिक ढंग से सोचने तथा तर्क करने आदि में प्रशिक्षित किया जावेगा तो भावी जीवन में वे इससे स्वयं ही लाभ नहीं उठायेंगे बल्कि समाज का भी कल्याण करेंगे।

विज्ञान को यदि उपयोगिता की दृष्टि से देखा जाय तो वह अन्य सभी विद्यालय के विषयों से प्रमुख स्थान प्राप्त करेगा। इसका विस्तारपूर्ण वर्णन इसी अध्याय के प्रारम्भ में कर दिया गया है। फिर भी हम संक्षेप में यहाँ उसे फिर से दोहारायेंगे। जिस संसार में विद्यार्थी रहते हैं उस संसार का कुछ ज्ञान उनके लिए अनिवार्य है और उसी ज्ञान से वे अपने व्यावहारिक जीवन की समस्याओं को हल कर सकते हैं। हमारे कार्य करने तथा रहने-सहने के ढंग सभी वैज्ञानिक साधनों पर आधारित होने लगे हैं जिनके सम्बन्ध में हमें तनिक ज्ञान होना आवश्यक है। एक दिन के लिए यदि रेलगाड़ियों को रोक दिया जाय तो सारे देश के काम ठप हो जाय, न चिट्ठियाँ मिल सकें, न यात्री आवश्यक कामों के लिए इधर-उधर जा सकें, न माता-पिता अपने बीमार बच्चों की सूचना पाकर उनसे मिलने जा सकें और देश में तहलका मच जाय। इसी प्रकार अन्य वैज्ञानिक साधनों के बिना इस युग में एक दिन कार्य चलाना दुर्लभ हो जाय। इङ्गलैंड तथा अमेरिका जैसे विकसिक देशों में यदि एक दिन को बिजली न मिल सके तो सम्भवतः

* Peel, E. A. 'Psychology and the teaching of Science'; Brit. J. Psy., Vol. XXV, Part III, Nov. 1955.

घरों में खाना ही मिल सके। उनका जीवन तो यान्त्रिक हो गया है। हाथ से काम करने की आवश्यकता ही नहीं है। उन्हें रोटी, दूध, मक्खन आदि दरवाजे में आ जाता है, अन्य खाना बाजार में टिनों में बना बनाया मिल जाता है, कपड़ा सिला सिलाया मिलता है, दरवाजे पर पाँव रखते ही मोटर तैयार रहती है जो उन्हें पैदल नहीं चलने देती, टैलीविजन घर के अन्दर ही बैठे-बैठे मनोविनोद प्रदान करता है, कपड़े की धुलाई लान्ड्री से होती है अथवा मशीन से धुल जाते हैं आदि। यदि वैज्ञानिक साधन जीवन के लिए इतने उपयोगी हैं तो क्या ऐसे विषय का ज्ञान प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक नहीं है। यदि उसे विज्ञान का ज्ञान नहीं है तो इस बदलते हुए समाज में उसके लिए व्यवस्थापन दुर्लभ है। इसके सम्बन्ध में इसी अध्याय के प्रारम्भ में बहुत कुछ कह दिया गया है। दूसरी बात यह भी है कि जहाँ विज्ञान से इतने लाभ हैं उतनी ही हानियाँ भी। वही बिजली नित्य दिन व्यक्ति को भोजन प्राप्त करने, यातायात के लिए या प्रकाश देने के लिए लाभदायक सिद्ध होती है और वही एक क्षण में उसके प्राण ले सकती है। एक हवाई जहाज जो नित्य दिन व्यक्तियों को हजारों मील की यात्रा कराता है और संसार के एक कोने को दूसरे कोने से मिलाता है तनिक खराबी के कारण उनके प्राण ले सकता है। इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं जिनसे ज्ञात होता है कि विज्ञान एक ओर तो उपयोगी साधन है परन्तु उसके सही ज्ञान के अभाव में वह नाशकारक साधन बन जाता है। इसलिए आवश्यक है कि विज्ञान का अध्ययन केवल इसीलिए न किया जाय कि उससे जीवन में अनेकों प्रकार की सहायता मिलती हैं बल्कि इसलिए भी किया जाय क्योंकि उसके ज्ञान के अभाव में जीवन हानि की सम्भावना हो सकती है। इस वैज्ञानिक युग में हम विद्यालय के पाठ्य-क्रमों में विज्ञान विषय के अभाव के सम्बन्ध में सोच भी नहीं सकते।

विज्ञान के ज्ञान से विद्यार्थी अपने ज्ञान सम्बन्धी प्यास को बुझा सकता है और इसी ज्ञान से वह इस बदलते हुए समाज में एक अच्छा नागरिक बन सकता है और वैज्ञानिक विकास को एक आलोचक की दृष्टि से समझ सकता है। "It is a vast store-house of knowledge where an individual can rummage at will and slake his thirst for knowledge.

In a fast changing world a knowledge of science only can help an individual take his share as an enlightended citizen who has an imaginative insight into and a critical appraisal of the rapid develomepnt "❀

एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि इस वैज्ञानिक युग में चूंकि सब काम यंत्रों से होने लगे हैं इसलिये मनुष्य को अधिक अवकाश (Leisure) मिल गया है । मनुष्य के लिये इस अवकाश का सही उपयोग करना दुर्लभ हो गया है । एक ओर विज्ञान ने अवकाश प्रदान किया है दूसरी ओर इसी के ज्ञान से अवकाश का उचित उपयोग किया जा सकता है । एक व्यक्ति जिसे भविष्य में कृषि कार्य करना है वैज्ञानिक खादों, रासायनिक पदार्थों, पौधों की बीमारियों. प्रूनिंग (Pruning), आदि के सम्बन्ध में अध्ययन कर अपने भविष्य के लिये अपने को व्यस्त रखने के लिये सामग्री एकत्रित कर सकता है । इससे एक तो उसे व्यावहारिक लाभ होगा तथा दूसरा उसका मानसिक विकास होगा । एक व्यक्ति जिसे फोटोग्राफर बनना है विज्ञान के ज्ञान से अपने व्यवसाय में दक्ष हो सकता है और अपने अवकाश के समय को इससे सम्बन्धित अनेकों व्यसनों (Hobbies) में उचित रूप से व्यतीत कर सकता है । सभी व्यवसायों में वैज्ञानिक ज्ञान अवकाश के लिये मार्ग प्रदर्शन करा सकता है । आजकल विज्ञान सम्बन्धी व्यसनों के सम्बन्ध में अनेकों पत्रिकाएं उपलब्ध हैं जिनसे ज्ञात होता है कि विज्ञान के ज्ञान से किस प्रकार व्यक्ति इन व्यसनों से अपने अवकाश का उपयोग कर सकता है ।

विज्ञान को यदि सांस्कृतिक मूल्य के दृष्टिकोण से देखा जाय तो हमें ज्ञात होगा कि इसमें सांस्कृतिक मूल्य भी अधिक है । विज्ञान के अन्वेषणों का इतिहास व्यक्ति के मस्तिष्क में महान् व्यक्तियों के कार्यों का चित्रण कराता है और मानव द्वारा अध्ययन किये जाने वाले विषयों में प्रमुखता देता है । इसी के अध्ययन से वास्तव में व्यक्ति वास्तविक विश्व (Universe) की कल्पना करता है और प्राकृतिक नियमों को समझता है । वैज्ञानिकों की जीवनी का अध्ययन व्यक्ति को न

❀ Rawat, D. S. : 'A Comparative Study of the Standard of General Science in Certain Secondary Schools in England and in, U. P. (India) For pupils of a Chosen Age Range'; M.A. Education Thesis, Birmingham University, England, 1956-57.

केवल उन महान् पुरुषों के जीवन से परिचित कराता है बल्कि विज्ञान का सजीव अध्ययन करने के लिये प्रेरणा देता है। विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के अध्ययन से जो निरीक्षण विधि तथा प्रयोगात्मक विधि का ज्ञान होता है उससे तर्क युक्त मस्तिष्क का निर्माण होता है तथा सही निर्णय करने तथा नियमित संगठन की शक्ति का विकास होता है। विज्ञान का ज्ञान हमारी शिक्षा का एक आवश्यक अङ्ग है जिससे व्यक्ति अपने भविष्य की सही तैयारी कर सकता है ताकि वह आगे चलकर समाज का एक उपयोगी नागरिक बन सके। "Science is too important an element to be omitted from general education. It is an important part of liberal education, of the equipment and preparation for life which the school is expected to give to its pupils so that they may become intelligent and useful members of the community."*

यदि विद्यालयों में विज्ञान के अध्ययन से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक विधि तथा विज्ञान के ज्ञान का प्रयोग करने की शक्ति का बीज बोया जाय तो तभी वे विद्यार्थी आगे चलकर समाज की समस्याओं तथा कठिनाइयों को भली-भाँति समझ पावेंगे और उनका उपचार कर पावेंगे।

विज्ञान के नैतिक मूल्य पर ध्यान देना भी आवश्यक है। हमें यह नहीं चाहिये कि हम केवल वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत सुविधा के साधनों का लाभ ही उठाते रहें जिनके आविष्कार अथवा निर्माण करने में हमने कोई हाथ नहीं बटाया है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनका सही उपयोग करें और भविष्य के लिये अपना वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनायें। तभी हमारा कल्याण होगा और तभी हमारे समाज का कल्याण होगा। समनर (Sumner) महोदय ने ठीक कहा है "There is also the important but often forgotton moral aspect of scientific knowledge. Science is a legacy from the past and a gift from the present. Most people reap its benefits in the form of good sanitation, the myriad conveniences of electricity, wireless, painless surgery, and many other things, where they have not sown. The guardianship of its uses and the formation of the correct

* Rawat, D. S. : 'A Comparative Study of the Standard of General Seience in Certain Secondary Schools in England And in U. P. (India) for Pupils of a chosen Age Range'; M. A. Education Thesis, Birmingham University, England, 1956-57.

scientific spirit must be a duty to the future."❋

अन्त में हम कहेंगे कि चाहे जिस दृष्टिकोण से भी देखा जाय विज्ञान विषय को विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में रखना न्याय संगत प्रतीत होता है। इस वैज्ञानिक युग में पाठ्य-क्रम में विज्ञान के विषय के तिरस्कार के सम्बन्ध में सोचा भी नहीं जा सकता है।

प्रश्न

(१) आधुनिक जीवन में विज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डालिये और बतलाइये कि इससे हमारी सामाजिक स्थिति में क्या प्रभाव पड़ता है।

(२) विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में विज्ञान को क्यों स्थान दिया जाना चाहिए ? विस्तार पूर्वक लिखिये।

❋ Sumner, W. L. : 'The Teaching of Science'; Oxford, Basil Blackwell 1950, Page 9.

अध्याय ३

माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य

(Objectives of Teaching of Science in Secondary Schools)

उद्देश्य की आवश्यकता-किसी विषय को पढ़ाने के पूर्व उस विषय के लिए कुछ उद्देश्य निर्धारित कर लेना आवश्यक होता है। यदि ऐसा न किया जाय तो विद्यार्थियों में प्रत्याशित व्यवहार परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। यही बात विज्ञान विषय के लिए भी सत्य है। हम विज्ञान का ज्ञान देकर विद्यार्थी के व्यवहार में किसी निश्चित प्रकार का व्यवहार परिवर्तन करना चाहते हैं। उदाहरण के रूप में जिस विद्यार्थी को बिजली का सही ज्ञान दिया गया हो वह अपने घर तथा विद्यालय में बिजली के यन्त्रों का सही प्रयोग कर सकता है या टूटे हुए बिजली के यन्त्रों की मरम्मत कर सकता है। हम कहते हैं उस विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन हो गया है। परन्तु यह परिवर्तन तभी सम्भव है जब उस विद्यार्थी को बिजली के सम्बन्ध में पढ़ाते समय हम यह उद्देश्य अपने सम्मुख रखें कि उस विद्यार्थी को इस प्रकार पढ़ाना चाहिए ताकि वह सीखे हुए ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करे। तभी हमारा अध्यापन कार्य भी सफल समझा जाता है। यदि हम उक्त लिखित विद्यार्थी को केवल पुस्तकों से रटा कर अथवा व्याख्यान देकर बिजली के सम्बन्ध में पढ़ायेंगे तो वह अपने

ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग नहीं कर पावेगा और हम कहेंगे कि उसके व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन नहीं हुआ। विद्यार्थियों के व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन करने के लिए यह आवश्यक है कि पढ़ाने के पहले हम कुछ उद्देश्य निर्धारित कर लें और उन्हीं उद्देश्यों के आधार पर विद्यार्थियों को ज्ञान दें। उद्देश्य निर्धारित करने के लिए उसके कुछ निम्नलिखित कार्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(१) उद्देश्यों को बालकों की आवश्यकताओं तथा रुचियों की पूर्ति करनी चाहिए।

(२) उद्देश्यों से बालकों की प्रगति का मूल्यांकन करने में सहायता मिलनी चाहिए।

(३) उद्देश्यों को प्रजातन्त्रीय शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बनाया जाना चाहिए।

(४) उद्देश्यों से सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

(५) उद्देश्यों से सहायक सामग्री को छाँटने के लिए तथा उसके संगठन के लिए सहायता मिलनी चाहिए।

उद्देश्य निर्धारित करने के विभिन्न माप-दड हैं। जिनमें से कुछ मुख्य माप-दंड निम्नलिखित हैं :—

(१) उद्देश्यों को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिये।

(२) उन उद्देश्यों को प्रजातन्त्रीय शिक्षा के जगत में सभी स्थानों में मान्यता मिलनी चाहिये।

(३) उन उद्देश्यों से यह सम्भव होना चाहिये कि कक्षा की पढ़ाई से बालकों के व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन हो सके।

(४) उद्देश्यों को ऐसा होना चाहिए कि साधारण परिस्थितियों में उनकी प्राप्ति सम्भव हो सके।

(५) उद्देश्य को ऐसा होना चाहिए कि अध्यापक उसका प्रयोग कर सके अर्थात् उसे उपयोगी होना चाहिए।

माध्यमिक विद्यालयों के लिये विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य—माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण के अनेकों उद्देश्य हो सकते हैं और विभिन्न विद्वानों ने (जैसे क्राक्सटन, पैरी, वाटकिन्स, हन्टर आदि) अपनी-अपनी पुस्तकों में विज्ञान शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों का उल्लेख

किया है। हम इस पुस्तक में विज्ञान शिक्षण के कुछ निम्नलिखित मुख्य उद्देश्यों का वर्णन करेंगे :—

(१) विज्ञान शिक्षण से विद्यार्थी को ऐसी बातों का वास्तविक ज्ञान कराना; जैसे—

(अ) हमारा संसार—(दुनियाँ, सूर्य, चाँद, सितारे, ऋतु)
(ब) जीवित वस्तुएँ—(जीव जन्तु तथा पेड़ पौधे)
(स) मानव शरीर—(रचना, कार्य, तथा सुरक्षा आदि)

(२) विद्यार्थियों को वैज्ञानिक प्रत्ययों का ज्ञान कराना; जैसे—

(अ) संसार बहुत बड़ा है।
(ब) दुनियाँ बहुत पुरानी है।
(स) जीव की उत्पत्ति सरल रूप से हुई है।

(३) विद्यार्थियों को इस प्रकार के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान कराना; जैसे—

(अ) जीवित वस्तुएँ अपने ही रूप की वस्तुओं की उत्पत्ति करती हैं।
(ब) शक्ति को एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

(४) विद्यार्थियों को वैज्ञानिक यंत्रों के प्रयोग आदि करने की योग्यता में दक्ष बनाना; जैसे—

(अ) वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से प्रायोगिक कार्य करने में दक्षता।
(ब) वैज्ञानिक विषय-वस्तु का समझ-बूझकर तथा सन्तोष-जनक रूप से अध्ययन करना, आदि।

(५) विद्यार्थियों में समस्या का हल करने की योग्यता का विकास करना; जैसे—

(अ) समस्या का पता लगाना।
(ब) समस्या का हल करने के लिये विधि को निर्धारित करना।
(स) समस्या को प्रयोग द्वारा अथवा अन्य विधि से सही हल करना; आदि।

(६) विद्यार्थियों में निम्नलिखित अभिवृतियों का विकास करना जैसे—

(अ) किसी वस्तु का समझ-बूझकर ज्ञान प्राप्त करना।

(ब) नये तथ्यों को ज्ञात करने की इच्छा।

(स) बौद्धिक सत्यता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ; आदि।

(७) सराहना ; जैसे—

(अ) वैज्ञानिकों के कार्यों की सराहना।

(ब) कारण—प्रभाव (Cause and effect) की सराहना; आदि।

(८) विद्यार्थियों में वैज्ञानिक वस्तुओं, क्रियाओं अथवा सिद्धान्तों के प्रति रुचि उत्पन्न करना; जैसे—

(अ) वैज्ञानिक व्यवसनों अथवा क्रियाओं में रुचि।

(ब) विज्ञान के उस क्षेत्र में रुचि जिससे व्यवसाय में सहायता मिलती है।

(स) प्राकृतिक दृश्यों के प्रति रुचि; आदि।

विज्ञान शिक्षकों को चाहिये कि इन उद्देश्यों को ध्यान में रख कर विज्ञान विषय को पढ़ावें जिससे कि विद्यार्थियों के व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन हो सके। विद्यार्थियों के व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन इस प्रकार होना चाहिए कि उनकी व्यवस्थापन की समस्या का हल हो सके। वास्तव में आज के युग में विज्ञान शिक्षण का विशेष मूल्य ही यह है कि उसके अध्ययन से विद्यार्थी अपने व्यवस्थापन की समस्या को हल कर सकें।

अब हम इन उक्त लिखित उद्देश्यों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

(१)—(४) **विज्ञान की विषय वस्तु का वास्तविक ज्ञान**—

उक्त लिखित पहले चार उद्देश्यों को विषय-वस्तु ज्ञान के अन्तर्गत रखा जा सकता है। विज्ञान शिक्षण में वैज्ञानिक वस्तुओं का ज्ञान, प्रत्ययों का ज्ञान, सिद्धान्तों का ज्ञान तथा यंत्रों को प्रयोग करने का ज्ञान प्रत्येक स्तर पर इस प्रकार दिया जाना चाहिये ताकि उनको इस ज्ञान से अपने व्यवस्थापन में सहायता मिल सके। यह ज्ञान असम्बन्धित रूप से नहीं दिया जाना चाहिये। इसको विद्यार्थियों के वास्तविक अनुभवों पर आधारित होना चाहिये तभी इससे उनको व्यवस्थापन की समस्या को हल करने में सहायता मिल सकेगी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विज्ञान शिक्षक को निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिये। इनकी प्राप्ति के लिये शिक्षक को विद्यार्थियों के अनुभवों को तथा उनकी पृष्ठ-भूमि को अच्छी तरह समझना चाहिये ताकि वह

अपने पाठ को उनके अनुभवों पर आधारित कर सके। तभी विद्यार्थियों को व्यवस्थापन में सहायता मिल सकती है। विद्यार्थियों की व्यवस्थापन सम्बन्धी आवश्यकताएँ अनेकों प्रकार की हो सकती हैं। विज्ञान का ज्ञान इस प्रकार दिया जाना चाहिये कि विद्यार्थी शुद्ध जल, शुद्ध वायु, शुद्ध भोजन, स्वास्थ्यप्रद भोजन आदि का ज्ञान प्राप्त कर सके और अपने स्वास्थ्य को ठीक रख सके। बिज्ञान का ज्ञान विद्यार्थियों को अपनी सुरक्षा करने में सहायक होना चाहिये। यदि एक विद्यार्थी को विज्ञान का वास्तविक ज्ञान दिया गया हो तो वह बिजली से, डूबने से, आग से अपनी रक्षा कर सकता है क्योंकि वह ऐसी परिस्थितियों में वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रयोग करेगा। विज्ञान का ज्ञान इस प्रकार भी दिया जाना चाहिए कि विद्यार्थी अपने देश में सिंचाई तथा खेती आदि के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उनकी उन्नति करने में सहायक सिद्ध हो सके। वह अपने देश को बाढ़ से बचाने में सहायक हो सके। विज्ञान का ज्ञान विद्यार्थी को वस्तुओं के खरीदने अथवा अपना निर्णय देने में सहायक सिद्ध होना चाहिये। इसी ज्ञान से उसे वस्तुओं का साधक रूप से प्रयोग करने में सहायता मिलनी चाहिये। इसी ज्ञान से उसे अपनी बनाई हुई वस्तुओं में सुधार करने के लिये सहायता मिलनी चाहिये। कहने का अर्थ यह है कि विद्यार्थियों की व्यवस्थापन सम्बन्धो अनेकों समस्याएँ होती हैं और उनको विज्ञान का ज्ञान देने का उद्देश्य यह होना चाहिये कि विज्ञान के ज्ञान से उन्हें सही व्यवस्थापन में सहायता मिल सके। इसलिए विद्यार्थियों को प्रत्ययों, सिद्धान्तों, तथा यन्त्रों आदि का वास्तविक ज्ञान दिया जाना चाहिये और उसे विद्यार्थियों के अनुभवों पर आधारित होना चाहिये। विज्ञान शिक्षण में शिक्षक को इन उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिये।

(५) **समस्या हल करने की योग्यता का विकास**—जिस प्रकार एक वैज्ञानिक किसी नई खोज करने में समस्याओं को हल करता जाता है उसी प्रकार हम चाहते हैं कि हमारे विज्ञान के छात्र भी समस्या को हल करने की योग्यता को प्राप्त करें और उसका विकास करें। विज्ञान शिक्षण का यह एक मुख्य उद्देश्य है और विज्ञान शिक्षण द्वारा ही इस योग्यता का विकास करना अधिक सम्भव है। भूतकाल में इस योग्यता पर अधिक बल नहीं दिया गया परन्तु वर्तमान युग में प्रत्येक विज्ञान शिक्षक इस योग्यता के मूल्य को मानता है।

आज के युग में विद्यार्थियों को नित्य दिन नवीन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनका हल करना उनके लिए आवश्यक है। विद्यार्थियों में समस्याओं का हल करने की योग्यता का विकास तभी सम्भव है जब कि विद्यालयों में विज्ञान का ज्ञान देते समय ऐसी परिस्थितियों को पैदा किया जाय और विद्यार्थियों को उन समस्याओं को पहिचानने, उनकी हल करने की विधि ज्ञात करने तथा उनका हल निकालने के लिये ज्ञान दिया जाय। अब प्रश्न यह है कि यदि विद्यार्थी वैज्ञानिक समस्याओं को हल करने में दक्ष हो गया है तो क्या वह अन्य क्षेत्रों की समस्याओं को हल करने में भी दक्ष हो जावेगा। पिछले अध्याय में कहा गया था कि हम आजकल प्रशिक्षण के स्थानान्तर में तब तक विश्वास नहीं करते जब तक कि दोनों क्षेत्रों में एक ही प्रकार के तत्व (Elements) सम्मलित न हों। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वैज्ञानिक समस्याओं को हल करने की योग्यता से अनेकों उन क्षेत्रों की समस्याओं को हल करने में सहायता मिल सकती है जिनमें उसी योग्यता की आवश्यकता हो जो कि वैज्ञानिक क्षेत्र मे होती है।

आजकल देखा जाता है कि अधिकाँश अध्यापक इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य को ध्यान में नहीं रखते और इसके फलस्वरूप विद्यार्थी नवीन परिस्थितियों में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग नहीं कर पाते। जिन विद्यालयों में इस उद्देश्य के आधार पर विद्यार्थियों को नहीं पढ़ाया जाता वहाँ विद्यार्थी सीखे हुए ज्ञान को शीघ्र भूल जाते हैं परन्तु जहाँ इसे ध्यान में रखा जाता है वहाँ विद्यार्थी वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग नवीन परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न समस्याओं का हल करने में करते हैं। जैसा पहले कहा गया कि इस वैज्ञानिक युग में हमारी सामाजिक स्थिति में प्रति दिन नया परिवर्तन होता जा रहा है और विद्यार्थियों को नवीन समस्याओं का सामना करना होता है इसलिये हमें चाहिये कि विज्ञान शिक्षण द्वारा उनमें समस्या को हल करने की योग्यता का विकास करें। इसके लिये शिक्षण द्वारा उनके व्यवहार में परिवर्तन किया जाना चाहिये।

(६) **अभिवृत्तियों का विकास**—किसी व्यक्ति विशेष की किसी वस्तु अथवा आदर्श के प्रति अभिवृत्ति का अर्थ होता है उस व्यक्ति की उस वस्तु अथवा आदर्श के प्रति इच्छा, विश्वास, प्रतिकूल इच्छा तथा उसे अपनाने का प्रयास आदि का एकीकरण। पूर्वकाल से ही लोग इस बात पर विश्वास करते चले आए हैं कि यदि विद्यार्थियों को वैज्ञानिक

तथ्यों, सिद्धान्तों तथा नियमों को सुचारु रूप से पढ़ाया जाय तो उनमें स्वयं ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होने लगता है। यदि इस कथन में सत्यता है तो हमारा शिक्षण इस प्रकार का होना चाहिये कि बालकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास हो सके। व्यावहारिक जीवन की सभी परिस्थितियों में इस प्रकार की अभिवृत्ति की आवश्यकता होती है और विज्ञान शिक्षण द्वारा इसका विकास करना आवश्यक है।

(७) **सराहना**--विज्ञान शिक्षण का यह उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि विद्यार्थी उन श्रोतों की सराहना ही नहीं कर पाते जिनसे वैज्ञानिक आविष्कारों, सिद्धान्तों तथा नियमों को जन्म मिला है तो उनका बौद्धिक विकास भी सम्भव नहीं हो सकता। हमें चाहिए कि विद्यार्थियों को विषय वस्तु इस प्रकार पढ़ायें कि वे उन वैज्ञानिको को तथा उनके आविष्कारों की सराहना कर सकें तथा उनमें उनके प्रति आदर का भाव जाग्रत हो सके। इस प्रकार का भाव प्रत्येक विद्यार्थी मे होना आवश्यक है तभी संस्कृति का विकास सम्भव है। आज के युग मे प्रत्येक व्यक्ति का जोवन वैज्ञानिक वस्तुओं तथा सिद्धान्तों पर निभर है। वह इन वस्तुओ तथा सिद्धान्तो का सही उपयोग तभी कर सकेगा जब कि उसमें इनके प्रति श्रद्धा का भाव हो। इसलिए हमें विज्ञान की विषय वस्तु को कवल इस प्रकार नही पढ़ाना चाहिये कि विद्यार्थियों को उसका ज्ञान प्राप्त हो जाय बल्कि इस प्रकार भी पढ़ाना चाहिए ताकि वे उसकी सराहना कर सकें। तभी वे उसका सही उपयोग कर सकेंगे।

(८) **रुचियों का विकास**—विज्ञान शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि उससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक वस्तुओं तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रति रुचि उत्पन्न हो सके। वास्तव में देखा जाय तो बालक रुचिकर वस्तुओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं और उसी का सही अध्ययन करते हैं। रुचिकर वस्तुओं का ही उन्हें स्थायी रूप से ज्ञान हो पाता है। एक बात यह भी है कि बालक तथा प्रौढ़ किसी भी समस्या को एक चुनौती के रूप में लेते हैं और उसका हल ढूंढ़ने में उन्हें रुचि होती है। इस प्रकार समस्या से किसी व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से रुचि उत्पन्न को जा सकती है। इसलिये हमें विज्ञान शिक्षण में इस साधन का उपयोग करना चाहिये। यदि हम विषय वस्तु को समस्या के रूप में रखकर पढ़ायेगे तो विद्यार्थी उसमें रुचि लेंगे और इस प्रकार उसका स्थायी रूप से ज्ञान प्राप्त करेंगे। शिक्षक

कुछ अन्य साधनों से भी विद्यार्थियों में विज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है। इन साधनों में मुख्य साधन विज्ञान संग्राहलय, विज्ञान क्लब तथा विज्ञान प्रयोगशाला हैं। विद्यार्थी प्रयोग करके किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने में रुचि लेते हैं। वे यंत्रों अथवा वैज्ञानिक सहायक सामग्री की सहायता से अध्ययन करने में रुचि लेते हैं। इसलिए विज्ञान के अध्यापक को चाहिए कि इन विधियों का प्रयोग करे। कुछ विद्यार्थी विज्ञान में रुचि इसलिए भी लेते हैं क्योंकि इससे उनको अपने भविष्य के व्यवसाय में सहायता मिलती है। यदि अध्यापक विद्यार्थियों को इस प्रकार विज्ञान का ज्ञान दे जिससे उनके भविष्य के व्यवसाय में सहायता मिल सके तो निश्चित रूप से वे उसमें रुचि लेंगे। विद्यार्थियों की व्यवस्थापन सम्बन्धी समस्या का हल तभी सम्भव है जबकि विद्यार्थी विज्ञान विषय में रुचि लेकर उसका अध्ययन करें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान विषय का शिक्षण कुछ उद्देश्यों पर आधारित होना चाहिए और तभी उससे विद्यार्थी लाभ उठा पावेंगे और तभी उसको विद्यालय के पाठ्य-क्रम में स्थान देना न्याय संगत सिद्ध हो सकेगा।

प्रश्न

(१) विज्ञान शिक्षण के लिये उद्देश्य निर्धारित करना क्यों आवश्यक है? उद्देश्य निर्धारित करने के लिए आप कौन-कौन माप-दण्ड ध्यान रखेंगे और क्यों?

(२) माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण के कौन-कौन से मुख्य उद्देश्य होने चाहिये। इन उद्देश्यों की प्राप्ति किस प्रकार की जा सकती है?

अध्याय ४
(विज्ञान का अन्य विषयों से सम्बन्ध)

(Correlation of Science with other School Subjects)

वास्तव में देखा जाय तो विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को अलग-अलग रखकर पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता है। विज्ञान के जितने भी क्षेत्र हैं; जैसे—भौतिक विज्ञान, रासायन विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, भूविज्ञान आदि ये सब एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। एक क्षेत्र के ज्ञान के अभाव में दूसरे क्षेत्र को पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता है। रसायन विज्ञान में यदि हम पानी की सफाई के सम्बन्ध में पढ़ते हैं तो भौतिक विज्ञान में उस पानीघर की मशीनों के सम्बन्ध में पढ़ते हैं जहाँ पानी की सफाई की जाती है और पानी के भौतिक गुणों के सम्बन्ध में पढ़ते हैं और जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान में यह अध्ययन करते हैं कि जीव जन्तु तथा पौधों के लिए पानी की क्या उपयोगिता है। इसी प्रकार के अनेको उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि विज्ञान के एक क्षेत्र के ज्ञान के लिए उसके दूसरे क्षेत्र के ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। यदि इन सभी क्षेत्रों का एकीकरण करके पढ़ाया जाय तो सम्भव है कि विद्यार्थी विज्ञान विषय को भली भाँति समझ पावेगा। इसीलिए अमेरिका के कुछ स्कूलों में इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि विज्ञान को

भिन्न-भिन्न विषयों में विभाजित न करके उसके सब विषयों को सम्बन्धित रूप से पढ़ाया जाय। यह नहीं कहा जा सकता है कि इसमें कितनी सफलता मिल सकेगी तथा इसके परिणाम लाभदायक होंगे अथवा नहीं। इतना अवश्य मानना होगा कि विज्ञान के विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और विद्यार्थी को एक क्षेत्र का ज्ञान देते समय उससे सम्बन्धित दूसरे क्षत्र का ज्ञान भो अवश्य दे देना चाहिए।

विज्ञान के विषयों के सम्बन्ध में हमने 'अच्छे विज्ञान शिक्षक की योग्यताएँ' वाले विषय में भी चर्चा की है।

विज्ञान के विषयों में न केवल आपस मे ही सम्बन्ध है बल्कि उनका सम्बन्ध विद्यालय के अन्य विषयों से भी है। विज्ञान के विषय को विद्यालय के अन्य विषयों से दूर रख नहीं पढ़ाया जा सकता है। बहुत कुछ सम्भव है कि भविष्य में विद्यालय के सभी विषयों का संश्लेषण कर उनको एक साथ पढ़ाया जाने लगे। अब हम संक्षेप में इस बात का अध्ययन करेंगे कि बिज्ञान का विभिन्न विषयों से क्या सम्बन्ध है।

विज्ञान तथा साहित्य—विज्ञान तथा साहित्य का आपस में घनिष्ट सम्गन्ध है। एक अच्छा वैज्ञानिक न केवल एक अनुसन्धान कर्त्ता ही होता है बल्कि उसमें अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की अच्छी योग्यता भी होती है। प्रीस्टले, जूल, वाट, फैरेडे आदि को देखिये कि किस प्रकार उन्होंने विज्ञान का प्रचार करने के लिए लोगों के सम्मुख अपने विचार प्रकट किये और उनको प्रभावित किया। एक विज्ञान के अन्वेषण का सही वर्णन शुद्ध भाषा तथा सही शब्दों द्वारा ही किया जा सकता है। यदि साहित्य तथा भाषा का प्रयोग न किया गया होता तो विज्ञान की खोज केवल एक हो व्यक्ति तक सीमित रहती और अन्य लोग उस खोज के सम्बन्ध में अपरिचित रहते। आज भाषा की सहायता से ही एक देश की खोजों को दुनियाँ के कोने-कोने तक पहुँचाया जा सकता है और उसमें आगे कार्य करने का सुझाव दिया जा सकता है। विज्ञान की पुस्तकें, पत्रिकायें, समाचार आदि भाषा को सहायता से ही लिखे जा सकते हैं और पढ़े जा सकते हैं। विज्ञान के अध्यापक को चाहिए कि विज्ञान शिक्षण में सही भाषा का प्रयोग करे अन्यथा पढ़ाई गई वस्तु का अर्थ ही बदल जावेगा। हमारे देश में विज्ञान विषय में प्रयोग किये जाने वाले टैकनिकल शब्दों का हिन्दी

भाषा में अभाव है और इसी कारण कभी-कभी अध्यापक अथवा विद्यार्थी किसी शब्द का गलत अर्थ समझ लेते हैं जिससे उनको विज्ञान का सही ज्ञान नहीं हो पाता। जिस प्रकार विज्ञान शिक्षक को सही भाषा का प्रयोग करना चाहिये उसी प्रकार भाषा के अध्यापक को चाहिए कि वह जब भी विज्ञान सम्बन्धी पाठ पढ़ाये विद्यार्थियों को विज्ञान का सही ज्ञान दे।

विज्ञान तथा इतिहास—विज्ञान का इतिहास विज्ञान शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। महान वैज्ञानिकों के इतिहास के अध्ययन से विद्यार्थियों को खोज करने तथा वैज्ञानिक ढंग से चिन्तन करने की प्रेरणा मिलती है। अन्वेषणों का इतिहास भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिये लाभदायक सिद्ध होता है। दूसरी ओर इतिहास स्वयं ही भूतकाल के व्यक्तियों की सफलताओं तथा असफलताओं का संग्रह है। इन व्यक्तियों के अन्तर्गत वैज्ञानिक भी आते हैं जिन्होंने वैज्ञानिक खोजों द्वारा सामाजिक स्थिति में समय २ पर परिवर्तन किया है। एक बात यह भी है कि यदि इतिहास का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाय तो तभी उसमें विश्वास किया जा सकता है। इतिहास में हमें केवल प्राचीन राजा महाराजाओं अथवा युद्धों के ही सम्बन्ध में चर्चा नहीं करनी चाहिये बल्कि हमें इस बात का भी वर्णन करना चाहिये कि उस समय व्यक्तियों का रहन सहन कैसा था, उनका अपने वातावरण के सम्बन्ध में क्या विचार था। वैज्ञानिक विकास वातावरण में परिवर्तन करता है और वातावरण के परिवर्तन का प्रभाव मनुष्य के जीवन में पड़ता है और इस स्थान पर विज्ञान तथा इतिहास का संबंध स्पष्ट हो जाता है।

विज्ञान तथा गणित—विज्ञान का गणित से घनिष्ट सम्बन्ध है। गणित की सहायता के बिना विज्ञान का विकास असम्भव है। वैज्ञानिक प्रयोगों तथा खोजों की व्याख्या करने के लिये की ग्राफ, सूत्र, संख्या, समीकरण, साँख्यिकि आदि की आवश्यकता होती है। भौतिक विज्ञान तथा रासायन विज्ञान के सभी सूत्र गणित पर आधारित हैं। खोजों में सांख्यिकि की सहायता अनिवार्य है। सांख्यिकि का ज्ञान हमें बतलाता है कि किस सीमा तक के परिणाम शुद्ध माने जा सकते हैं तथा नमूना किस प्रकार छाँटा जाना चाहिये आदि। विज्ञान के अध्यापक तथा विद्यार्थियों के लिये साँख्यिकि का साधारण ज्ञान अनिवार्य है। जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान भी गणित से सम्बन्धित हैं। वन-

स्पति विज्ञान के अनेकों नियम गणित की सहायता से ज्ञात किये गये हैं। उदाहरण के रूप में मैन्डल के नियम को ले लीजिये जिससे वंश परम्परा के सम्बन्ध में बहुत बड़ी खोज की गई है। गणित की सहायता के ही इस नियम को ज्ञात किया गया। विद्यार्थी नित्य दिन समाचार पत्रों में तापक्रम, दबाव अथवा वर्षा की माप के सम्बन्ध में पढ़ते हैं। गणित के ज्ञान के अभाव में इन बातों को नहीं समझा जा सकता है। अनेकों दृष्टान्तों से इस बात को सिद्ध किया जा सकता है कि गणित के अभाव में विज्ञान का ज्ञान असम्भव है। गणित अध्ययन के लिये वैज्ञानिक विधि की आवश्यकता होती है। विज्ञान की ह्यूरिस्टिक विधि से गणित शिक्षण में अधिक सहायता मिली है। गणित के अनेकों प्रश्न वैज्ञानिक सूत्रों पर आधारित किये जा सकते हैं जिनसे एक ओर विद्यार्थी वैज्ञानिक सूत्रों को समझ सके और दूसरी ओर गणित का ज्ञान प्राप्त कर सके। घनत्व, तापक्रम, विद्युतधारा, आपेक्षिक ताप, गुप्त ताप, दबाव आदि विषयों में इस प्रकार के प्रश्न सरलता से रचे जा सकते हैं।

विज्ञान तथा भूगोल—भूगोल को विज्ञान के प्रयोग के अभाव में अच्छी तरह नहीं समझा जा सकता है। भूगोल में अनेकों उपविषय ऐसे हैं जिनमें वैज्ञानिक प्रयोगों की आवश्यकता होती है। भौतिक भूगोल तो पूर्ण रूप से विज्ञान से सम्बन्धित है। भूगोल में जलवायु के सम्बन्ध में अध्ययन करने के लिये हवा के दबाव, तापक्रम, वर्षा आदि के सम्बन्ध में जानना आवश्यक होता है। इनका मापन करने के लिये वैज्ञानिक यंत्रों का ज्ञान आवश्यक होता है। बैरोमीटर के ज्ञान के अभाव मे हवा का दबाव ज्ञात नहीं किया जा सकता। तापक्रम के मापन के लिये थर्मामीटर का ज्ञान आवश्यक है। वर्षा की मात्रा का ज्ञान केवल रेनगेज से हो सकता है। चन्द्र-ग्रहण, सूर्य-ग्रहण आदि को वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर ज्ञात किया जाता है और इस ज्ञान का प्रयोग भूगोल में किया जाता है। ज्वारभाटा का ज्ञान भी भूगोल तथा विज्ञान दोनों पर ही निर्भर करता है। इस प्रकार देखा जाय तो वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा यंत्रों में भूगोल आधारित है।

विज्ञान तथा संगीत शास्त्र—सम्भव है कोई इस बात में आश्चर्य करे कि विज्ञान का संगीत शास्त्र से क्या सम्बन्ध है। वास्तव में देखा जाय तो संगीत के यंत्र वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर ही बनाये गये हैं। विज्ञान का एक प्रमुख क्षेत्र है ध्वनि विज्ञान और इसी ध्वनि विज्ञान के

आधार पर हम ध्वनि के गुण, उसकी तीव्रता, उसकी प्रकृति आदि का ज्ञान करते हैं। सितार का तार एक निश्चित प्रकार की ध्वनि देता है। इसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर बनाया जाता है। हारमोनियम में अनेकों प्रकार के स्वर होते हैं और ये भी वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर बनाये जाते हैं। सनीमाघरों में तथा संगीत भवनों में इस प्रकार का प्रबन्ध किया जाता है ताकि ध्वनि गूँजने न लगे। इस प्रकार संगीत शास्त्र को भी विज्ञान से सहायता मिलती है।

विज्ञान तथा स्वास्थ्य विज्ञान—स्वास्थ्य विज्ञान का अधिक सम्बंध जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान से है। विज्ञान के ज्ञान से स्वास्थ्य विज्ञान को भली भाँति समझा जा सकता है। शरीर के अन्दर जो भी क्रिया होती है उसका ज्ञान हमारे स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक है। विज्ञान ही हमें यह बतलाता है कि शरीर के अन्दर ये क्रियाएँ किस प्रकार होती हैं तथा इनके लिये हमें किन-किन सावधानियों की आवश्यकता है। भोजन में कौन-कौन से पदार्थ शरीर के लिये उपयोगी हैं इसका ज्ञान रसायन विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान से हो सकता है। पूरे शरीर की रचना का ज्ञान जीव विज्ञान के ही आधार पर हो सकता है और तभी हम अपने स्वास्थ्य की अच्छी तरह रक्षा कर सकते हैं। जिन विद्यालयों में स्वास्थ्य विज्ञान एक अलग विषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाता वहाँ विज्ञान के अध्यापकों को चाहिए कि वे विज्ञान पढ़ाते समय उससे सम्बन्धित स्वास्थ्यविज्ञान को भी पढाए क्योंकि विज्ञान का एक मुख्य उद्देश्य अपने तथा समाज के स्वास्थ्य की रक्षा करना भी है।

विज्ञान तथा कला—कला अनेकों प्रकार की होती है; जैसे चित्र-कला, शिल्प कला, हस्त कला आदि। प्रत्येक प्रकार की कला में विज्ञान का ज्ञान अनिवार्य है। उदाहरण के रूप में चित्र कला को ही ले लीजिये। चित्र कला में विभिन्न रंगों की, छाया की तथा प्रकाश की आवश्यकता होती है। रसायन विज्ञान की सहायता से रंगों का ज्ञान होता है। भौतिक विज्ञान प्रकाश तथा छाया का सही ज्ञान देता है तथा दृष्टि सम्बन्धी बातों को बतलाता है। अन्य कलाओं में जो यंत्र प्रयोग किये जाते हैं वे वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर बनते हैं। बढ़ई को तक यह पहिचानना होता है कि किस प्रकार के लोहे के औजार अच्छे होंगे। यह ज्ञान रासायनिक विश्लेषण के आधार पर

किया जा सकता है। ऐसे ही अनेकों दृष्टान्तों से यह सिद्ध होता है कि विज्ञान से कला का अधिक सम्बन्ध है।

इस प्रकार देखा जाय तो विज्ञान का सम्बन्ध लगभग विद्यालय के सभी विषयों से है।

प्रश्न

(१) आपकी राय में यदि विज्ञान के विभिन्न विषयों को सम्बन्धित रूप में पढ़ाया जाय तो कैसा होगा और क्यों ?

(२) विज्ञान का विद्यालय के अन्य विषयों से क्या सम्बन्ध है ? उदाहरण देकर समझाइये।

अध्याय ५

माध्यमिक विद्यालयों के विभिन्न स्तरों के लिए सामान्य विज्ञान का पाठ्यक्रम

(Syllabus of General Science for Different Stages of Secondary Schools)

प्रत्येक विज्ञान के अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि उसे सीखने के मनोविज्ञान तथा विद्यार्थियों के अनुभवों से परिचित होना चाहिये। साथ ही साथ उसे यह भी ज्ञान होना चाहिये कि किस स्तर के विद्यार्थियों के लिए किस प्रकार की विषय-वस्तु का चुनाव करना चाहिए, उसके चुनाव की क्या विशेषता होनी चाहिए तथा चुनाव करने का माप-दण्ड क्या होना चाहिए।

हमारे देश में पाठ्य-क्रम का निर्माण करना अध्यापकों के हाथ में नहीं है। उन्हें बना-बनाया पाठ्य-क्रम दे दिया जाता है और उसी के आधार पर उन्हें पढ़ाने को कहा जाता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अध्यापकों को पाठ्य-क्रम के निर्माण के सिद्धान्त ज्ञात ही न हों। यदि अध्यापक इन सिद्धान्तों से भली-भाँति परिचित हैं तो वे अपना मत प्रकट कर सकते हैं और पाठ्य-क्रम में सुधार करने के हेतु सुझाव दे सकते हैं। कभी-कभी पाठ्य-क्रम में इतनी बातें रख दी

जाती हैं जो एक वर्ष के अन्दर समाप्त नहीं की जा सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि अध्यापक को पाठ्य-क्रम के सिद्धान्तों का ज्ञान है तो वह अपने पाठ्य-क्रम का सही संगठन कर पावेगा और उन चीजों को पहले पढ़ाने का प्रयत्न करेगा जो विद्यार्थी के लिए अधिक महत्व-पूर्ण हैं।

पाठ्य-क्रम के चुनाव पर कुछ विचार—पाठ्य-क्रम में विषय वस्तु को रखने के लिए भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया। पहिले हम सामान्य विज्ञान को माध्यमिक विद्यालय के पाठ्य-क्रम में इसलिए रखते थे क्योंकि कालेजों तथा विश्व-विद्यालयों में इस विषय की आवश्यकता होती थी। माध्यमिक विद्यालयों में सामान्य विज्ञान को पाठ्य-क्रम में इस प्रकार के सरल रूप में रखा जाता था जिससे कालेजों में उनेक अध्ययन में सहायता मिलती थी। बाद में माध्यमिक विद्यालों में विज्ञान को पढ़ाने का उद्देश्य उसको उपयोगिता मानी गई। इसके अनुसार विज्ञान की विषय वस्तु को कार्यात्मक रूप दिया गया। इसके अनुसार यह माना जाने लगा कि विज्ञान विषय से विद्यार्थियों को सामाजिक व्यवस्थापन में सहायता मिलनी चाहिए। अब इसे एक अन्तिम उद्देश्य की भाँति न मानकर उद्देश्य प्राप्ति का एक साधन माना जाने लगा।

अब प्रश्न यह है कि विषय वस्तु के किन-किन पक्षों में ध्यान देना आवश्यक है ताकि विद्यार्थियों के व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन सम्भव हो सके। पाठ्य-क्रम में हम मुख्य रूप से तथ्य (Facts), प्रत्यय (Concepts), तथा सिद्धान्त (Principles) पर बल देते हैं। तथ्य का अर्थ है जो वस्तु सत्य सिद्ध है; जैसे—पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है, पृथ्वी अपनी धुरी में घूमती है आदि। प्रत्यय का अर्थ है विचारों का सामान्यीकरण। किसी व्यक्ति का किसी वस्तु के प्रत्यय से अर्थ है—वह व्यक्ति उस वस्तु के सम्बन्ध में क्या जानता है तथा क्या अनुभव (Feel) करता है। विज्ञान में प्रत्यय के कुछ उदाहरण हैं—तापक्रम, शक्ति, बल, बीज आदि। सिद्धान्त एक प्रकार से उच्च प्रकार का सामान्यीकरण है। विभिन्न सम्बन्धित प्रत्ययों से मिलकर एक सिद्धान्त बनता है; जैसे—'एक प्रकार की शक्ति को दूसरे प्रकार की शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है' या 'एक रासायनिक पदार्थ में दूसरे रासायनिक पदार्थ के मिलाने से उसकी दशा में परिवर्तन किया जा सकता है' आदि। तथ्यों से प्रत्यय बनते हैं और प्रत्ययों से सिद्धान्त। हमें

इनमें से प्रत्येक का ज्ञान इस प्रकार देना चाहिये ताकि विद्यार्थियों को अपने व्यवस्थापन में सहायता मिल सके। पाठ्य-क्रम में इस प्रकार के ज्ञान के पक्षों में अधिक बल दिया जाना चाहिए।

प्रारम्भिक विज्ञान के लिए पाठ्य-क्रम का चुनाव—प्रारम्भिक विज्ञान के पाठ्य-क्रम में विज्ञान की पाठ्य-वस्तु को दो आधारों पर चुनना चाहिये—(१) एक तो बालकों की रुचियों के आधार पर, और (२) दूसरा वैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा प्रत्ययों के आधार पर। इस सम्बन्ध में अनेकों खोजों द्वारा ज्ञात किया गया है कि बालकों की रुचियाँ क्या-क्या होती हैं तथा उनके आधार पर विज्ञान की विषय वस्तु का चुनाव कैसा होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में डाउनिंग, जिम तथा पामर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।* इस सम्बन्ध में भी लोगों ने खोज की है कि विद्यार्थियों को प्रारम्भिक विज्ञान में किस प्रकार के प्रत्यय का ज्ञान दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में पाठक 'नेशनल सोसाइटी फार दी स्टडी आफ एज्यूकेशन' की 'Thirty First Year book' पढ़ सकते हैं।

इसमें अनेकों प्रत्ययों (Concepts) के बारे में बतलाया गया है; जैसे—हर प्रभाव का कोई कारण होता है, तत्व १०० से कम हैं, सूर्य पृथ्वी के लिये मूल शक्ति का साधन है आदि।

इसी प्रकार यह भी ज्ञात किया गया है कि प्रारम्भिक विज्ञान में किन-किन वैज्ञानिक सिद्धान्तों का उपयोग किया जाना चाहिए। डाउनिंग ने इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय काम किया है। राबर्टसन ने २४३ वैज्ञानिक सिद्धान्तों को चुना।* कुछ विशेषज्ञों ने इनमें से चुनकर ११३ सिद्धान्तों को प्रारम्भिक विज्ञान के पठन-पाठन के लिए चुना। इनमें से कुछ सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :—

*1. Downing, E. R.: 'Children's Interest in Nature Materials'; Nature Study Review, 1912.

2. Zim, H. S. : 'Science Interests and Activities of Adolescents'; Teachers College, Columbia University, New York, 1940-

3. Palmer, E. L. : 'How to meet some of Children's Nature Interests'; Natury Stude Review, Janu Feb., 1922.

*. Robertson, M. L. : 'A Basis for selection of course content in Elementary Science'; Ph. D. Thesis, University of Michigan, 1933.

1. When liquid is changed to a gas, heat is absorbed; when a gas is condensed to a liquid, heat is liberated.
2. The material forming one or more substances without ceasing to exist may be changed into one or more new and measurably different substances.
3. The environment acts upon living things, and living things upon the environment.

हमें प्रारम्भिक विज्ञान की विषय-वस्तु को बालकों की आवश्यकताओं के आधार पर भी चुनना चाहिये। बालकों की आवश्यकताएँ बौद्धिक, सामाजिक अथवा गति सम्बन्धी होती हैं। विज्ञान की पाठ्य-वस्तु को इन आवश्यकताओं पर भी आधारित होना चाहिये।

आजकल हम बालक के सम्पूर्ण विकास पर विश्वास करते हैं। प्रारम्भिक विज्ञान की पाठ्य-वस्तु को उसके विकास का एक पक्ष होना चाहिए और उसे सम्पूर्ण पाठ्य-क्रम से सम्बन्धित होना चाहिए।

प्रारम्भिक विद्यालयों में विज्ञान की विषय-वस्तु चुनने के लिए सिद्धान्त—

प्रारम्भिक विद्यालयों में विज्ञान की विषय-वस्तु को निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर चुनना चाहिए :—

(१) विज्ञान की विषय-वस्तु वैज्ञानिक प्रत्ययों तथा सिद्धान्तों के आधार पर चुनना चाहिए।

(२) विज्ञान की विषय-वस्तु को बालकों की विशेष तथा साधारण व्यवस्थापन सम्बन्धी आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए।

(३) विज्ञान की विषय वस्तु को बालकों की रुचियों पर आधारित होना चाहिए।

(४) विज्ञान की विषय वस्तु को बालकों के विकास, स्तर तथा प्रतिरूपों पर आधारित होना चाहिए।

(५) विज्ञान की विषय वस्तु को बालकों की कठिनाई के स्तर पर आधारित होना चाहिये।

जूनियर स्कूलों के सामान्य विज्ञान के पठन-पाठन के लिए विषय-वस्तु का चुनाव—

विदेशों में जूनियर स्कूलों में विज्ञान की विषय वस्तु के सम्बन्ध में अनेकों खोजें हुई हैं। ये खोजें पाठ्य-पुस्तकों, विद्यार्थियों की रुचियों, विज्ञान के साहित्य, बालकों की जीवन की क्रियाओं आदि के सम्बन्ध में की गई हैं।

नोभक (Novack) ने अध्ययन करके ज्ञात किया है कि जूनियर स्कूल के विज्ञान के पाठ्य-क्रम के १५ मुख्य उपविषयों में से स्वास्थ्य, यातायात तथा औषधि को अधिक महत्व दिया गया है। रफनर (Ruffner) ने अपने अध्ययन से बालकों की स्थायी रुचियों को ज्ञात किया। उन्होंने यह ज्ञात किया कि नवीं श्रेणी के बालकों की रुचियाँ अधिक सीमा तक स्थायी हो जाती हैं और उनके आधार पर पाठ्य-क्रम की विषय-वस्तु को चुना जा सकता है। इसी प्रकार की अनेकों खोजें हुई हैं। इन खोजों से जूनियर स्कूलों में विज्ञान के पाठ्य-क्रम में विषय-वस्तु को चुनने के लिये सहायता मिलती है।

विषय-वस्तु के चुनाव में पाठ्य-पुस्तक का महत्त्व—जूनियर स्कूल के विज्ञान की विषय-वस्तु के चुनाव में पाठ्य-पुस्तक का महत्वपूर्ण हाथ है। पाठ्य-पुस्तकों से ही अध्यापक यह निर्णय कर पाता है कि कि कौन-सो विषय वस्तु विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त है और विद्यार्थियों को कौन-कौन सो बातें पढ़ानी चाहिए। पाठ्य-क्रम का निर्माण करने वाले लोग पाठ्य-पुस्तकों से सहायता लेते हैं। चूँकि पाठ्य-पुस्तकों का पाठ्य-क्रम के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए पाठ्य-पुस्तकों को सावधानी से बनाना चाहिये। पाठ्य-पुस्तकों का चुनाव भी सावधानी से करना चाहिए। इसके लिये कुछ निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :—

(१) विषय वस्तु का संगठन तथा चुनाव।

(२) लेखक की योग्यता।

(३) अध्यायों में सह सम्बन्ध।

(४) पुस्तक में दृष्टान्तों का प्रयोग।

(५) पुस्तक विद्यार्थियों के लिए रुचिकर सिद्ध हो सकती है अथवा नहीं।

(६) पुस्तक में विभिन्न स्थानों पर आगे अध्ययन के लिए कहाँ तक संकेत मिलता है।

(७) पुस्तक की बनावट तथा मजबूती आदि ।

विषय-वस्तु को विद्यार्थियों की व्यवस्थापन सम्बन्धी आवश्यकताओं के आधार पर चुनना—

पहले विषय-वस्तु के चुनने में विषय को ध्यान में रखा जाता था और उसे अधिक महत्व दिया जाता था परन्तु अब विषय-वस्तु के चुनाव में बालक में ध्यान दिया जाता है और उसे महत्व दिया जाता है। इस सिद्धान्त के मानने के कारण पाठ्य-क्रम निर्माताओं का ध्यान इस ओर केन्द्रित होने लगा और पाठ्य-क्रम की विषय वस्तु को इस प्रकार चुना जाने लगा कि उससे विद्यार्थियों को व्यवस्थापन में सहायता मिल सके। इसके अतिरिक्त पाठ्य-क्रम में विज्ञान के सामाजिक मूल्य, उससे विचार शक्ति का विकास करने के मूल्य आदि में ध्यान दिया जाने लगा। प्रारम्भिक विज्ञान की ही भाँति जूनियर स्कूलों में भी विषय वस्तु के चुनाव के लिये विद्यार्थियों के व्यवहार, उनको रुचियों, उनको आवश्यकताओं तथा उनके विकास की विशेषताओं पर बल दिया जाता है। कुछ विभिन्न अध्ययनों के आधार पर जूनियर स्कूलों के विद्यार्थियों की निम्नलिखित विशेषताएँ ज्ञात की गई हैं :—❀

1. They are going through a period of rapid growth.
2. Their interests are centered in sports, team-work collecting, animals, adventures, romance and mystry.
3. They have strong desire to excel.
4. They like to explore and make discoveries for themselves.
5. They seek group approval and often go to extremes of behaviour to secure it.
6. They have a strong desire and a keen interest to understand themselves.
7. There is a desire for freedom balanced by the sense of a need for security and belonging.
8. Their play is self directed to a large degree and is generally, well organized.
9. There is the beginning of wide interest in the group and in community concerns.
10. There is a desire to achieve their full capacities.

❀. Heiss, E. D.; Obourn, E. S.; and Hoffman, C. W. : 'Modern Science Teaching', Macmillan Co., New York, 1955.

11. There is an accelerated development in motor skill and ability.
12. There is a wider interest in reading.
13. There is an awakening to, and interest in ideals.
14. There is a beginning interest in the vocational pursuits of adults.

इन सब बातों के आधार पर यह निश्चित किया गया है कि जूनियर स्कूलों में विज्ञान की विषय वस्तु का चुनाव निम्नलिखित आधार पर होना चाहिए।

जूनियर स्कूलों के विज्ञान की विषय वस्तु को :

(१) विद्यार्थियों के व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित होना चाहिये।

(२) विद्यार्थियों की रुचियों तथा आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिये।

(३) विद्यार्थियों की योग्यता के स्तर का होना चाहिए।

(४) इस स्तर के लिये निर्धारित किये गये उद्देश्यों पर आधारित होना चाहिये।

(५) विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति उत्पन्न करने वाला तथा उन्हें वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान देने वाला होना चाहिये।

(६) विद्यार्थियों में विज्ञान सम्बन्धी सामाजिक आदर्शों के प्रति विश्वास उत्पन्न करने वाला होना चाहिए।

(७) विद्यार्थियों को स्थानीय तथा संसार के वातावरण को व्याख्या करने में सहायक होना चाहिये।

भारतीय जूनियर स्कूलों के पाठ्य-क्रम में सामान्य विज्ञान के विभिन्न उपविषयों को सम्बन्धित रूप से नहीं पढ़ाया जाता। इसका उत्तरदायित्व हमारे पाठ्य-क्रम बनाने वालों के ऊपर है। यदि पाठ्य-क्रम को इस प्रकार बनाया जाय कि एक उपविषय का सम्बन्ध दूसरे उपविषय से हो तो निश्चय ही अध्यापक उन्हें सम्बन्धित रूप से पढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

माध्यमिक विद्यालयों के लिए विज्ञान की विषय-वस्तु का चुनाव—

इस स्तर के विद्यार्थियों को सामान्य विज्ञान का ज्ञान देने के लिए विषय वस्तु को उनकी रुचियों तथा आवश्यकताओं पर तो चुना ही जाता है परन्तु साथ-साथ उनके विकास की विशेषताओं को भी ध्यान में रखा जाता है। कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी

(१) स्वतन्त्रता प्रिय होते हैं

(२) आदर्शवादी होने लगते हैं और उनमें कुछ वांछित अभिवृत्तियों का विकास होने लगता है

(३) में शारीरिक विकास शीघ्रता से होने लगता है

(४) अपने को दूसरे लिङ्ग के व्यक्तियों के सम्बन्ध में समझने का प्रयत्न करते हैं

(५) की विशिष्ट रुचियाँ होती हैं

(६) उन बातों में रुचि लेते हैं जिसका तत्काल प्रयोग किया जा सके

(७) समस्या हल करने तथा अमूर्त विचार करने की योग्यता को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं

(८) समस्या हल करने में परिपक्व होने लगने हैं परन्तु बड़ों की सहायता अवश्य चाहते हैं, आदि ।

इसलिये इस स्तर के पाठ्य-क्रम की विषय वस्तु को इन उक्त लिखित विशेषताओं के आधार पर चुनना चाहिए। अधिकांशतः देखा गया है कि माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थी बायलाजी (Biology) में अधिक रुचि लेते हैं और भौतिक विज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान में कम रुचि लेते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि बायलाजी से विद्यार्थियों को आवश्यकता की अधिक पूर्ति होती है। दूसरा कारण यह है कि भौतिक विज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान के पाठ्य-क्रम में सुधार करने की आवश्यकता है। कुछ विज्ञान के अध्यापकों का कहना है कि भौतिक विज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान में पाठ्य-क्रम को इतना विस्तृत रखा है कि उसे साधकता के साथ एक वर्ष में नहीं पढ़ाया जा सकता। यदि इस पाठ्य-क्रम में विद्यार्थियों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा विकास की विशेषताओं के अनुसार सुधार किया जाय तो सम्भव है विद्यार्थी भौतिक विज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान में रुचि लेने लगें।

भारतीय विद्यालयों में हाई-स्कूल में विज्ञान को सामान्यविज्ञान के रूप में पढ़ाया जाता है परन्तु उसे अलग-अलग विषयों के रूप में इस प्रकार पढ़ाया जाता है कि विद्यार्थी एक विषय का दूसरे विषय से सम्बन्ध ही नहीं समझ पाते। इससे सामान्य विज्ञान पढ़ाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। सामान्य विज्ञान के सम्बन्ध में ड्यूवी (Dewey) ने

लिखा है"·········the tendency to general science courses is animated by a praiseworthy desire to get away from the specialised technicalities of a highly matured science An attempt to get back nearer to the world in which the pupil lives, and away from the world which exists only for the scientists, the general science tendency has its justification. But I have the impression that in practice it may mean some thing different. It may take its departure from sciences which are already differentiated and simply pick out pieces from them, some from Physics, some from Chemistry, some Physiography, some from botany, and out of this varied selection from something to serve as an introduction to sciences in a more specialised form. Now this method, I believe to be of static type after all. I believe it retains the essential mistakes of any method which begins with scientific knowledge in its already made form, while it lends itself very easily to scrappy and superficial work, and even to a distaste for the continued and serious thinking necessary to real mastry of science".[१]

हमारे विद्यालयों में सामान्य विज्ञान की पाठ वस्तु का कुछ भाग भौतिक विज्ञान, कुछ भाग जीव विज्ञान तथा कुछ भाग वनस्पति विज्ञान के सयोग से बनाया जाता है और उसी की ड्यूवी ने आलोचना की है। हमें अपने सामान्य विज्ञान के पाठ्य-क्रम में सुधार करने की आवश्यकता है। इसे विभिन्न विषयों में विभक्त करके नहीं बनाया जाना चाहिये बल्कि एक विस्तृत पाठ्य-क्रम में विभिन्न विषयों को सम्बन्धित रूप में रखा जाना चाहिये।

प्रश्न

(१) प्रारम्भिक विज्ञान की पाठ्य-वस्तु को चुनने के लिये अपने सुझाव दीजिये।

(२) जूनियर स्कूलों में विज्ञान विषय के लिये आप पाठ्य-क्रम किस आधार पर बनायेंगे ?

(३) भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में सामान्य विज्ञान के पाठ्य-क्रम में क्या-क्या सुधार आवश्यक हैं और उनके लिये आप क्या सुझाव देते हैं ?

1. Dewey, J : 'Method in Science Teaching'; The Science Teacher, XXII, April, 1955.

अध्याय ६

विज्ञान शिक्षण की विधियाँ

(Methods of Teaching Science)

शिक्षण विधि की आवश्यकता—आज के मनोवैज्ञानिक युग में शिक्षा प्रदान करने के हेतु बालक को केन्द्र माना जाता है, न कि विषय वस्तु को। शिक्षा शास्त्रियों का कहना है कि बालकों को उचित प्रकार से शिक्षा तभी प्रदान की जा सकती है जब कि उसके मानसिक स्तर को ध्यान में रख कर पढ़ाया जाय। आरम्भ में बालक आश्चर्यजनक वस्तुओं से प्रभावित होकर अध्ययन करता है। जैसे प्राकृतिक वस्तुएँ अथवा क्रियाएँ उसके लिये आश्चर्य (Wonder) की वस्तुएँ होती हैं और इसीलिये बालक उनके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। आगे चलकर वह उपयोगिता (Utility) के नियम से प्रभावित होता है। जिन वस्तुओं अथवा क्रियाओं को वह उपयोगी समझता है उनका वह अध्ययन करना चाहता है। आगे चलकर एक ऐसी अवस्था आती है जब कि व्यक्ति तर्क वितर्क कर किसी ज्ञान को नियमित रूप से (Systematically) प्राप्त करना चाहता है। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न अवस्थाओं में एक ही विधि से अध्यापन कराना भूल है। हमें विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों को विभिन्न विधियों से पढ़ाना आवश्यक है। यहाँ

एक बात यह कह देना आवश्यक है कि गोकि विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्ति विभिन्न कारणों से ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि छोटे बच्चों को आश्चर्य के नियम को ध्यान में रख कर पढ़ाया जाय तो उनको उपयोगिता तथा नियमितता के लिये न पढ़ाया जाय। छोटे बच्चे भी अध्ययन विषय में थोड़ी बहुत उपयोगिता देखते हैं तथा थोड़ा बहुत नियमित रूप से उसका अध्ययन कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रौढ़ व्यक्ति भी किसी वस्तु के आश्चर्यजनक प्रकृति तथा उपयोगिता के कारण उसका अध्ययन करना चाहते हैं।

किसी विषय के अध्ययन अथवा अध्यापन के लिये कुछ निश्चित उद्देश्यों को निर्धारित करना आवश्यक है। यदि हम बिना किसी उद्देश्य के निर्धारित किये किसी विषय का अध्यापन करावें तो हो सकता है विद्यार्थी वह ज्ञान प्राप्त न करें जो हम चाहते हैं। उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि हम उस विषय को संगठित तथा व्यवस्थित रूप से पढ़ावें। इसलिये किसी विषय के अध्यापन में विधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विज्ञान शिक्षण के लिये भी यह कथन सत्य है। विज्ञान शिक्षण की अनेकों विधियाँ हैं। सच पूछिये तो प्रत्येक अध्यापक को अपनी स्वय की विधि होती है। कोई अध्यापक दूसरे अध्यापक की विधि के अनुसार नहीं पढ़ा सकता है। इससे उसके व्यक्तित्व का ह्रास हो जावेगा। फिर भी विज्ञान शिक्षण में कुछ सुविख्यात विधियों का सहारा लेना होता है। उनमें कुछ विधियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) व्याख्यान विधि (Lecture method)
(२) पाठ्य-पुस्तक विधि (Text-book method)
(३) समस्या विधि (Problem method)
( ) योजना पद्धति (Project method)
(५) प्रयोग-प्रदर्शन विधि (Demonstration method)
(६) प्रयोशाला विधि (Laboratory method)
(७) पर्यटन पद्धति (Excursion method)

हम यहाँ प्रत्येक विधि का संक्षेप में वर्णन करेंगे :—

(१)**व्याख्यान विधि**—विज्ञान शिक्षण में व्याख्यान विधि का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। पहले तो इसी विधि को विद्यालयों में प्रयोग किया जाता था क्योंकि उस समय कारखानों के अभाव के कारण पुस्तकों का अभाव था और व्याख्यान द्वारा ही अध्यापक विद्या-

र्थियों को विषय ज्ञान दे सकता था। जब से मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि बालक को केन्द्र मानकर पढ़ाना चाहिये तब से व्याख्यान विधि को उतना महत्त्व नहीं दिया जाने लगा। आजकल यह विधि अधिकतर कालेज के स्तर में प्रयोग की जाती है परन्तु माध्यमिक विद्यालयों में भी विशेष परिस्थितियों में इसका प्रयोग किया जाता है। इस विधि के कुछ गुण हैं तथा कुछ दोष हैं। इस विधि का प्रयोग करने से विषय वस्तु को संगठित रूप से तथा एक निश्चित क्रम में पढ़ाया जा सकता है। थोड़े से समय में विद्यार्थियों को अधिक बातें बताई जा सकती हैं। ऐसा करने से पाठ्य-क्रम को समाप्त करने में कम समय लगता है और इसलिये समय की बचत होती है। यदि व्याख्यान के साथ-साथ प्रदर्शन (Demonstration) का प्रयोग भी किया जाय तो इस विधि का मूल्य अधिक बढ़ जाता है। अध्यापकों को चाहिये कि यदि इस विधि का प्रयोग करें तो बीच-बीच में आवश्यकतानुसार प्रदर्शन का प्रयोग भी करें। हमारे पाठन कार्य में कुछ स्थानों में इस विधि का प्रयोग अनिवार्य होता है। किसी पाठ की प्रस्तावना के समय अथवा पढ़ाई गई वस्तु का सारांश देते समय व्याख्यान विधि उपयोगी समझी जाती है। जब हमें विद्यार्थियों को कोई वैज्ञानिक सूचना देने की आवश्यकता होती है उस समय भी इस विधि का प्रयोग उपयुक्त समझा जाता है। इस विधि की सहायता से हम विद्यार्थियों को महान् वैज्ञानिकों की जीवनी से परिचित कराते हैं जिससे उनको कार्य करने के लिये प्रेरणा मिलती है। विज्ञान सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं को केवल इसी विधि से पढ़ाया जा सकता है। यदि अध्यापक व्याख्यान देने में प्रवीण है तो वह अपने पाठ को इस विधि की सहायता से रुचिकर बना सकता है। इसी विधि से विद्यार्थियों को अभिरोचन मिलता है।

इस विधि में अनेकों दोष भी हैं। सबसे प्रथम दोष तो यही है कि जिस समय अध्यापक व्याख्यान देता है, विद्यार्थी निष्क्रिय रूप से बैठे रहते हैं और अध्यापक सक्रिय रहता है। विद्यार्थी कान से सुनते जाते हैं और जो कुछ अध्यापक कहता है उसको सही मान लेते हैं। उन्हें स्वयं तर्क करने तथा चिन्तन करने का अवसर नहीं मिलता। विज्ञान शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य है कि बालकों में तर्क शक्ति का विकास करना। यदि उन्हें सदा व्याख्यान विधि से पढ़ाया जाय तो उनकी तर्क शक्ति तथा चिन्तन शक्ति का ह्रास हो जावेगा। दूसरी बात यह

है कि सभी अध्यापक अच्छे वक्ता भी नहीं होते। व्याख्यान देना भी एक गुण है जो सभी अध्यापकों में नहीं पाया जाता। इस गुण के अभाव में पाठ अरुचिकर हो जाता है और विद्यार्थी पाठ को नहीं समझ पाते। इस विधि के प्रयोग से अध्यापक विद्यार्थियों की कठिनाई का निदान भी नहीं कर सकता। वह समझता है कि सभी विद्यार्थी पाठ को समझ रहे हैं जब कि वास्तव में अनेकों विद्यार्थी उसे नहीं समझ पाते। एक बात यह भी है कि विद्यार्थी चाहें तो अध्यापक के व्याख्यान को सुनें अन्यथा न सुनें। उनसे कोई पूछने वाला नहीं होता कि उन्होंने पाठ्य-वस्तु को सुना या नहीं।

यदि अध्यापक किसी स्थान पर इस विधि का प्रयोग करना चाहे तो उसे एक पाठ-सूत्र बना लेना चाहिए ताकि वह पाठ्य-वस्तु को संगठित रूप से पढ़ा सके। उसे यह भी चाहिए कि व्याख्यान के बीच में प्रदर्शन भी करता रहे, तभी व्याख्यान विधि सार्थक हो सकती है।

(२) **पाठ्य-पुस्तक विधि**—पाठ्य-पुस्तक विधि भी बहुत पहले से चली आ रही है। भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में और विशेष कर जूनियर हाई स्कूलों में जहाँ कि पाठ्य-पुस्तक में पूरे पाठ्य-क्रम की बातें लिखी मिल जाती हैं, अध्यापक इस विधि का प्रयोग करने का प्रयत्न करते हैं; फिर भी अकेले इसी का प्रयोग किया जाना उचित नहीं है। प्राचीन समय में अध्यापक पाठ्य-पुस्तक में से विद्यार्थियों को कुछ गृह-कार्य दे देता था और अगले दिन विद्यार्थी याद की हुई वस्तु को दुहराते थे। विद्यार्थियों की प्रगति को जानने के लिए अध्यापक प्रत्येक से प्रश्न पूछा करता था। जो पाठ याद करके नहीं सुनाता था उसे दण्ड मिलता था। उस समय शिक्षा का उद्देश्य पाठ्य-पुस्तकों से विषय को पढ़कर स्मरण करना तथा इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि करना था। पाठ्य पुस्तकों से वैज्ञानिक तथ्यों को याद किया जाता था। विद्यार्थी भले ही तथ्यों का सिद्धान्तों से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते थे परन्तु तथ्यों को रट कर याद अवश्य कर लेते थे। यह कहना चाहिए कि प्राचीन काल में विषय ज्ञान का उद्देश्य पाठ्य-पुस्तकों को याद कर लेना बना लिया गया।

बहुत बाद में चलकर हाल क्वैस्ट (Hall Quest) तथा अन्य विद्वानों ने लोगों को इस ओर सचेत किया कि पाठ्य-पुस्तक को एक अन्तिम उद्देश्य की भाँति न मानकर पाठन की एक सहायक सामग्री की भाँति माना जाना चाहिये। उनका कहना था कि विद्यार्थियों को

इस प्रकार पढ़ाया जाना चाहिए ताकि वे पाठ्य-पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक जीवन की समस्याओं के हल करने के लिये प्रयोग कर सकें। आजकल पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जा रहा है।

पाठ्य-पुस्तक विधि के भी कुछ गुण हैं तथा उसके कुछ दोष भी हैं। यदि पाठ्य-पुस्तकों तथा सहायक पुस्तकों को प्रदर्शन तथा प्रयोग द्वारा सीखे गये ज्ञान की पूर्ति के लिये उपयोग में लाया जाय तो उनका महत्व अधिक बढ़ जाता है। विद्यार्थी कक्षा में पढ़ी हुई वस्तुओं को घर में पाठ्य-पुस्तक की सहायता से दुहरा सकता है। विद्यार्थियों का पाठ्य-पुस्तकों में से गृह कार्य दिया जा सकता है जिससे वे घर में कार्य ग्रस्त रहते हैं। उनमें उत्तरदायित्व की भावना भी जाग्रत होती है क्योंकि वे गृह कार्य को उचित समय पर घर से कर ले जाना अपना कर्त्तव्य समझने लगते हैं। पुस्तकों से जो गृह कार्य दिया जाय यदि उसे समस्या हल करने के रूप में दिया जाय तो वह अधिक महत्व-पूर्ण समझा जाता है। इस प्रकार की समस्या के लिए वे अनेकों सहा-यक पुस्तकों का अध्ययन करने की चेष्टा करते हैं और उन्हें समस्या हल करने में रुचि उत्पन्न होती है। विज्ञान विषय में अनेकों उपविषय ऐसे होते हैं जिनको पाठ्य-पुस्तकों में संगठित रूप में लिखा होता है और विद्यार्थी उनको पढ़कर उन्हें अच्छी तरह समझने लगता है। ऐसे उपविषयों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अनुसन्धानों के सम्बन्ध में सूचना, कुछ दशाओं का वर्णन, विज्ञान सम्बन्धी सूत्र, रासायनिक विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान सम्बन्धी विधियाँ आदि।

यदि पाठ्य-पुस्तक अच्छी प्रकार से लिखी गई हो और उसमें स्थान-स्थान पर दृष्टांतों की सहायता से समझाया गया हो तो विद्यार्थी उनसे ज्ञान प्राप्त करने में रुचि लेते हैं। यदि पाठ्य-पुस्तक रुचिकर होती है तो विद्यार्थियों में पढ़ने की रुचि उत्पन्न होती है जिसका शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है।

अनेकों विद्यार्थियों में पाठ्य पुस्तकों को रट कर याद कर लेने की प्रवृति हो जाती है। इससे उनकी तर्क शक्ति का विकास नहीं होने पाता। यदि पाठ्य-पुस्तक विधि का प्रयोग किया जाय तो अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थियों के पाठ याद करने के पश्चात् उनमें वाद-विवाद करवाये जिससे यह ज्ञात हो जाय कि कौन विद्यार्थी पाठ को

समझा है और कौन नहीं। वाद-विवाद से विद्यार्थी अपने सन्देहों को तथा कमजोरियों को भी दूर कर लेंगे। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि विद्यार्थी समझते हैं कि पाठ्य-वस्तु को पाठ्य-पुस्तक से पढ़ना है इसलिए वह परीक्षा के कुछ दिन पूर्व उसे पढ़कर परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयत्न करता है। वह दिन प्रतिदिन कार्य लगन से नहीं करता बल्कि परीक्षा के कुछ दिन पूर्व से अध्ययन आरम्भ करता है। इस प्रवृत्ति से शिक्षा का उद्देश्य समाप्त हो जाता है। विद्यार्थी बिना समझे बूझे पाठ को याद कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है। उसका मानसिक विकास पूर्ण रूप से नहीं होने पाता। यदि पाठ्य-पुस्तक उचित प्रकार से नहीं लिखी गई हो तब तो उससे विद्यार्थियों में पाठ्य-पुस्तकों के लिये अरुचि उत्पन्न हो जाती है और वे विषय ज्ञान भी सही रूप से प्राप्त नहीं कर पाते।

हमें चाहिये कि यदि हम आवश्यकतानुसार पाठ्य-पुस्तक विधि का प्रयोग भी करें तो पुस्तक रटकर याद कर लेना उद्देश्य न बनायें बल्कि उसे एक सहायक सामग्री की भाँति प्रयोग करें। विद्यार्थियों को केवल एक पाठ्य-पुस्तक न पढ़ायें बल्कि उन्हें अन्य कई सहायक पुस्तकों को पढ़ने के लिए भी प्रोत्साहित करें। विद्यार्थियों द्वारा पाठ्य-पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान की परीक्षा के लिए नित्य दिन उन्हें वाद-विवाद के लिए प्रोत्साहित करें जिससे उनकी कठिनाइयों तथा कमजोरियों का पता लग सके। पाठ्य-पुस्तकों को प्रदर्शन तथा प्रयोग द्वारा प्राप्त ज्ञान की पूर्ति के लिए प्रयोग करें। केवल उचित प्रकार की पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करें। ऐसी पाठ्य-पुस्तकों को विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए छाँटना चाहिये जिनमें कुछ समस्याओं को प्रस्तुत किया गया हो तथा उनको हल करने के लिए कुछ सुझाव भी दिये गये हों।

(३) **समस्या विधि**—समस्या विधि विज्ञान शिक्षण की एक उत्तम विधि मानी जाती है। यह विधि आर्मस्ट्रौंग (Armstrong) की ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic method) के आधार पर ज्ञात की गई है। इस विधि के अनुसार कक्षा के वाद-विवाद के सहारे विद्यार्थियों के सम्मुख समस्या प्रस्तुत की जाती है जिससे वे उसका हल ज्ञात करने में तत्पर हो जाते हैं। समस्या का हल करना उनके लिए आवश्यक सा हो जाता है और समस्या के हल हो जाने पर उनको तृप्ति होती

है। समस्या को विद्यार्थियों की आवश्यकता पर आधारित होना आवश्यक है। चार्टरस् (Charters) महोदय का कहना है—"When the need arises, it gives rise to the problems of satisfying the need.........Just as each unit of subject matter was created to satisfy some need, we also say it was created to solve some problem. The difference between the need and the problem is chiefly this, that the need has feeling in it, while the problem is purely intellectual."*

समस्या विधि को सफल बनाने के लिए उसे विद्यार्थी के स्तर का होना चाहिये तथा उसकी आवश्यकता की पूर्ति करनी चाहिये। समस्या को विद्यार्थियों के अनुभवों पर आधारित होना चाहिए और यह भी हो कि विद्यार्थी उसे हल करने के लिये उसकी आवश्यकता का अनुभव करें। समस्याओं को कठिनाई के क्रम में होना चाहिये। पहली समस्या सरल होनी चाहिये, दूसरी कुछ कठिन, तीसरी अधिक कठिन आदि। एक मुख्य समस्या के अन्तर्गत अनेकों समस्याएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। प्रत्येक समस्या को एक-दूसरे से सम्बन्धित होना चाहिए तथा उनको विद्यार्थियों के अनुभवों पर आधारित होना चाहिए। कुछ मुख्य समस्यायें जो विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत की जा सकती हैं उनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(१) हम अपने घरों में प्रकाश के लिए क्या-क्या उपाय करते हैं ?

(२) हम लोग पौधों को किन किन कार्यों के लिए प्रयोग करते हैं ; आदि।

समस्या प्रस्तुत करने के पूर्व अध्यापक को समस्या का संश्लेषण तथा विश्लेषण करे रहना चाहिए ताकि वह कक्षा में समस्या का हल सही रूप से करवा सके ; तभी वह विद्यार्थियों से उपयुक्त प्रश्न पूछ सकता है। समस्या को वाद-विवाद पर आधारित होना चाहिए। यदि कोई समस्या विद्यार्थियों पर थोपी जावेगी तो वे उसमें रुचि नहीं लेंगे। विद्यार्थी समस्या में तभी रुचि लेंगे जबकि समस्या रुचिकर हो। समस्या रुचिकर तभी होती है जब कि वह विद्यार्थियों की आवश्यकताओं पर

*. Charters, W. W. : 'Methods of Teaching'; Row, Peterson and Co., 1912.

आधारित हो। समस्या विधि को आवश्यकतानुसार बदला जा सकता है। आजकल यह विधि उपयोगी समझी जाती है।

(४) **योजना पद्धति**—योजना पद्धति जिसे अंग्रेजी में में 'प्रोजेक्ट मैथड' कहते हैं, विज्ञान शिक्षण की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। इस पद्धति के जन्मदाता डब्लू० एच० किलपैट्रिक (W. H. Kilpatrick) हैं। आप ड्यूवी (Dewey) के शिष्य हैं और आपने उनके प्रयोजनवाद (Pragmatism) के सिद्धान्तों के आधार पर ही योजना पद्धति को जन्म दिया। इस पद्धति का प्रयोग विद्यालय के सभी विषयों के शिक्षण में किया जाता है परन्तु विज्ञान शिक्षण में इस पद्धति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

इस पद्धति का वर्णन करने के पूर्व हमें 'योजना' शब्द का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। किलपैट्रिक महोदय का कहना है कि योजना वह सहृदय उद्देश्यपूर्ण कार्य है जिसे लगन के साथ सामाजिक वातावरण में किया जाता है। उन्होंने कहा है कि जब कोई व्यक्ति किसी निश्चित क्रम में कोई कार्य करना आरम्भ करता है और स्वयं यह समझ पाता है कि वह क्या करने जा रहा है तो हम कहते हैं कि वह किसी योजना की पूर्ति के लिये कार्य कर रहा है। योजना ही व्यक्ति के चिन्तन को संगठित करती है। एक व्यक्ति जिसने एक विशेष प्रकार की योजना पर कार्य किया हो, उसे कार्य करने का एक निश्चित क्रम ज्ञात हो जाता है जिसकी सहायता से वह जीवन में आने वाली समान प्रकार की कठिनाइयों का निवारण कर सकता है। किलपैट्रिक महोदय के शब्दों में—"Whenever an individual starts off on a certain line and sees for himself what he is going to do, he is working on a project. A project is something projected, a project, a line of activity held up before one and accepted for excution...... It is the child's project that has organized his thinking......A child that has worked through a-project has in fact a model of action for use when he meets similar difficulty in life".[१]

स्टीवेन्सन (Stevenson) महोदय का कहना है कि योजना एक समस्या पूर्ण कार्य है जिसे स्वाभाविक परिस्थितियों में पूर्ण किया जाता है। वास्तव में योजना पद्धति समस्या विधि का ही परिणाम स्वरूप है।

---

१. Kilpatrick, W. H. : 'Project Teaching'; General Science Quarterly, No. 2, Vol. 1, 1917.

योजना के अन्तर्गत अनेकों समस्याएँ होती हैं जिनका समाधान करना ही योजना की पूर्ति करना होता है। हन्टर महोदय ने ठीक ही कहा है "The project method consists of number of problems subordinated in the carrying out of the project which in turn coordinates and correlates the sequence of individual problems. It is the logical outcome of the problem method and is useful in the same way as the problem method is useful".[१]

योजना पद्धति को जन्म इसलिये दिया गया ताकि विद्यार्थियों को वास्तविक शिक्षा मिल सके, वे सक्रिय होकर विषय ज्ञान प्राप्त कर सकें, उन्हें चिन्तन तथा तर्क करने का अवसर मिल सके, उनका पाठ्य क्रम उनकी रुचियों, अभिरुचियों तथा आवश्यकताओं पर निर्धारित हो सके तथा उन्हें सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर शिक्षा दी जा सके।

योजना पद्धति की अनेकों विशेषताएँ हैं। इस पद्धति के अनुसार बालक के सम्मुख जो समस्या प्रस्तुत की जाती है उसे पूरा करने का एक प्रयोजन अथवा उद्देश्य होता है। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिये बालक सक्रिय रहता है और मन लगाकर उसे पूरा करने का प्रयत्न करता है। इस पद्धति में बालक की क्रियाशीलता को प्रधानता दी जाती है। इसलिये कहा जाता है 'Project indicates purposeful activity.' इस पद्धति के अनुसार कार्य करने में बालक रुचि लेता है और अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से समझता है। वह जानता है कि उद्देश्य के पूर्ण होने पर उसे सफलता मिलेगी अन्यथा असफलता। योजना पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों को जो कार्य करवाया जाता है वह वास्तविक होता है और स्वाभाविक रूप से वास्तविक परिस्थिति में पूरा किया जाता है। इससे उसके जीवन तथा कार्य में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिस कार्य का जीवन से सम्बन्ध होता है उसे बालक अधिक सक्रिय होकर करता है। बालक योजना विधि में रुचि लेता है क्योंकि वह जानता है कि योजना के आधीन जो कार्य किये जाते हैं वे उपयोगी होते हैं। उपयोगी कार्यों में बालक वास्तविक रुचि लेता है। योजना पद्धति की एक विशेषता यह है कि इसमें बालक को कार्य करने की स्वतन्त्रता रहती है। वह अपनी इच्छानुसार

---

१. Hunter, G. W. : 'Science Teaching'; American Book Co., New York, 1934, Page 191.

कार्य करता है । योजना पद्धति मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है । थार्नडाइक के प्रभाव के नियम से यह पद्धति सहमत है । जिन कार्यों को करने से बालक को सफलता मिलती है उसे संतोष होता है और उनकी प्रतिक्रियाओं को वह अपना लेता है । अवयवीवाद (Gestalt Psychology) से भी योजना पद्धति सहमत है । जिस प्रकार अवयवीवाद के अनुसार सीखने वाला उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है उसी प्रकार इस पद्धति के अनुसार भी बालक उद्देश्य की पूर्ति के लिये क्रियाशील रहता है ।

योजना पद्धति के प्रयोग के लिए एक निश्चित क्रम का अनुसरण करना आवश्यक है तभी वह सफल हो सकता है ।

अध्यापकों को चाहिए कि कक्षा में वाद-विवाद के सहारे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करें ताकि विद्यार्थी स्वयं योजना को प्रस्तावित करें । विद्यार्थी योजना तभी प्रस्तावित करेंगे जब कि उन्हें उस परिस्थिति में रुचि होगी । अध्यापक को चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी योजना प्रस्तावित करने के लिये स्वतन्त्रता दे । इतना अवश्य है कि सभी विद्यार्थियों की योजनाओं को नहीं माना जा सकता है । कक्षा में वाद-विवाद कर उचित योजनाओं को स्वीकार करना चाहिये । उस योजना के लिये कार्य-क्रम आरम्भ कर देना चाहिए जो सबको मान्य हो । कार्य-क्रम इस प्रकार का होना चाहिये कि कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी उसमें हाथ बटा सके । एक विद्यार्थी से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह पूरी योजना का कार्य अकेले कर लेगा । प्रत्येक विद्यार्थी को उसके अनुकूल कार्य देना चाहिये । विद्यार्थियों को अपना कार्य ज्ञात हो जाने पर उन्हें सक्रिय होकर उसे पूरा करने में लग जाना चाहिए । योजना पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों को और न कि अध्यापक को अधिक कार्य करना आवश्यक है । वाटकिन्स (Watkins) ने अपने लेख में लिखा है*"School work by means of project should be reconstructed in such a way that the students rather than the teacher will do most of the work, that the students are working for ends which they see as immediately worth while and not for highly artificial ends which even the teacher

* Watkins, R. K. : 'Technique & Value of Project Teaching in General Science'; General Science Quarterly, May, Nov. 1923, Janu. 1924.

does not always see and which are to be attained only in the remote future". अपने कार्यों की पूर्ति के लिए विद्यार्थी को क्रियाशील तथा प्रयत्नशील रहना आवश्यक है। अध्यापक को चाहिये कि विद्यार्थियों को मार्ग प्रदर्शन कराता रहे और उन्हें उन पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों के बारे में बतलाता रहे जिनसे उन्हें अपने कार्य की पूर्ति में सहायता मिल सके। योजना की प्रगति को बीच-बीच में देखने के लिए विद्यार्थियों द्वारा अपने-अपने कार्य की प्रगति के बारे में रिपोर्ट पढ़वाना भी अच्छा समझा जाता है। योजना की समाप्ति में अध्यापक तथा विद्यार्थियों को मिलकर यह निर्णय करना चाहिये कि योजना की पूर्ति में कहाँ तक सफलता मिली है। इस अवसर पर विद्यार्थियों को अपनी-अपनी त्रुटियाँ भी मालूम हो सकती हैं जिनको वे आगे दूर कर सकते हैं। अन्त में विद्यार्थियों से अपनी पुस्तिकाओं में योजना के सम्बन्ध में लेख लिखवाना चाहिये और अध्यापक को उससे यह ज्ञात करना चाहिये कि किन-किन विद्यार्थियों का कार्य सफल रूप से समाप्त हुआ है। जहाँ तक सम्भव हो विद्यार्थियों के छोटे-छोटे समूह बना लेने चाहिये और प्रत्येक समूह में एक-एक योजना दी जानी चाहिये।

योजना पद्धति का एक साधारण उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। मान लीजिये आपको विद्यालय में एक विज्ञान बाटिका बनवानी है। आप कक्षा में वाद-विवाद द्वारा विद्यार्थियों को विज्ञान बाटिका बनाने के लिये प्रोत्साहित कर सकते हैं। वाद-विवाद इस ढंग से किया जाय कि विद्यार्थी स्वयं विज्ञान वाटिका की योजना को प्रस्तावित करें। जब सब विद्यार्थी इस योजना से सहमत हो जावें तो इसके लिये कार्यक्रम बनाना चाहिये। कुछ विद्यार्थियों को उस भूमि की नाप-जोख का कार्य दिया जा सकता है जिसमें वाटिका बनानी है। कुछ को उस भूमि में क्यारियाँ बनाने का काम दिया जा सकता है, कुछ को विभिन्न क्यारियों में उस मौसम के फूलों व सब्जियों के बीज बोने को कहा जा सकता है, कुछ सिंचाई का प्रबन्ध कर सकते हैं, कुछ जानवरों से बाटिका की रक्षा का प्रबन्ध कर सकते हैं, कुछ यह ज्ञात कर सकते हैं कि उस वाटिका में कितनी सब्जी हुई है तथा उसे बाजार में बेचने से विद्यालय को कितना लाभ हो सकता है, आदि।

विज्ञान में अनेकों प्रकार की योजनाएँ हो सकती हैं। ये योजनाएँ केवल यंत्रों अथवा वाटिकाओं अथवा एक्येरियम आदि के निर्माण

तक ही सीमित नहीं होती बल्कि ये समस्यात्मक अथवा बौद्धिक रूप की भी हो सकती हैं। उदाहरण के रूप में विद्यार्थी एक प्रकार के पौधे के विकास का विभिन्न परिस्थितियों में अध्ययन कर सकते हैं। योजना सामाजिक रूप की भी हो सकती है; जैसे विद्यार्थी मिल-जुलकर उन स्थानों की खोज कर सकते हैं जहाँ मच्छर पैदा होते हैं।

कुछ विभिन्न प्रकार के विज्ञान सम्बन्धी योजनाओं के सुझाव निम्नलिखित हैं :—

(१) **निर्माण सम्बन्धी योजना**; जैसे—एक्येरियम, बाईबेरियम टरेरियम, म्यूजियम तथा यंत्रों का निर्माण, आदि।

(२) **निरीक्षण सम्बन्धी योजना**; जैसे—किन स्थानों में कौन से कीड़े मिलते हैं, किन स्थानों में कौन से पौधे मिलते हैं, किन पौधों में मूसा जड़ होती है, किन फूलों में तीन पंखड़ी होती हैं आदि का निरीक्षण।

(३) **पढ़ने तथा सूचना सम्बन्धी योजना**; जैसे—पढ़कर यह सूचना प्राप्त करना कि बीमारियों के क्या-क्या कारण होते हैं या किस वैज्ञानिक ने किस यंत्र का आविष्कार किया, आदि।

(४) **पहिचानने सम्बन्धी योजना**;जैसे—वाटिका में यह पहिचानना कि कौन-सी व्यर्थ घास है और कौन-सा उपयोगी पौधा, या विभिन्न प्रकार के बीजों को पहिचानना, या खेतों में यह पहिचानना कि कौन-सा पौधा किस अनाज का है, आदि।

(५) **संग्रह सम्बन्धी योजना**; जैसे—विभिन्न प्रकार की तितलियों, चिड़ियों, पानी के जीवों, वैज्ञानिकों के चित्रों, वैज्ञानिक यंत्रों के चित्रों, विज्ञान सम्बन्धी लेखों आदि का संग्रह करना।

(६) **चीड़फाड़ सम्बन्धी योजना** ; जैसे—फूल के विभिन्न भागों को खोलकर उनके अंगों का अध्ययन करना, जड़ अथवा तनों के सैक्शन काटकर उनके अङ्गों का अध्ययन करना; मेंढ़क, केंचुए आदि को चीरकर उनके विभिन्न अङ्गों की स्थिति का अध्ययन करना; आदि।

(७) **रक्षा सम्बन्धी योजना**; जैसे--विज्ञान वाटिका की रक्षा के लिये उपाय करना, खेतों अथवा बाटिकाओं से व्यर्थ घास को हटाना आदि।

योजना पद्धति विज्ञान शिक्षण की एक उपयोगी पद्धति है। इससे

बालक अपने अनुभव के आधार पर सीखते हैं। वे सक्रिय होकर कार्य करते हैं और सीखते हैं। उन्हें स्वतंत्र रूप से सोचने तथा विचारने का अवसर प्राप्त होता है। इस पद्धति के अनुसार विषय वस्तु का अथवा बालक के कार्य का उसके जीवन से सम्बन्ध स्थापित होता है और इसलिये बालक उस कार्य में रुचि लेता है। इस पद्धति से बालक का शारीरिक तथा मानसिक विकास होता है क्योंकि उसे योजना पूर्ति के लिये पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त कुछ शारीरिक कार्य भी करना पड़ता है। यह पद्धति मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है और बालक को केन्द्र मानकर चलती है।

यह पद्धति भी दोष रहित नहीं है। इस पद्धति को अपनाने में अधिक धन की आवश्यकता होती है। जिन विद्यालयों में धन का अभाव है वहाँ इसे प्रयोग नही किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि इस पद्धति को छोटे-छोटे समूहों में अपनाया जा सकता है। उन विद्यालयों में जहाँ विद्यार्थियों की संख्या अधिक हो, इस पद्धति का प्रयोग कठिन है। इस पद्धति को अपनाने से पाठ्य-क्रम को समय पर पूरा नहीं किया जा सकता है। यदि अध्यापक सक्रिय न रहे तो इस पद्धति के अनुसार विद्यार्थी केवल इधर-उधर सुनकर अथवा एक-दो पुस्तकों में पढ़कर योजना की रिपोर्ट तैयार कर लेते हैं और अध्यापक को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इससे बहुत कुछ अहित हो जाता है। इस पद्धति में बालकों के समक्ष अधिकतर प्रौढ़ जीवन की समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं जो उचित नहीं हैं। इस पद्धति के अनुसार प्राप्त ज्ञान शृंखलाबद्ध नहीं होता। सभी विषयों का ज्ञान अपूर्ण रहता है।

इतने दोष होते हुये भी इस पद्धति के महत्व को कम नहीं किया जा सकता है। जहाँ तक सम्भव हो सके हमें इस पद्धति के दोषों को दूर कर इस पद्धति को अपनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(५) **प्रयोग-प्रदर्शन विधि**—विज्ञान शिक्षण में इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि जो कुछ भी विद्यार्थियों को पढ़ाया जाय उसे प्रयोग पर आधारित होना चाहिये। ऐसा करने से विद्यार्थी पढ़ाये गये सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से समझ लेते हैं। कहने का अर्थ यह है प्रयोग-प्रदर्शन को व्याख्यान का पूरक होना चाहिये, तभी विद्यार्थी उसे स्पष्ट रूप से समझ पावेंगे। यदि हमें यह पढ़ाना है कि धातु ताप के कारण फैलते हैं तो हम इस सिद्धान्त के लिये छल्ले-गेंद वाले यंत्र से प्रयोग

कर विद्यार्थियों को दिखला सकते हैं। विद्यार्थी कान से व्याख्यान सुनते रहेंगे और नेत्रों से प्रयोग देखेंगे। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान सदा दृढ़ होता है। तथ्यों, सिद्धान्तों तथा प्रत्ययों का सही ज्ञान देने के लिए व्याख्यान के साथ-साथ प्रयोग-प्रदर्शन भी किया जाना चाहिये। इस विधि का प्रयोग करने से थोड़े समय में अधिक पाठ-वस्तु को पढ़ाया जा सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि प्रयोग–प्रदर्शन में यह दोष है कि जिस समय अध्यापक प्रदर्शन करता है, विद्यार्थी निष्क्रिय रूप से बैठे रहते हैं। इस दोष को हटाने के लिए अध्यापक को चाहिये कि प्रदर्शन करते समय विद्यार्थियों को निरीक्षण कार्य में व्यस्त रखे। सम्भव हो तो बीच-बीच में उनसे निरीक्षण सम्बन्धी प्रश्न पूछते जावें। कभी-कभी विद्यार्थियों द्वारा स्वयं भी प्रदर्शन करवाया जा सकता है।

प्रदर्शन को सफल बनाने के लिये कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है; जैसे—

जो भी प्रयोग अध्यापक करे उसे सफल होना चाहिये। यदि अध्यापक बार-बार कहता है 'इसे ऐसा होना चाहिए था परन्तु यहाँ नहीं हुआ' तो विद्यार्थी उसमें विश्वास करना छोड़ देंगे। अध्यापक को चाहिये कि उसे जिस प्रयोग का प्रदर्शन करना है उसका कक्षा में जाने के पूर्व अभ्यास कर ले। विद्यार्थियों के कक्षा में प्रवेश करने के पूर्व प्रयोग सम्बन्धी यंत्र तथा वस्तुएँ मेज के ऊपर रख लेनी चाहिये ताकि कक्षाध्यापन में किसी प्रकार को बाधा न पड़े। प्रदर्शन के लिए यंत्र का आकार इतना बड़ा होना चाहिये कि कक्षा के सभी विद्यार्थी उसको सरलता से देख सकें। जिन यन्त्रों का आकार छोटा होता है उनके सम्बन्ध में प्रदर्शन कराना अनुचित है। उन्हें व्यक्तिगत रूप में दिखलाया जाना चाहिये। अध्यापक को यह प्रयत्न करना चाहिये कि प्रयोग साधारण हो और शीघ्र ही पूरा हो सके। विद्यार्थी प्रयोग के परिणाम के लिये बहुत उत्सुक रहते हैं। यदि प्रयोग के परिणाम कक्षा में ज्ञात नहीं हो पाते तो उसका विद्यार्थियों के लिये उपयोग नहीं होता। प्रयोग करने के पश्चात् यन्त्र को सावधानी से अपने स्थान में रख देना चाहिये। प्रदर्शन करने में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होनी चाहिये। प्रदर्शन के पश्चात् अध्यापक को विद्यार्थियों के निरीक्षण के सम्बन्ध में वाद-विवाद कर लेना भी उचित है। प्रयोग के निष्कर्ष अवश्य ज्ञात किये जाने चाहिये और सामन्यीकरण भी किया जाना चाहिये। प्रदर्शन को इस प्रकार प्रयोग में लाना चाहिये कि उससे

विद्यार्थियों में उस सम्बन्ध में आगे अध्ययन करने के लिए रुचि उत्पन्न हो सके।

(६) **प्रयोगशाला विधि**—प्रयोगशाला विधि से हमारा अर्थ है कि विद्यार्थियों को इस प्रकार सिखलाया जाना चाहिये कि विद्यार्थियों को स्वयं प्रयोग करने तथा निरीक्षण करने का अवसर मिले। अध्यापक उनकी क्रियाओं का निरीक्षण करे और विद्यार्थियों से प्रयोग तथा निरीक्षण के आधार पर लिखित काय करवाये। इस प्रकार सिखलाने में विद्यार्थी निश्चित रूप से सक्रिय रहते हैं। सम्भवतः इस प्रकार विद्यार्थी जितने सक्रिय रहते हैं उतने किसी अन्य कार्य विधि द्वारा सिखलाने में नहीं रहते। प्रयोगशाला एक ऐसा स्थान है जहाँ अध्यापक तथा विद्यार्थी मिल-जुलकर प्रश्न करते है तथा समस्या प्रस्तुत करते हैं और फिर नियंत्रित दशाओं में उनका परीक्षण करते हैं। यदि किसी अन्य विधि के साथ मिलाकर इसे प्रयोग किया जाय तो समस्याओं का हल करने की यह सबसे उत्तम विधि हो सकती है। प्रयोगशाला के सभी यंत्र तथा वस्तुएँ समस्याओं का हल ज्ञात करने में सहायक होती है। प्रयोगशाला विधि के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) विद्यार्थी उन सिद्धान्तों तथा तथ्यों को स्वयं जाँच करता है तथा उन्हें सिद्ध करता है जो पहले से सिद्ध किए रहते हैं और सबको माण्य रहते हैं।

(२) प्रयोगशाला की सामग्री एक प्रकार से सहायक सामग्री का काम करती हैं जिनकी सहायता से सिद्धान्तों, तथ्यों तथा प्रत्ययों को सरलता से समझाया जा सकता है।

(३) प्रयोगशाला के प्रयोग से वैज्ञानिक विधि का प्रशिक्षण मिलता है।

(४) प्रयोगशाला की विधि विद्यार्थी को प्रायोगात्मक रूप से अपनी समस्याओं का हल करना सिखाती है।

(५) इसी से विद्यार्थी प्रयोगशाला की साधारण पद्धतियों को समझने लगता है।

यदि अध्यापक विद्यार्थियों को मार्ग-प्रदर्शन कराता रहे तथा उनके कार्यों का निरीक्षण करता रहे तो प्रयोगशाला विधि के परिणाम उच्च कोटि के होते हैं। अध्यापक को चाहिये कि इस विधि का प्रयोग व्यवस्थित तथा संगठित रूप से करे। प्रयोग करने के पश्चात् वाद विवाद

कर लेना भी उचित है। इससे विद्यार्थी अपने संदेहों को दूर करते हैं और अपनी समस्याओं का हल करते हैं।

हमें चाहिए कि कक्षा के कार्य तथा प्रयोगशाला के कार्य में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करें। कक्षा में अध्यापन के समय जो समस्याएँ उपस्थित होती हैं उनको प्रयोगशाला में हल किया जाना चाहिए। प्रयोगशाला में किये जाने वाले प्रयोग विद्यार्थियों के ऊपर नहीं थोपे जाने चाहिये बल्कि प्रयोगशाला में जाने के पहले अध्यापक तथा विद्यार्थियों में वाद-विवाद होना चाहिये और उसके आधार पर समस्या प्रस्तुत की जानी चाहिये। इससे अध्यापक उस समस्या के महत्व को समझने लगेंगे। उसी समस्या का हल प्रयोगशाला में किया जाना चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थियों को प्रयोग करते समय उचित सहायता प्रदान करे तथा मार्ग प्रदर्शन करता रहे।

यदि अध्यापक सक्रिय न रहे तो प्रयोगशाला विधि सफल नहीं हो पाती। कछ विद्यार्थी तो प्रयोग इसलिये करते हैं क्योंकि उन्हें करने के लिये बाध्य किया जाता है। प्रयोगशाला में जिन समस्याओं का हल किया जाता है अनेकों बार वे वास्तविक समस्याएँ नहीं होती हैं और इसलिये प्रयोगशाला का कार्य नीरस हो जाता है। अनेकों अध्यापक विद्यार्थियों की कापियों में उनके प्रयोग सम्बन्धी परिणाम तथा निष्कर्षों में उतना ध्यान नहीं देते जितना कि उनके द्वारा बनाये गये चित्रों में देते है। इससे प्रयोगशाला विधि का उद्देश्य समाप्त हो जाता है। हमें चाहिये कि हम इस बात को देखने का प्रयत्न करें कि विद्यार्थी सिद्धान्तों को भली-भाँति समझा है अथवा नहीं। अनेकों विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थियों की कापियों से नकल कर अपनी कापियों में प्रयोग के निरीक्षण, परिणाम तथा निष्कर्ष लिख लेते हैं। यदि अध्यापक प्रयत्नशील नहीं है तो वह ऐसे विद्यार्थियों की प्रगति नहीं करा सकता।

हमें यह भी आशा नहीं करनी चाहिये कि प्रत्येक विद्यार्थी प्रयोगशाला में व्यक्तिगत रूप से कार्य कर सकता है। कुछ विद्यार्थियों के लिये विशेषकर छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये प्रयोग-प्रदर्शन अधिक महत्त्वपूर्ण होता है और कुछ विद्यार्थियों के लिये प्रयोगशाला का व्यक्तिगत कार्य अधिक मूल्यवान होता है। कुछ लोगों का कहना है कि प्रयोग-प्रदर्शनविधि अधिक मूल्यवान् है और कुछ कहते हैं कि प्रयोगशाला विधि अधिक मूल्यवान है। जौनसन (Johnson) ने अपने अनुसन्धान

कार्य से निष्कर्ष निकाला है कि छोटी कक्षाओं में साधारण विज्ञान के लिये प्रयोग-प्रदर्शन विधि प्रयोगशाला विधि से अधिक मूल्यवान है तथा कम खर्चीलो है।* इसी प्रकार के अनेकों अनुसंधान कार्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रयोग-प्रदर्शन विधि तथा प्रयोगशाला विधि अपने-अपने स्थानों में मूल्यवान हैं। प्रयोगशाला के कार्य के पहले प्रयोग-प्रदर्शन विधि का प्रयोग किया जाना चाहिये ताकि विद्यार्थी यंत्रों से परिचित हो सकें। जहाँ प्रयोग-प्रदर्शन विधि से काम चल सके वहाँ व्यक्तिगत रूप से प्रयोगशाला में कार्य करवाना उचित नहीं है। इससे समय तथा धन की बचत हो सकती है। प्रदर्शन के लिये उन प्रयोगों को अधिकतर छाँटना चाहिये जिनको करने में कठिनाई होती है या किसी प्रकार का भय होता है और जिनके करने में विद्यार्थियों को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। छोटी कक्षाओं में अधिकतर प्रयोग-प्रदर्शन विधि का प्रयोग उचित है तथा बड़ी कक्षाओं में प्रयोगशाला विधि का प्रयोग किया जाना उचित है। प्रयोग प्रदर्शन विधि से विद्यार्थी अपने सीखने वाली वस्तुओं तथा पदार्थों से परिचित होता है तथा प्रयोगशाला विधि से उसके सिद्धान्तों को समझने की शक्ति का तथा सामान्यीकरण करने की शक्ति का विकास होता है।

(७) **पर्यटन पद्धति**—पर्यटन पद्धति भी विज्ञान शिक्षण में बहुत आवश्यक है। प्राचीन काल से ही पर्यटन को शिक्षा में एक प्रमुख स्थान दिया गया है। पेस्टेलोजी (Pestalozzi) तथा रूसो (Rousseau) जैसे महान् दार्शनिकों तथा शिक्षा शास्त्रियों ने पर्यटन को बालक की शिक्षा के लिये एक प्रमुख साधन माना है। विज्ञान शिक्षण में इसका और भी अधिक महत्त्वर्ण स्थान है। इसके सम्बन्ध में हमने इसी पुस्तक के 'पर्यटन' वाले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। पाठक इस पद्धति को समझने के लिये उस अध्याय को पढ़ें।

*. Johnson, P. O. : 'A Comparison of Lecture-Demonstration, Group Laboratory Experimentation, and Individual Laboratory Experimentation Method of Teaching High School Biology'; Journal of Educational-Research, Sept. 1928.

प्रश्न

(१) विज्ञान शिक्षण में व्याख्यान विधि का क्या स्थान है ? उसके गुण तथा दोषों पर प्रकाश डालिये ।

(२) पाठ्य-पुस्तक विधि से आप क्या समझते हैं ? विद्यालयों में विज्ञान विषय के पठन-पाठन में इस विधि का क्या महत्त्व है ?

(३) विज्ञान शिक्षण की योजना विधि पर एक निबन्ध लिखिये ?

(४) विज्ञान शिक्षा में प्रयोगशाला विधि तथा प्रयोग-प्रदर्शन विधि में आप किसे उत्तम समझते हैं और क्यों ? इन दोनों का उपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिये ?

(५) प्रयोगशाला विधि को सफल बनाने के लिये अपने सुझाव प्रस्तुत कीजिये ।

(६) समस्या विधि को विज्ञान शिक्षण में किस प्रकार प्रयोग किया जाना चाहिये और क्यों ?

अध्याय ७

अच्छे विज्ञान शिक्षक की योग्यताएँ

(Qualifications of a good Science Teacher)

अच्छे विज्ञान शिक्षक की आवश्यकता—आज का युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान के सम्बन्ध में अनेकों खोजें हो रही हैं। कृषि-शास्त्र, आयुर्विज्ञान, इन्जीनियरिंग आदि क्षेत्रों में विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धानों ने एक नया परिवर्तन कर दिया है। यद्यपि विज्ञान के कुछ हानिकारक यंत्रों के निर्माण ने विज्ञान के प्रति कुछ लोगों की श्रद्धा कम कर दी है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि विज्ञान का मूल्य भी कम हो गया है। हमारी संस्कृति की प्रगति विज्ञान रूपी पैमाने से ही नापी जा रही है। सम्भव है मनुष्य की सभी समस्याओं का हल विज्ञान से ही हो सके। ऐसे विषय का ज्ञान हर व्यक्ति को होना अनिवार्य है। हमारा यह अर्थ नहीं है कि हर व्यक्ति वैज्ञानिक बन जाय परन्तु इस वैज्ञानिक युग में उस व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है जो कि वैज्ञानिक संस्कृति (Scientific Culture) से परिचित न हो। इस प्रकार के ज्ञान की कुँजी विज्ञान के शिक्षक के हाथ में है। वही उन विद्यार्थियों को जो कल के नागरिक बनने वाले हैं विज्ञान की वास्तविक उपयोगिता को समझा सकता है। वही उन्हें वैज्ञानिक संस्कृति से परिचित करा

सकता है तथा उनमें विज्ञान के प्रति वास्तविक श्रद्धा उत्पन्न कर सकता है। एक अच्छा शिक्षक अपने निर्देशों से विद्यार्थियों को विज्ञान की सामाजिक तथा आर्थिक उपयोगिता समझा सकता है तथा उनमें विज्ञान को बौद्धिक रूप से समझने की योग्यता का विकास कर सकता है। यह सब कुछ एक अच्छे विज्ञान के अध्यापक अथवा शिक्षक द्वारा ही सम्भव है। इसलिये एक अच्छे विज्ञान के शिक्षक की आवश्यकता अनिवार्य है।

विज्ञान शिक्षकों की योग्यता के सम्बन्ध में खोजें—विज्ञान शिक्षकों की योग्यता के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने अध्ययन किया है जिनमें फिन्ले (Finley) तथा हर्ड (Hurd) का नाम उल्लेखनीय है।* फिन्ले महोदय ने इस बात की चर्चा की है कि पहले माध्यमिक विद्यालयों में जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान एक नियमित रूप से पढ़ाये जाते थे परन्तु बाद में उनमें यह परिवर्तन किया गया कि उनको पढ़ाने का मुख्य उद्देश्य यह बनाया गया कि उनके सिद्धांतों का व्यावहारिक जीवन में उपयोग हो सके। इसके लिये विज्ञान के अध्यापकों के लिये आवश्यक हो गया कि वे विज्ञान के इन क्षेत्रों तथा इनसे सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों का पूर्ण रूप से अध्ययन करें। हर्ड महोदय ने यह समस्या प्रस्तुत की कि विज्ञान के अध्यापक के प्रशिक्षण के लिये विषय वस्तु पर अधिक बल दिया जाना चाहिये या शिक्षण विधियों पर। हम इस स्थान पर इन खोजों का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं करेंगे।

अच्छे विज्ञान के अध्यापक की आवश्यक योग्यताएँ—हम तो यह कहेंगे कि एक विज्ञान के अध्यापक की योग्यता का निर्णय विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यो के आधार पर किया जा सकता है। इस आधार पर यही कहा जा सकता है कि विज्ञानशिक्षक में दो मुख्य योग्यताएँ होनी चाहिए :—

(१) उसे विज्ञान के सभी क्षेत्रों तथा उससे सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा वैज्ञानिक संस्कृति (Scientific Culture) का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

(२) उसे विज्ञान शिक्षण की विभिन्न विधियों में दक्ष होना चाहिए।

---

*1. Finley, C. W. : 'Contribution to Education', No 199., Teacher's College, 1927.

2. Hurd, A. W. : 'Summary of a Factual Questionnaire on the Teaching of Perspective Teachers of Science'; Science Education, 1931, 1932.

उसे विज्ञान की प्रविधियों का पूर्णज्ञान होना चाहिये ताकि वह विद्यार्थियों को सही ढंग से सिखला सके और उन्हें मार्ग प्रदर्शन करा सके। विज्ञान के अध्यापक को मनोविज्ञान का ज्ञान भी होना आवश्यक है ताकि वह बालक के विकास को समझ सके।

विज्ञान के किसी भी क्षेत्र का सम्बन्ध उसके अन्य क्षेत्रों से होता है। यदि हमें भौतिक विज्ञान पढ़ाना है तो वह तब तक सही प्रकार से नहीं पढ़ाया जा सकता जब तक कि हमें रसायन विज्ञान, ज्योतिषशास्त्र आदि का पूर्ण ज्ञान न हो। भौतिक विज्ञान के एक उपविषय 'ग्रहण' को ही ले लीजिये। इसके लिए हमें न केवल भौतिक बिज्ञान के ज्ञान की ही आवश्यकता होती है बल्कि ज्योतिष शात्र, भूगोल, गणित शास्त्र आदि की भी आवश्यकता होती है। इसलिए एक विज्ञान के अध्यापक को विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों तथा उससे सम्बन्धित, विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान परमावश्यक है। तभी वह विज्ञान विषय को विद्यार्थियों के जीवन से सम्बन्धित कर पढ़ा पावेगा जो कि विज्ञान शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य है। सामान्य विज्ञान के अध्यापक के लिए तो यह बात और भी आवश्यक है। सामान्य विज्ञान के अध्यापक को जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, भू-शास्त्र, शरीर विज्ञान, आदि का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

वास्तव में देखा यह जाता है कि अध्यापकों को स्वयं विज्ञान सम्बन्धी प्रत्ययों (Concepts) का सही ज्ञान नहीं होता और इसीलिए विद्यार्थियों में भी इस ज्ञान का अभाव रहता है। एक अध्यापक विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक रूप से यह बतला देता है विद्युत धारा क्या है और उससे बल्ब किस प्रकार जलते हैं परन्तु यदि घर में बिजली का फ्यूज टूट गया हो तो वह उसे जोड़ नहीं सकता। यह इसीलिये होता है क्योंकि अध्यापक सैद्धान्तिक रूप से बातों को जानते हैं परन्तु व्यावहारिक रूप में उसका प्रयोग नहीं करते। यदि हमारा विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों को व्यावहारिक जीवन की समस्याओं का हल करवाना है तो हमें चाहिये कि अध्यापक स्वयं पहले वैज्ञानिक ज्ञान को व्यवहार में प्रयोग करना सीखें।

कहने का अर्थ यह है कि अध्यापक को विज्ञान विषय का विस्तृत ज्ञान होना चाहिये तथा व्यावहारिक जीवन में उसका उपयोग करना भी मालूम होना चाहिये। हमारे देश में विद्यार्थी विश्वविद्यालयों से

बी० एस० सी० पास करके प्रशिक्षण के लिए जाते हैं। बी० एस० सी० में वे तीन विषयों का अध्ययन करते हैं और उनका विशिष्ट रूप से अध्ययन करते हैं। उन्हें विज्ञान के अन्य विषयों का ज्ञान नहीं होता। क्या इस स्तर पर इन तीन विशिष्ट विषयों के अतिरिक्त एक ऐसा विस्तृत विषय नहीं पढ़ाया जा सकता है जिसमें विज्ञान के सभी क्षेत्रों के विषय में अध्ययन करवाया जा सके? यह एक विचारणीय प्रश्न है। यदि ऐसा हो तो हम आशा कर सकते हैं कि विश्वविद्यालय को शिक्षा के पश्चात् जो विद्यार्थी अध्यापक बनेंगे उनका विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान विस्तृत होगा और वे ही अपने विद्यार्थियों को विज्ञान का पूर्ण ज्ञान दे पावेंगे।

विज्ञान शिक्षकों अथवा अध्यापकों को चाहिये कि अपने ज्ञान का विस्तार करने के लिये पत्रिकाओं, वैज्ञानिकों के लेखों, विज्ञान सम्बन्धी नवीन पुस्तकों, समाचार पत्रों में लिखी गई विज्ञान सम्बन्धी बातों को पढ़ते रहें ताकि उन्हें विज्ञान की प्रगति तथा नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों के सम्बन्ध में सही सूचना रहे। उन्हें विज्ञान के इतिहास तथा दर्शनशास्त्र का भी ज्ञान होना चाहिये ताकि उन्हें विज्ञान की समाज के लिए उपयोगिता ज्ञात हो सके। विज्ञान शिक्षक विज्ञान क्लबों में जाया करे और वहाँ दूसरों के व्याख्यानों से लाभ उठाये। उसे स्वयं भी इन क्लबों में अपने विचार प्रकट करने चाहिये तथा दूसरे लोगों के साथ विचार विमर्श करना चाहिये।

विज्ञान शिक्षक की दूसरी योग्यता है व्यवसाय सम्बन्धी। जैसा कि पहले कहा गया है कि विज्ञान के अध्यापक अथवा शिक्षक को अपने व्यवसाय में दक्ष होना चाहिये। विज्ञान शिक्षक की व्यवसाय सम्बन्धी दक्षता को चार दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है।

(१) पहला, उसे अध्यापन विधि में, पाठ सूत्र निर्माण में तथा प्रश्न पूछने की विधि में निपुण होना चाहिए।

(२) दूसरा, उसे उन मनोवैज्ञानिक विधियों से परिचित होना चाहिये जिनकी सहायता से वह विद्यार्थियों को व्यक्तिगत विभिन्नता को समझते हुये उनको सही मार्ग-प्रदर्शन करा सके तथा उनको प्रायोगिक कार्यों द्वारा विज्ञान का सही ज्ञान दे सके।

(३) तीसरा, उसको विज्ञान प्रयोगशाला के संगठन का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये तथा प्रयोगशाला के यंत्रों को प्रयोग करने में दक्ष

होना चाहिए। उसे यह भी जानना चाहिये कि प्रयोगशाला सम्बन्धी प्रविधियों का विज्ञान शिक्षण में किस प्रकार प्रयोग किया जाता है।

(४) चौथी बात यह है कि विज्ञान शिक्षक को नवीन प्रकार की परीक्षाओं तथा मूल्याङ्कन प्रविधियों (Evaluation Techniques) का ज्ञान होना चाहिए ताकि वह विद्यार्थियों का सही मूल्यांकन कर सके और उनकी प्रगति का सही अनुमान लगा सके।

हम इनका अलग-अलग वर्णन करेंगे :—

(१) विज्ञान विषय का ज्ञान होना एक बात है और उस ज्ञान को सही रूप से विद्यार्थियों तक पहुँचाना दूसरी बात है। यदि एक अध्यापक अपने विषय में दक्ष है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने व्यवसाय में भी दक्ष है। हाँ, अपने व्यवसाय में दक्ष होने के लिये उसे अपने विषय का विद्वान भी होना चाहिए। पढ़ाना एक कला है और इस कला में दक्ष होने के लिए एक अच्छे प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

प्रशिक्षण महाविद्यालयों में छात्राध्यापकों को अध्यापन कार्य के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है। अपने प्रशिक्षण काल तक ये अध्यापक उस विधि से पढ़ाते हैं जो विधि प्रशिक्षण महाविद्यालयों में बतलाई जाती है। जब ये छात्राध्यापक प्रशिक्षण काल के पश्चात् अध्यापक हो जाते हैं तो इस विधि का उपयोग नहीं करते। हमें इस बात का अध्ययन करने की आवश्यकता है कि प्रशिक्षण महाविद्यालयों की विधि कहाँ तक उपयोगी है तथा अध्यापक विभिन्न विद्यालयों में उसका उपयोग कहाँ तक कर सकते हैं।

अध्यापक को चाहिये कि कक्षा में पढ़ाने के पूर्व पाठ-वस्तु का एक पाठ सूत्र बना ले ताकि वह संगठित रूप से पढ़ा सके। उसे कुछ ऐसे प्रश्नों को भी पहले से सोच रखना चाहिए जिन्हें पाठ के सम्बन्ध में कक्षा में पूछा जा सके। तभी वह सफलता के साथ कक्षा में पढ़ा सकता है। कक्षा में अध्यापक को सक्रिय रहना आवश्यक है। उसे श्यापट पर चित्र खींचने अथवा लिखने का सही अभ्यास होना चाहिये। विज्ञान के अध्यापक को प्रयोग-प्रदर्शन की बार-बार आवश्यकता होती है। उसे प्रदर्शन करने का उचित अभ्यास होना अनिवार्य है अन्यथा विद्यार्थी उसमें विश्वास नहीं कर पावेंगे। विज्ञान के अध्यापक को कक्षा में पढ़ाते समय सब ज्ञानेन्द्रियों का एक साथ प्रयोग करने की

आवश्यकता होती है। यद्यपि यह कठिन कार्य है परन्तु अभ्यास द्वारा ऐसा किया जा सकता है। अध्यापक को चाहिये कि आवश्यकतानुसार अपनी विधि में परिवर्तन करे अन्यथा पाठ नीरस हो जावेगा। विज्ञान विषय में जहाँ तक सम्भव हो सके प्रायोगिक कार्य को महत्त्व दिया जाना चाहिये और प्रायोगिक कार्य की सहायता से ही विद्यार्थियों को विषय ज्ञान देने की चेष्टा करनी चाहिये।

(२) इस मनोवैज्ञानिक युग में बालक को केन्द्र मानकर शिक्षा देना हमारा उद्देश्य है। चूँकि बालकों में व्यक्तिगत विभिन्नता होती है, इसलिए अध्यापक का कर्त्तव्य है कि बालकों के मानसिक तथा शारीरिक स्तर को देखकर उनको शिक्षा दे। यही बात विज्ञान विषय के लिये भी सत्य है। विज्ञान के शिक्षक को चाहिये कि वह विभिन्न बालकों के स्वभाव, बुद्धि स्तर, रुचि तथा अभिरुचि को भली-भाँति समझे और उनको उनके उपयुक्त विषय ज्ञान दे। इसके लिये उसे मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि व्यक्तिगत विभिन्नता पर ध्यान न दिया जाय तो हमारा कक्षाध्यापन कार्य का महत्त्व समाप्त हो जावेगा। अध्यापक को पिछड़े हुए बालकों की परिसीमाओं को समझना आवश्यक है और उनसे सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना आवश्यक है अन्यथा वे कभी भी प्रगति नहीं कर पावेंगे। विद्यार्थियों की अभिरुचि तथा रुचि के आधार पर अध्यापक को उन्हें मार्ग प्रदर्शन कराना चाहिये। यदि अध्यापक किसी विद्यार्थी की अभिरुचि से इस बात का अनुमान लगा लेता है कि वह एक अच्छा डाक्टर बन सकेगा तो उसे उस विद्यार्थी को इस प्रकार से पढ़ाना चाहिए ताकि भविष्य में उसे अपने विषय ज्ञान से सहायता मिल सके।

(३) जहाँ तक प्रयोगशाला की प्रविधियों का सम्बन्ध है विज्ञान शिक्षक को विभिन्न प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता होती है—

(अ) उसे विभिन्न प्रकार के यंत्रों को प्रयोग करने तथा कुछ यंत्रों को स्वयं बना सकने की योग्यता होनी चाहिए। विज्ञान अध्यापक को टूटे यंत्रों को जोड़ने का भी ज्ञान होना अनिवार्य है।

(ब) विज्ञान शिक्षक अथवा अध्यापक को विज्ञान संग्रहालय के संगठन का भी ज्ञान होना चाहिये तथा उसमें रखी जाने वाली सामग्री से भली-भाँति परिचित होना चाहिये। उसे वहाँ रखी जाने वाली कुछ सामग्री का स्वयं निर्माण करने का भी ज्ञान होना चाहिए। अध्यापक को प्रयोगशाला में रखी हुई विभिन्न

वस्तुओं का ज्ञान होना चाहिये। उन वस्तुओं का रेकार्ड रखने की विधि ज्ञात होनी चाहिए। उसे प्रत्येक वस्तु को रखने का निश्चित स्थान ज्ञात होना चाहिये। प्रयोगशाला के यन्त्रों तथा चार्ट आदि का पूर्ण रूप से ज्ञान होना चाहिए।

(स) विज्ञान शिक्षक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह प्रयोगशाला विधि में दक्ष हो। प्रयोगशाला विधि का वर्णन पूर्ण रूप से 'विज्ञान शिक्षण की विधियाँ' वाले अध्याय में किया गया है।

(द) एक अच्छे विज्ञान शिक्षक को अपने विद्यालय में साइन्स क्लब, विज्ञान पत्रिका, पर्यटन आदि में रुचि लेनी चाहिये तथा उनका संगठन करना चाहिए।

(ध) उसे विज्ञान पुस्तकालय का संगठन करना चाहिए तथा उसमें विज्ञान सम्बन्धी पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, पुस्तकों अथवा लेखों आदि की वृद्धि करते रहना चाहिए। उसे विद्यार्थियों को पुस्तकालय का उपयोग करने के लिये भी प्रोत्साहित करते रहना चाहिये।

(४) विज्ञान के अध्यापक को नवीन प्रकार की मूल्यांकन प्रविधियों का ज्ञान भी आवश्यक है। इन्हीं प्रविधियों को सहायता से वह विद्यार्थियों की वास्तविक प्रगति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उसे नवीन प्रकार की साफल्य परीक्षाओं, बुद्धि परीक्षाओं, अभिरुचि परीक्षाओं, नैदानिक परीक्षाओं, रुचि परीक्षाओं तथा व्यक्तित्व परीक्षाओं का ज्ञान होना चाहिये। इन्हीं परीक्षाओं के परिणामों के आधार पर वह सामूहिक आलेख पत्रों को सही प्रकार से भर सकता है। विद्यार्थियों के इन सामूहिक आलेख पत्रों से उन्हें व्यवसाय सम्बन्धी अथवा शिक्षा सम्बन्धी मार्ग प्रदर्शन कराया जा सकता है।

इसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान तो उसे अपने प्रशिक्षण काल में हो सकता है। इसके अतिरिक्त उसे उन सेमीनारों में भाग लेना चाहिए जिनमें इसके सम्बन्ध में चर्चा की जाती है। हमारे देश में इसके सम्बन्ध में अनेकों सेमीनार (Seminar) हो रहे हैं जो कि अध्यापकों के लिए अति उपयोगी हैं।

अन्त में हम एक बात यह कह देना चाहते हैं कि शिक्षक में जन्मजात गुण अधिक होता है और अर्जित कम। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जिस व्यक्ति में इस व्यवसाय के लिए क्षमता है तो उसे

प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। प्रशिक्षण की आवश्यकता तो हर प्रकार के अध्यापक के लिए अनिवार्य है। कुछ विद्वानों का सुझाव है कि विज्ञान के अध्यापकों के लिए Concurrent, general and professional Course' होना चाहिए। यह चार वर्ष का कोर्स हो जिसमें विद्यार्थी को माध्यमिक विद्यालय की पढ़ाई के बाद लिया जाय। इन चार वर्षों में विज्ञान के विभिन्न विषयों के विस्तृत ज्ञान के साथ-साथ अध्यापन में प्रशिक्षण भी दिया जाय। यदि इस प्रकार के कोर्स को यूनिवर्सिटी में स्थान दिया जाय तो सम्भव है विज्ञान के अच्छे अध्यापक उपलब्ध होंगे।

प्रश्न

(१) विज्ञान शिक्षक में क्या-क्या योग्यताएँ होनी चाहिए ? उनका वर्णन कीजिये।

(२) विज्ञान शिक्षक के प्रशिक्षण हेतु अपने सुझाव दीजिए।

अध्याय ८

विज्ञान प्रयोगशाला

(Science Laboratory)

प्रयोगशाला की आवश्यकता—विज्ञान विषय को केवल पुस्तकों में पढ़कर नहीं सीखा जा सकता है। इसके लिये विद्यार्थी को निरीक्षण करने तथा प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में विद्यार्थी विज्ञान विषय को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकता है। प्रयोग करने से विद्यार्थी स्वय अपने अनुभवों के आधार पर वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है। जब तक वह पुस्तकों में पढ़े हुए नियमों तथा सिद्धान्तों की जाँच प्रयोग द्वारा स्वयं नहीं कर लेता उन्हें समझने में असमर्थ रहता है। प्रयोगात्मक कार्यों से ही विद्यार्थी की रचनात्मक कार्य करने की शक्ति का विकास होता है जो कि विज्ञान की योग्यता का एक मुख्य अङ्ग है। इन्हीं से उसका बौद्धिक विकास होता है तथा उसे कार्य-कारण में सम्बन्ध स्थापित करने में सुविधा होती है।

यदि विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य का इतना अधिक महत्त्व है तो प्रत्येक विद्यालय में प्रयोगात्मक कार्य को सफल रूप से करने के लिये एक प्रयोगशाला का होना आवश्यक है। हमारे देश में अधिकांश विद्यालयों में प्रयोगशालाओं का अभाव है। जिन विद्यालयों में प्रयोग-

शालाएँ हैं वे आदर्श रूप में नहीं हैं। एक आदर्श प्रयोगशाला के निर्माण के लिये विज्ञान के अनुभवी अध्यापकों तथा विशेषज्ञों की राय अवश्य लेनी चाहिये। यह खेद की बात है कि हमारे देश में यह नहीं किया जाता है। आजकल भारतीय सरकार विभिन्न माध्यमिक विद्यालयों को विज्ञान की प्रयोगशालाओं के लिये सहायता प्रदान कर रही है। हमें चाहिये कि इस अवसर का सदुपयोग करें और अपने विद्यालयों में आदर्श प्रयोगशाला का निर्माण करें। आदर्श प्रयोगशाला के लिये हमें विज्ञान के अनुभवी अध्यापकों तथा इस विषय के विशेषज्ञों से परामर्श करना चाहिये।

भारतीय माध्यमिक विद्यालयों की प्रयोगशाला के लिये सुझाव—

हम देखते हैं कि हमारे देश के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में अधिकतर विज्ञान के दो अध्यापक होते हैं, एक भौतिकविज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान पढ़ाने के लिये तथा दूसरा जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान पढ़ाने के लिये। ऐसी दशा में विज्ञान के विभिन्न विषय की अलग-अलग प्रयोगशाला बनाने का कोई अर्थ नहीं है। प्रत्येक प्रयोगशाला किसी अध्यापक की देखरेख में ही हो सकती है और फिर उसके लिये कुछ सहायकों की आवश्यकता होती है। भारतीय विद्यालयों की परिस्थिति देखते हुए यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक विद्यालय में विभिन्न विषयों की प्रयोगशालाएँ बनाया जाना कठिन है। विद्यालयों के पास इतना धन नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हम यह कर सकते हैं कि प्रत्येक विद्यालय में एक ऐसी प्रयोगशाला बनायें जो विज्ञान के सभी विषयों के लिये पर्याप्त हो और जिसमें विज्ञान का अध्यापन कार्य भी किया जा सके अर्थात् जिसे कक्षा की भाँति भी प्रयोग किया जा सके।

एक प्रयोगशाला में एक बार में अधिक से अधिक ३० विद्यार्थी कार्य कर सकते हैं। ३० से अधिक विद्यार्थियों को एक बार में कार्य नहीं करना चाहिये। यदि हमें ३० विद्यार्थियों के काम करने के लिये प्रयोगशाला बनानी है तो उसके फर्श का क्षेत्रफल लगभग १००० वर्ग फीट होना चाहिये अर्थात् उसकी लम्बाई ४५ फीट तथा चौड़ाई २५ फीट होनी चाहिये, तभी विद्यार्थी उसमें स्वच्छंदता तथा सरलता से काम कर सकते हैं।

प्रयोगशाला का विस्तार विद्यार्थियों की संख्या पर निर्भर करता है। आदर्श बात तो यह है कि प्रयोगशाला में एक बार में २४ विद्यार्थी

कार्य करें। तभी अध्यापक उनको व्यक्तिगत सहायता दे सकता है और विद्यार्थी सुविधा से कार्य कर सकते है। परन्तु हमारे भारतीय विद्यालयों में एक-एक कक्षा में ४५ विद्यार्थी तक पढ़ते हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें चाहिये कि हम प्रयोगात्मक कार्य के लिये विद्यार्थियों को दो वर्गों में विभाजित कर दें। केवल एक वर्ग को जिसमें २४ विद्यार्थी हो एक बार में प्रयोगात्मक कार्य कराना चाहिये। यदि २४ विद्यार्थियों के काम करने के लिये प्रयोगशाला बनानी है तो उसका प्लान पिछले पृष्ठ पर दिये गये प्लान की तरह हो सकता है।

इस प्रयोगशाला में विद्यार्थियों के लिये ६ मेजें हैं। प्रत्येक मेज मे चार विद्यार्थी काम कर सकते हैं। एक मेज अध्यापक के लिये है जिसमें वह प्रदर्शन कार्य करता है। प्रत्येक मेज की लम्बाई ६ फोट तथा चौड़ाई ४ फीट है। विद्यार्थियों की मेज में बीचों बीच पानी का सिन्क (Sink) है जिसको चारों विद्यार्थी प्रयोग कर सकते हैं। अगर प्रयोगशाला में पानी का प्रबन्ध दूसरी अनेक जगहों मे किया जाय तो विद्यार्थियो के मेजों में सिन्क की आवश्यकता नहीं होती। मेजों में सिन्क न होने से कुछ लाभ भी हैं। इससे मेज गीली नहीं हो सकती और विद्यार्थियों की कापियों में धब्बा लगने का डर नहीं रहता। किनारे वाली मेजों में सिन्क बनाये जा सकते हैं। प्रत्येक सिन्क के किनारों मे पानी के नलों का प्रबन्ध होना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी की मेज में गैस पाइप का तथा बिजली का प्रबन्ध भी होना चाहिये। चूंकि माध्यमिक विद्यालयों की प्रयोगशालाओं में इतना धन व्यय नहीं किया जा सकता है इसलिये स्प्रिट की कुप्पी का प्रयोग किया जा सकता है। मेजो की ऊपरी सतह में इस प्रकार के पदार्थ का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे उसमें अम्ल या क्षार का प्रभाव न हो सके। मेजों को फर्श में जमाकर नहीं रखना चाहिये बल्कि उन्हें बिना स्थित किये हुए रखना चाहिये ताकि जब हम उन्हें चाहें हटा सकें और जब चाहें एक साथ मिलाकर रख सकें। इस प्रकार के प्रबन्ध से प्रयोगशाला की सफाई करने में भी सरलता होगी। हमें मेजों के नीचे रेखा खींच देनी चाहिए ताकि जब भी मेजें हटाने के पश्चात् फिर से प्रयोगशाला में रखी जावें तो उन्हीं रेखाओं के ऊपर रखी जावें। इससे उनकी व्यवस्था नहीं बिगड़ने पावेगी। प्रत्येक मेज में यंत्र अथवा सामान रखने के लिए कपबोर्डस (Cupboards) होने

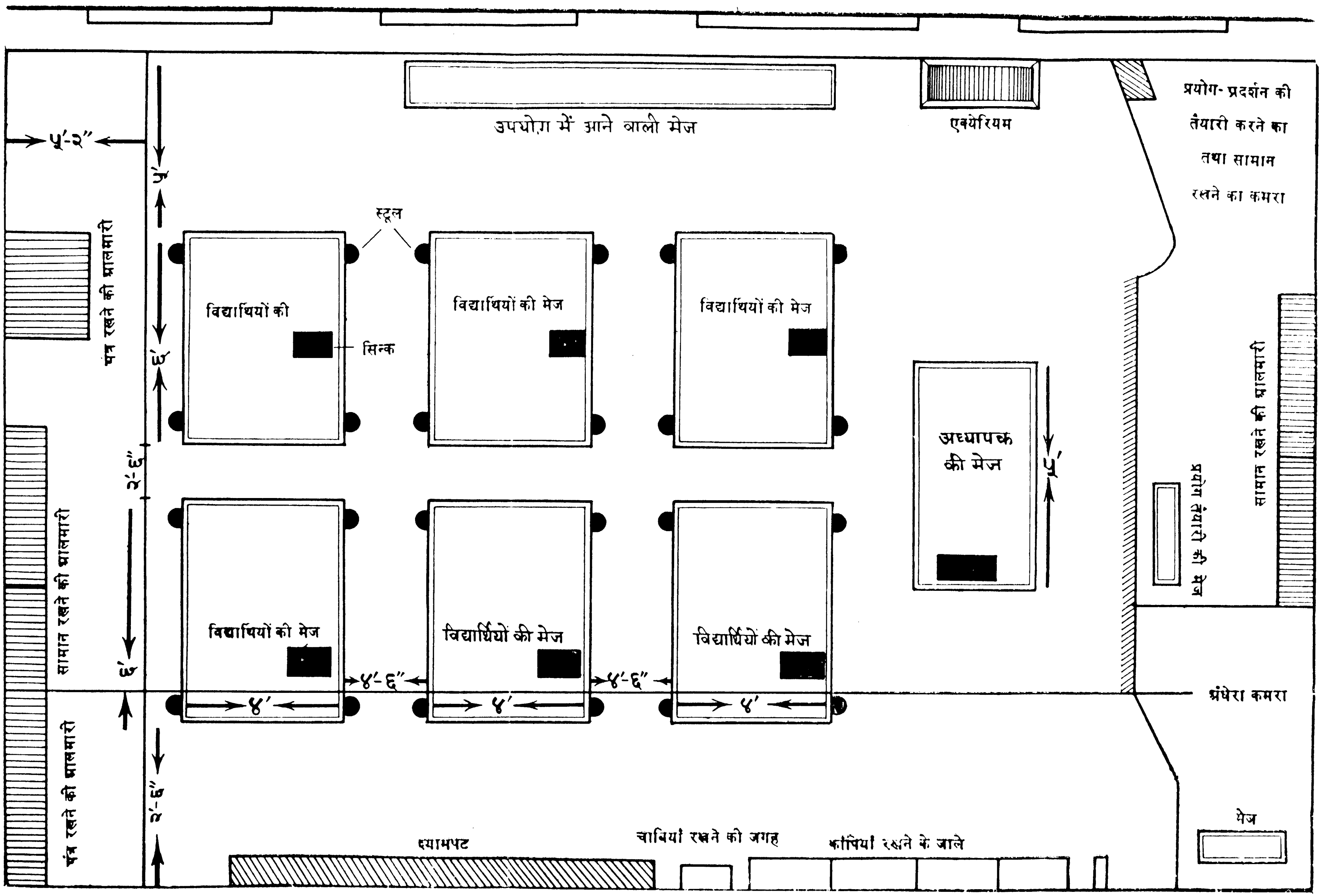

उपयोग में आने वाली मेज
एक्वेरियम
प्रयोग-प्रदर्शन की तैयारी करने का तथा सामान रखने का कमरा
५'-२"
५'
स्टूल
विद्यार्थियों की
सिन्क
विद्यार्थियों की मेज
विद्यार्थियों की मेज
यंत्र रखने की आलमारी
६'
अध्यापक की मेज
५'
सामान रखने की आलमारी
प्रयोग तैयारी की मेज
२'-६"
सामान रखने की आलमारी
विद्यार्थियों की मेज
विद्यार्थियों की मेज
विद्यार्थियों की मेज
६'
४'-६"
४'-६"
४'
४'
४'
अंधेरा कमरा
यंत्र रखने की आलमारी
२'-६"
श्यामपट
चाबियाँ रखने की जगह
कापियाँ रखने के खाने
मेज

चित्र—प्रयोग शाला

चाहिए। अध्यापक की मेज में गैस बर्नर, सिन्क, बिजली, कपबोर्डस्, आदि का प्रबन्ध होना चाहिये।

विद्यार्थियों के बैठने के लिये ऊँचे स्टूल होने चाहिए। चूँकि प्रयोगशाला में विभिन्न ऊँचाइयों के विद्यार्थी प्रयोग करने के लिए आते हैं इसलिये स्टूलों को भी विभिन्न ऊँचाइयों का बनाना चाहिए। इनकी ऊँचाई २२ इंच से २५ इंच तक हो सकती है। स्टूलों के पायों में रबर लगा देना चाहिए ताकि उनको इधर-उधर खिसकाने में आवाज न होने पाये। चित्र में दिखलाए गए प्लान के अनुसार प्रत्येक मेज के दो ओर दो-दो स्टूल हैं। इसका अर्थ हुआ कि एक मेज में काम करने वाले चार विद्यार्थियों में से दो का मुँह अध्यापक की ओर होगा और दो की पीठ उधर होगी। जब अध्यापक कक्षा में पढ़ाना प्रारम्भ करे तो उस समय वे विद्यार्थी जो अध्यापक की ओर पीठ करके बैठे हैं, मेजों के दाँए अथवा बाँए किनारों में बैठ सकते हैं। इससे उनका मुँह अध्यापक की ओर को हो सकेगा। प्रयोगशाला में कुछ ६ इंच ऊँचाई के स्टूल भी होने चाहिए जिनमें चढ़कर बहुत छोटे कद वाले विद्यार्थी प्रयोग कर सकें।

यहाँ हम प्रयोगशाला के दूसरे प्लान की ओर भी संकेत कर देना चाहते हैं। इस प्लान के अनुसार भी हमारी प्रयोगशाला विज्ञान के सभी विषयों के लिए होगी तथा उसी में अध्यापन कार्य भी करवाया जावेगा। इस प्रयोगशाला में हम १२ मेजें रख सकते हैं जिनमें प्रत्येक की लम्बाई ६ फीट और चौड़ाई २ फीट ६ इंच होगी। प्रत्येक मेज दो-दो विद्यार्थियों के लिये होगी और विद्यार्थी अध्यापक की ओर मुँह करके बैठेंगे। अन्य बातों में यह प्लान ऊपर के प्लान से मिलता-जुलता होगा। इससे यही लाभ होगा कि प्रत्येक विद्यार्थी अध्यापक की ओर मुँह करके बैठ सकता है। परन्तु ऐसी प्रयोगशाला में अधिक धन व्यय होगा।

प्रयोगशाला का मुख सदा उत्तर की ओर होना चाहिये ताकि उसमें प्रकाश तथा खिड़कियों से सूर्य की किरणे आ सकें। प्रयोग करने में प्रकाश की अति आवश्यकता होती है। खिड़कियाँ काँच की होनी चाहिए। हवा के लिए वैन्टीलेशन (Ventilation) का प्रबन्ध होना चाहिये। कुछ प्रयोगशालाओं में छत के बीच में मोटा काँच लगा देते हैं जिससे अन्दर प्रकाश आ सकता है। खिड़कियों को फर्श से ४ फीट ऊँचा होना चाहिये। खिड़कियों को कमरे से बाहर की

ओर खुलने वाली बनाना चाहिए ताकि उनमें कुछ सामान रखा जा सके। कुछ खिड़कियों में बीज अंकुरण के बक्से रखे जा सकते हैं या एक्येरियम, वाईवेरियम, टेररियम आदि रखे जा सकते हैं। यदि प्रयोगशाला में पर्याप्त स्थान हो तो एक्येरियम एक अलग स्थान में बनाया जाना चाहिए जैसा कि प्लान में दिखलाया गया है। एक्येरियम को खिड़की में रखना उपयुक्त नहीं है क्योंकि मछलियों को अधिक प्रकाश वाले स्थान में नहीं रखना चाहिए। प्रयोगशाला में कभी फिल्म दिखलाने या कोई ऐसे प्रयोग करने के लिये जिसमें प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती, अँधेरा करने की आवश्यकता होती है। इसलिए खिड़कियों में काले पर्दों के लगाने के लिए प्रबन्ध होना चाहिये।

प्रयोगशाला के किनारों में कुछ मेजें और होनी चाहिये जिनमें सिन्क तथा गैस का प्रबन्ध हो। यदि विद्यार्थियो की मेजो में सिन्क न हो तो वे इन सिन्कों का प्रयोग कर सकते हैं। इन किनारे वाली मेजों को विद्यार्थियों की मेजों के समीप होना चाहिये ताकि वे इनसे पानी अथवा गैस को उपयोग में ला सकें। इन मेजों में उन यन्त्रों को रखा जा सकता है जिन्हें प्रयोगशाला में अलमारियों से बाहर रखने की आवश्यकता होती है। इन मेजों में एक्येरियम, वाईवेरियम तथा टरेरियम भी रखे जा सकते हैं।

प्रयोगशाला में दीवार के किनारों पर उचित स्थानों में अलमारियाँ रखी जानी चाहिये जैसा कि प्लान मे दिखलाया गया है। कुछ अलमारियों में आवश्यक यन्त्र अथवा रासायनिक पदार्थ रखे जाने चाहिये। एक छोटी अलमारी विद्यार्थियों के नोट बुक आदि को इकट्ठा करके रखने तथा कुछ आवश्यक मैगजीन या पुस्तकों को रखने के लिये होनी चाहिये। दीवार में एक छोटा सा स्थान ऐसा भी बनाना चाहिये जहाँ विद्यार्थियों के कपबोर्डस् की चाबियाँ रखी जा सकें।

प्रयोगशाला की छत में एक पानी की टंकी का प्रबन्ध होना चाहिये जहाँ से सिन्कों के नलों में पानी भेजा जा सके। यदि प्रयोगशाला में बुन्सन वर्नर (Bunsen Burner) का प्रयोग किया जाय तो उसके लिये एक गैस की टंकी का होना आवश्यक है जिसमें गैस बना कर प्रयोगशाला को भेजी जा सके।

प्रयोगशाला को दीवारों में से कुछ ईंटें निकालकर इस प्रकार के

स्थान बना लेने चाहिये जिनमें भौतिक तुला अथवा कुछ उपयोगी यन्त्र रखे जा सकें।

अध्यापक की मेज के पीछे एक बड़ा श्यामपट भी आवश्यक है। एक ओर श्यामपट एक दूसरी दीवार के किनारे भी होना चाहिए। श्यामपटों को बड़े आकर का होना चाहिये जिनमें एक ही समय में चित्र भी खींचे जा सकें और लिखा भी जा सके। कभी-कभी ऊपर नीचे खिसकाने वाले श्यामपट उपयुक्त समझे जाते हैं।

प्रयोगशाला में रासायनिक पदार्थों की गन्ध को बाहर निकालने का भी प्रबन्ध होना अच्छा है। इसे फ्यूमहूड (Fumehood) की सहायता से बाहर निकाला जा सकता है।

एक बात यह ध्यान में रखनी चाहिये कि प्रयोगशाला का फर्श मजबूत होना चाहिये। गन्दा पानी बाहर निकालने के लिये फर्श के ऊपर नालियाँ नहीं खुदी होनी चाहिये। इससे फर्श गन्दा रहता है।

प्रयोगशाला में एक ऐसी मेज भी रखी जा सकती है जिसमें यन्त्रों अथवा प्रतिमानों का निर्माण किया जा सकता है। यदि विद्यालय में शिल्प कला का प्रबन्ध है तो प्रयोगशाला में इस आयोजन की आवश्यकता नहीं होगी।

प्रयोगशाला से लगा हुआ एक ऐसा कमरा होना चाहिए जिसमें ऐसे सामान अथवा यन्त्रों को रखा जा सके जिनकी प्रतिदिन आवश्यकता नहीं होती। इस सामान को रखने के लिये दीवार के अन्दर स्थान बनाना अच्छा है। इस सामान को बन्द करने के लिये किवाड़ होने चाहिये जिससे उसमें धूल न लग सके। इसी कमरे में अध्यापक के लिये एक ऐसी मेज होनी चाहिये जिसमें वह कक्षा में प्रदर्शन करने के लिये पहले से तैयारी कर सकता है। इस कमरे में पानी, गैस, रोशनी आदि का प्रबन्ध होना चाहिये। इस कमरे को बन्द रखने लिए एक किवाड़ होना चाहिये जो प्रयोगशाला की ओर खुले। इस कमरे से लगा हुआ एक दूसरा अँधेरा कमरा होना चाहिये जिसमें ऐसे प्रयोग किये जा सकें जो केवल अँधेरे में सम्भव होते हैं। इसी कमरे को फोटोग्राफी के लिये भी काम में लाया जा सकता है। इस कमरे में पानी व बिजली का प्रबन्ध आवश्यक है।

फिल्म दिखलाने के लिये प्रयोगशाला में पर्दे (Screen) की आवश्यकता भी होती है। पर्दे को स्लाइडिंग ब्लैकबोर्ड (खिसकाने वाला

श्यामपट) के पीछे रखा जा सकता है। आवश्यकतानुसार इस पर्दे में फिल्म दिखाई जा सकती है।

प्रयोगशाला में वस्तुओं को सुरक्षित रखने की व्यवस्था—प्रयोगशाला में अनेकों कीमती वस्तुएँ रखी रहती हैं। उनकी सुरक्षा करना अध्यापक का कार्य है। जब विद्यार्थी प्रयोग आरम्भ करें तो अध्यापक को उनको दी गई वस्तुओं की सूची बना लेनी चाहिये। प्रयोग समाप्त हो जाने के बाद उसे यह देख लेना चाहिये कि प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा लौटाया गया सामान सुरक्षित है अथवा नहीं। अध्यापक इसके लिये कक्षा में मौनीटर की नियुक्ति भी कर सकता है परन्तु इसका उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से अध्यापक के ऊपर होना चाहिए। विज्ञान के अध्यापक को अन्य अध्यापकों से कक्षाध्यापन के लिए कम घंटे मिलने चाहिये क्योंकि उसके ऊपर प्रयोगशाला की वस्तुओं को सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व भी रहता है जिसमें उसे काफी समय व्यय करना होता है। अध्यापक को प्रति माह पूरी प्रयोगशाला की वस्तुओं का निरीक्षण करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि कोई वस्तु टूटी तो नहीं है, अथवा खोई तो नहीं गई अथवा खराब तो नहीं हो गई। इसके लिये अध्यापक को रजिस्टरों में यह हिसाब रखना चाहिये कि कौन सी वस्तु खरीदी गई, कहाँ से खरीदी गई, किस तिथि को खरीदी गई, वह किस प्रकार प्रयोग की गई, कितनी शेष है आदि। प्रयोगशाला में स्थान-स्थान पर विद्यार्थियों को यन्त्रों को सावधानी से प्रयोग करने के लिये आदेश लिखे रहने चाहिये। प्रयोगशाला के अनुशासन में अध्यापक को विशेष ध्यान देना चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि वस्तुओं को उचित स्थान पर रखे ताकि वे सरलता से प्राप्त हो सकें।

प्रयोगशाला में सामग्री कहाँ से प्राप्त की जा सकती है?—अध्यापक को सर्व प्रथम यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि प्रयोगशाला में कौन से यंत्रों अथवा पदार्थों की आवश्यकता है। इसके लिए उसे पाठ्य-पुस्तकों तथा पाठ्य-क्रम का विश्लेषण करना चाहिए। इसके आधार पर उसे यह ज्ञात कर लेना चाहिये कि प्रदर्शन के लिए कौन से यंत्र अथवा वस्तुओं की आवश्यकता है, प्रायोगात्मक कार्य के लिये किन यंत्रों अथवा वस्तुओं की आवश्यकता है तथा प्रयोगशाला की साधारण आवश्यकताओं के लिए किन वस्तुओं की आवश्यकता है।

अब अध्यापक को यह देखना चाहिये कि प्रयोगशाला के लिये बजट में कितना धन है। अध्यापक को कुछ स्थानीय फर्मों में जाकर आवश्यक यंत्रों तथा वस्तुओं को स्वयं देख लेना चाहिये। प्रत्येक फर्म से यंत्रों तथा आवश्यक वस्तुओं की कीमत की सूची प्राप्त कर उसे विद्यालय की कमेटी में रखना चाहिए। अध्यापक को प्रत्येक सूची में उन यंत्रों के सामने लिख देना चाहिए जिन्हें वह समझता है कि उन्हें खरीदना उचित है। सामान उसी फर्म से खरीदना चाहिए जिसके लिये कमेटी आदेश दे। परन्तु इस कमेटी में विज्ञान के अध्यापक को विशेष अधिकार दिया जाना चाहिए क्योंकि वह जानता है कि किस फर्म में सामान अच्छा है तथा किसमें बुरा। बाहर के फर्मों से सामान तभी मंगवाना चाहिये जब कि वह स्थानीय फर्मों में उपलब्ध न हो।

कुछ साधारण यंत्रों अथवा वस्तुओं को विद्यार्थी स्वयं प्रयोगशाला में बना सकते हैं। ऐसी वस्तुएँ एक तो सस्ते दामों में बन जाती हैं और इससे अन्य कई लाभ होते हैं। इसी से विद्यार्थी अपने व्यावहारिक जीवन में वैज्ञानिक वस्तुओं का उचित प्रयोग करना सीखता है। इससे विद्यार्थियों में प्रयोग करने के लिए रुचि उत्पन्न होती है। इससे वे उन वैज्ञानिकों के कार्यों के महत्त्व को समझते हैं जिन्होंने आरम्भ में उन यंत्रों का निर्माण किया। इससे विद्यार्थियों में खोज करने की शक्ति का भी विकास होता है। विद्यार्थी अपनी बनाई हुई वस्तुओं में रुचि लेते हैं और उन्हें सुरक्षित रखने की चेष्टा करते हैं। स्वयं यंत्र बनाने से वे उन यंत्रों से भली-भाँति परिचित हो जाते हैं। इसीलिए हमें चाहिए कि हम विद्यार्थियों को साधारण यंत्रों को स्वंय बनाने के लिए प्रोत्साहन दें। ऐसे अनेकों यंत्र अथवा वस्तुएँ हैं जिन्हें विद्यार्थी स्वयँ बना सकते हैं। कुछ वस्तुएँ उदाहरण के रूप में नीचे दी गई हैं :—

कीड़े-मकोड़ों को पकड़ने के जाल, पुली, बिजली के टूटे बल्वों से फ्लास्क, टेलीफोन, पनडुब्बी का प्रतिमान, बुनसन बर्नर, प्रकाश सबधी प्रयोगों के लिए यंत्र, साधारण थर्मामीटर या बैरोमीटर आदि। माध्यमिक विद्यालय की प्रयोगशाला के लिये जिन आवश्यक यंत्रों अथवा वैज्ञानिक वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनकी एक सूची इसी पुस्तक के परिशिष्ट सं० १ में दी गई है। अध्यापक अपनी आवश्यकतानुसार इस सूची को घटा-बढ़ा सकते हैं। इस सूची में दी गई वस्तुएँ ४० विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त होंगी।

अन्त में हम यह कहेंगे कि प्रयोगशाला विज्ञान के शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रत्येक विद्यालय में जहाँ विज्ञान विषय पढ़ाया जाता है एक प्रयोगशाला अवश्य होनी चाहिए। यदि अध्यापक चाहे तो विद्यार्थियों की सहायता से कम व्यय में एक अच्छी प्रयोगशाला का निर्माण कर सकता है।

प्रश्न

(१) विज्ञान शिक्षण में प्रयोगशाला की क्यों आवश्यकता है ?

(२) यदि आपको अपने विद्यालय में विज्ञान की प्रयोगशाला बनानी हो तो आप उसके लिये किस प्रकार का प्लान तैयार करेंगे ? समझाकर लिखिये।

(३) आप अपने विद्यालय की विज्ञान प्रयोगशाला को सजाने तथा उसके सामान को सुरक्षित रखने के लिये किस प्रकार की व्यवस्था करेंगे ?

(४) विद्यार्थियों से साधारण यन्त्रों को बनवाने से क्या लाभ हैं ? आप कौन-कौन से यंत्र अपने विद्यार्थियों से प्रयोगशाला में बनवा सकते हैं ? दो यंत्रों को बनाने की विधि का पूर्ण रूप से वर्णन कीजिये।

अध्याय ९

(विज्ञान शिक्षण के सहायक साधन)

(Some Aids in Science Teaching)

अन्य विषयों के अध्यापकों की भाँति विज्ञान विषय के अध्यापक के सम्मुख भी यह समस्या प्रस्तुत होती है कि वह अपनी अध्यापन विधि को किस प्रकार साधक बना सकता है ताकि विद्यार्थी पढ़ाई गई बातों को स्पष्ट रूप से समझ जावें। अनेकों बार हम विद्यार्थियों को कक्षा में अप्रत्यक्ष रूप से पढ़ाते हैं। यथार्थ वस्तु के अभाव में विद्यार्थी पढ़ाई गई बात को नहीं समझ पाते। कोई भी व्यक्ति किसी वस्तु का अनुभव प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित तीन साधनों से सहायता लेता है :—

(१) प्रत्यक्ष रूप से ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क से।

(२) चित्रों, प्रतिमानों (Models), वस्तुओं के छोटे नमूनों आदि से

(३) शब्दों अथवा चिन्हों से।

इन तीनों में शब्दों के प्रयोग से विद्यार्थी को किसी वस्तु का ज्ञान सही रूप से नहीं हो पाता। सही ज्ञान के लिये पहले ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उस वस्तु अथवा क्रिया का अनुभव किया जाना आवश्यक है। यदि हम 'तापक्रम' शब्द बोलते हैं तो किसी विद्यार्थी के लिये उसका तब

तक विशेष अर्थ नहीं होगा जब तक कि वह तापक्रम के विभिन्न प्रकार के अनुभवों से परिचित न हो अथवा जब तक वह थर्मामीटर में पारे के स्तम्भ के ऊपर बढ़ने से तापक्रम के बढ़ने से परिचित न हो।

विज्ञान शिक्षण में हम मुख्यतया तथ्यों तथा प्रत्ययों (Concepts) पर ध्यान देते हैं। हमारा ध्येय यही होता है कि विद्यार्थियों को तथ्यों तथा प्रत्ययों का सही ज्ञान हो जाय। इसके लिए ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पढ़ाई गई वस्तु अथवा क्रियाओं का प्रतिबोधन करना आवश्यक है।

हमारा कहने का यह अर्थ नहीं है कि विज्ञान शिक्षण में शब्दों का प्रयोग किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि केवल वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग ही किया जाना चाहिए। शब्द एक प्रकार से वे चिह्न हैं जो वस्तुओं, क्रियाओं तथा आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शब्द के अभाव में हम किसी वस्तु के बारे में चिन्तन नहीं कर सकते हैं। परन्तु शब्दों का प्रयोग तभी सार्थक समझा जाता है जब कि वह अनुभव पर आधारित हो। इसलिए विज्ञान शिक्षण को साधक तथा सार्थक बनाने के लिए हमें यह प्रयत्न करना चाहिए कि विद्यार्थी पढ़ाई गई वस्तु का वास्तविक अनुभव करें ताकि वे उसे प्रत्यक्ष रूप से समझ सकें।

अब प्रश्न यह है कि वस्तुओं, नियमों, सिद्धान्तों अथवा क्रियाओं के वास्तविक अनुभवों के लिए कौन-कौन से साधन हैं। कुछ मुख्य सहायक साधन निम्नलिखित हैं :—

(१) पर्यटन (Excursions)
(२) चित्र (Pictures)
(३) पदार्थ (Objects)
(४) नमूना (Specimen)
(५) प्रतिमान (Model)
(६) फिल्म (Film)
(७) स्लाइड (Slide)
(८) फिल्म स्ट्रिप (Film Strip)
(९) चार्ट (Chart), ग्राफ (Graph), नक्शे (Maps), तथा रेखा-चित्र (Diagram)
(१०) रेडियो (Radio)

हम प्रत्येक का यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे :—

(१) **पर्यटन** :—पर्यटन विज्ञान शिक्षण में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसी से विद्यार्थियों को प्राकृतिक तथा अन्य विज्ञान संबंधी वस्तुओं को स्वाभाविक रूप में देखने का अवसर मिलता है तथा उन का सही ज्ञान प्राप्त होता है। पर्यटन ही विद्यार्थियों को कक्षा तथा प्रयोगशाला में पढ़ी हुई वस्तुओं, सिद्धान्तों तथा नियमों का बाह्य जगत में जाकर स्पष्टीकरण करने का अवसर प्रदान करता है। जिन बातों को कक्षा में अप्रत्यक्ष रूप में पढ़ाया जाता है उनको पर्यटन द्वारा विद्यार्थी प्रत्यक्ष रूप में देख सकता है। पर्यटन विज्ञान शिक्षण का अति सहायक साधन है। इसका पूर्ण रूप से वर्णन 'पर्यटन' वाले अध्याय में किया गया है।

(२) **चित्र**—विज्ञान शिक्षण में चित्रों के द्वारा अनेकों वस्तुओं का प्रदर्शन कराया जा सकता है। चित्रों के रंग रूप में यथार्थता होना आवश्यक है। चित्रों को स्पष्ट तथा उचित आकार का होना चाहिये ताकि पूरी कक्षा के विद्यार्थी अपने-अपने स्थान से बैठ कर उसे देख सकें। प्रत्येक चित्र में कोई मुख्य आकर्षण केन्द्र होना चाहिये जिससे उस उद्देश्य की पूर्ति हो सके जिसके लिए चित्र दिखलाया जा रहा हो। एक ही चित्र में बहुत सी सूक्ष्म बातों को नहीं दिखलाना चाहिए। चित्रों को बहुत चटकीले रंगों का नहीं होना चाहिये अन्यथा उनसे विद्यार्थी वास्तविक पदार्थ का गलत अनुमान लगायेंगे। यदि चित्र छोटा हो तो उसे मैजिक लैन्टर्न (Magic Lantern) की सहायता से पर्दे में दिखलाना चाहिये। इसके लिए एपीडायसकोप (Epidiascope) का प्रयोग भी किया जा सकता है। पुस्तकों में बने हुए चित्रों को भी इन यंत्रों की सहायता से पर्दे में दिखलाया जा सकता है। चित्रों को दिखलाते समय कमरे में पूर्ण रूप से अन्धेरा करना अच्छा नहीं है। अध्यापन के बीच-बीच में चित्रों की सहायता लेने से पाठ को रोचक बनाया जा सकता है और विद्यार्थी उसे ठीक से समझ सकते हैं।

(३) **पदार्थ**—पदार्थ वास्तविक वस्तु को कहते हैं। उदाहरण के रूप में मेंढक, थर्मामीटर, फूल, पत्ती, बीज, बैरोमीटर आदि वस्तुएँ जिनको हम कक्षा में दिखलाते हैं, पदार्थ कहलाते हैं। इनसे विद्यार्थियों को उन वस्तुओं का वास्तविक तथा प्रत्यक्ष ज्ञान हो पाता है। पदार्थ विज्ञान शिक्षण के सबसे उच्चकोटि के दृष्टि-सहाय (Visual aids) होते हैं। हमें चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो सके, हम वास्त-

विक पदार्थ को ही सहायक सामग्री की तरह प्रयोग करें। उसके अभाव में अन्य प्रकार की सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है।

(४) **नमूना**—कभी-कभी सम्पूर्ण पदार्थ को कक्षा में नहीं दिखलाया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में हम उसके केवल नमूने को दिखलाते हैं। यदि हमें विद्यार्थियों को नीम के वृक्ष के बारे में पढ़ाना हो तो हम पूरा नीम का पेड़ कक्षा में नहीं ले जा सकते हैं। हम नीम की एक टहनी को नमूने के रूप में कक्षा में दिखला सकते हैं। इसी प्रकार कोयले के टुकड़े, नमक के टुकड़े, संगमरमर के टुकड़े आदि नमूने के रूप में कक्षा में सहायक सामग्री के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। यदि हमें फूलों के बारे में पढ़ाना हो तो हम गुडहल का फूल नमूने के रूप में दिखलाकर फूलों के विभिन्न अङ्गों से विद्यार्थियों को परिचित करा सकते हैं। इसी प्रकार अनेकों प्रकार के नमूने कक्षा में दृष्टि सहाय की भाँति प्रयोग किये जाते हैं। नमूना तभी प्रयोग किया जाना चाहिये जब कि सम्पूर्ण पदार्थ का कक्षा में प्रयोग करना असम्भव हो। चूँकि नमूना सम्पूर्ण पदार्थ का एक भाग होता है इसलिये विद्यार्थियों को सम्पूर्ण पदार्थ का पूरी तरह अनुभव नहीं हो पाता। हमें चाहिये कि यदि हम नमूने का प्रयोग करें तो उसे ऐसा होना चाहिए कि वह सम्पूर्ण पदार्थ का प्रतिनिधित्व कर सके।

(५) **प्रतिमान**—प्रतिमान किसी पदार्थ का प्रतिरूप है। कक्षाध्यापन में अनेकों बार हमें ऐसी दृष्टि सहाय की आवश्यकता होती है जिसको न तो पदार्थ के रूप में कक्षा में लाया जा सकता है और न ही नमूने के रूप में। मान लीजिए आपको रेल के इंजन के बारे में पढ़ाना है तो आप न तो रेल के इंजन को कक्षा में ला सकते हैं और न ही उसके नमूने को। ऐसी परिस्थिति में हम रेल के इंजन का एक छोटा प्रतिरूप बनाकर कक्षा में दिखला सकते हैं। उसी को हम रेल के इंजन का प्रतिमान कहते हैं। इसी प्रकार अनेकों वैज्ञानिक वस्तुओं के प्रतिमान सहायक सामग्री की भाँति प्रयोग में लाए जा सकते हैं; जैसे—पानी के पम्प का प्रतिमान, हवाई जहाज का प्रतिमान, पनडुब्बी जहाज का प्रतिमान आदि। कुछ पदार्थ इतने सूक्ष्म होते हैं कि विद्यार्थियों को उनके अङ्गों का अध्ययन कराने के लिये उन्हें बड़े प्रतिरूपों में बनाने की आवश्यकता होती है; जैसे—अमीबा, मच्छर, छोटे बीज आदि के बड़े आकार के प्रतिमान बनाए जा सकते हैं। प्रतिमान बनाने में हमें इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ तक प्रत्यक्ष

हो प्रतिमान उसी पदार्थ का बनाया जाय जिसका कि वास्तविक पदार्थ हो। यदि रेल का इंजन बनाना हो तो लोहे का बनाया जाय न की लकड़ी या अलमूनियम का। जहाँ यह सम्भव न हो सके वहाँ यह प्रयत्न करना चाहिए कि वास्तविक प्रतिमान वास्तविक पदार्थ से मिलता-जुलता हो। इनके रूप तथा रंग में भी भिन्नता नहीं होनी चाहिए।

प्रतिमान तभी प्रयोग किया जाना चाहिए जब कि वास्तविक पदार्थ को किसी कारण कक्षा में दिखलाया जाना असम्भव हो। अधिकाँश हमारे प्रतिमानों के रंग, रूप तथा आकारों में वास्तविक पदार्थों से भिन्नता होती है इसलिए उनसे विद्यार्थियों को पदार्थ के सम्बन्ध में सही ज्ञान नहीं हो पाता।

अब प्रश्न यह है कि अध्यापक को नित्य दिन कक्षाध्यापन में विभिन्न पदार्थों, नमूनों, चित्रों अथवा प्रतिमानों की आवश्यकता होती है तो वह इन वस्तुओं को कक्षा में प्रदर्शन के लिये कहाँ से ला सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय में विज्ञान संग्रहालय (Museum), अक्येरियम (Aquarium), वाईवेरियम (Vivarium), तथा टरेरियम (Terrarium) होना चाहिये। विज्ञान संग्रहालय में विभिन्न प्रकार के पदार्थ, पदार्थों के नमूने, पदार्थों के चित्र तथा पदार्थों के प्रतिमान एकत्रित कर रखे जाते हैं। एक्येरियम में पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों को सुरक्षित रूप में रखा जाता है। वाईवेरियम में वायु में रहने वाले जीव-जन्तुओं को सुरक्षित रूप में रखा जाता है। टरेरियम को रचना पृथ्वी के अन्दर रहने वाले जीवों के लिए की जाती है। इन सबका वर्णन अगले अध्याय में पूर्ण रूप से किया गया है।

(६) **फिल्म**—कक्षाध्यापन में फिल्मों से भी बहुत सहायता मिलती है। आजकल विज्ञान सम्बन्धी अनेकों फिल्मों का निर्माण किया गया है। अध्यापकों को चाहिये कि इन फिल्मों को आवश्यकतानुसार विद्यालयों में प्रयोग करें। अध्यापकों को उन फिल्मों से पहले ही परिचित होना चाहिए और उन्हीं फिल्मों को कक्षा में अथवा विद्यालय में दिखलाना चाहिये जो कि उपयुक्त हों। कक्षा में जो फिल्म दिखलाई जाय वह अधिक लम्बी नहीं होनी चाहिये अन्यथा फिल्म को दिखलाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जावेगा। फिल्म दिखलाने के लिये प्रत्येक विद्यालय में प्रोजेक्टर (Projecter) तथा पर्दे (Screen) की आवश्यकता होती

है। भारतीय सरकार अनेकों विद्यालयों में प्रोजेक्टर खरीदने के लिए सहायता प्रदान कर रही है। भारतीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कुछ एक्सटैन्शन सरविसेज डिपार्टमैन्ट (Extension Services Department) भी खोले गए हैं जो विभिन्न विद्यालयों में जाकर फिल्मों को दिखलाने की व्यवस्था करते हैं। विज्ञान के अध्यापकों को इस डिपार्टमैन्ट की सहायता से अपने विद्यालय में फिल्म का आयोजन करना चाहिये।

फिल्मों की सहायता से विद्यार्थी वास्तविकता का अनुभव कर पाते हैं। फिल्म वे चल-चित्र हैं जिनमें गति होती है और जो किसी क्रिया को विस्तार पूर्वक तथा एक निश्चित क्रम में बतलाते हैं। इसलिये विद्यार्थी उनके द्वारा दिखलाई गई बातों को स्पष्ट रूप से समझ जाते हैं।

अध्यापक सैन्ट्रल फिल्म लाइब्रेरी अथवा व्यापारी फर्मों से फिल्मों को प्राप्त कर सकते हैं। कुछ डौकूमैन्टरी फिल्मस् (Documentary Films) भी विज्ञान विषयों पर आधारित होती हैं। उन्हें भी विद्यालयों में मँगवाया जा सकता है। फिल्मों की पूरी सूचना एड्यूकेशनल फिल्म रिव्यू (Educational Film Review) अथवा डौकूमैन्टरी न्यूज लैटर (Documentary News Letter) से प्राप्त की जा सकती है।

(७) **स्लाइड**—स्लाइड की सहायता से भी किसी सूक्ष्म पदार्थ का अध्ययन करवाया जा सकता है। इसे भी विज्ञान की एक उपयोगी सहायक सामग्री समझना चाहिये। स्लाइड अनेकों प्रकार के होते हैं। इनमें **साधारण लैन्टर्न स्लाइड** (Plain Lantern Slide) सबसे सस्ता होता है और बनाने में सरल होता है। इसको प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है। इसके बनाने के लिये पहले काँच की स्लाइड को साबुन से धोकर साफ कर लिया जाता है और सुखा लिया जाता है। अब उसमें जिलैटिन (Gelatin) लगाकर किनारे की ओर से खड़ा कर दिया जाता है ताकि वह जिलैटिन का घोल सूखकर कड़ा हो जाय। जिलैटिन घोल लगाने के लिये या तो हम स्लाइड को घोल में डुबा देते हैं जिससे उसकी दोनों सतहों में घोल लग जाता है और उसे जिस सतह की ओर से चाहें प्रयोग कर सकते हैं या उसमें ब्रुश से घोल लगाया जाता है। घोल के सूख जाने पर हम उसकी सतह में चित्र खींच सकते हैं अथवा लिख सकते हैं। हमें चाहिए कि लिखने में हमारी रेखायें सीधी हों। इसके लिए स्लाइड को ग्राफ पेपर के ऊपर रख लेना चाहिये। इस स्लाइड को लैन्टर्न को सहायता से पर्दे में दिखलाया जा सकता है।

फोटोग्रैफिक स्लाइड (Photographic Slide) भी तैयार किए जा सकते हैं परन्तु प्रयोगशाला में इनका बनाना कठिन कार्य है। इनको व्यापारी फर्में बनाकर बेचती हैं। इनके बनाने के लिए किसी फोटो के निगेटिव (Negative) की प्रतिमा को काँच की प्लेट (plate) में स्थानान्तरित किया जाता है। **ऐच्ड ग्लास स्लाइड** (Etched Glass Slide) एक तीसरे प्रकार का स्लाइड है जिसकी एक सतह में तेजाब डालकर उसे खुरदरा कर दिया जाता है और फिर उस खुरदरी सतह में चित्र या रेखाचित्र आदि खींचे जाते हैं। इन स्लाइडों का बनाना भी सरल कार्य है। यदि हम उसी स्लाइड को दूसरे चित्रों के स्लाइड बनाने के काम में लाना चाहें तो साबुन से धोकर पहले चित्र को मिटा सकते हैं।

सैलोफेन स्लाइड (Cellophane slide) भी विज्ञान के अध्यापक के लिये उपयोगी है। इसको बनाने के लिये सैलोफेन के एक टुकड़े के चारों ओर कार्बन पेपर लपेट लिया जाता है। हम जो कुछ स्लाइड में लिखना चाहते हैं या चित्र बनाना चाहते हैं वह कार्बन के ऊपर लिखते हैं या बनाते हैं। ऐसा करने से सैलोफेन के ऊपर वह चीज लिख जाती है या चित्र बन जाता है। अब कार्बन पेपर को हटाकर इस सैलोफेन के टुकड़े को दो लैन्टर्न स्लाइडों के बीच रख कर टेप से बन्द कर देते हैं। इस प्रकार हमारा स्लाइड तैयार हो जाता है। अध्यापक चाहें तो गृह-कार्य, अभ्यास कार्य अथवा श्यामपट सारांश ऐसे स्लाइडों में लिखकर कक्षा में प्रस्तुत कर सकते हैं। इससे समय की बचत भी हो सकती है। कुछ स्लाइड माइक्रसकोप से दिखलाने के लिये भी बनाए जाते हैं। हम सभी उनसे परिचित हैं।

स्लाइडों को सावधानी से रखना चाहिये। उनमें धूल, पानी आदि नहीं लगने देना चाहिये। प्रत्येक स्लाइड में उसका नाम लिखा रहना चाहिये। स्लाइडों को लिफाफों में बन्द कर क्रम बार लगाकर रखना चाहिये ताकि प्रयोग करते समय वे सरलता से मिल सकें। हर लिफाफे में स्लाइड के सम्बन्ध में लिख देना चाहिये ताकि उसे पढ़कर यह सरलता से ज्ञात कर लिया जाय कि वह स्लाइड किस चीज के लिये है।

(८) **फिल्म स्ट्रिप**—फिल्म स्ट्रिप भी दृष्टि-सहाय की भाँति प्रयोग किए जाते हैं। इसको बनाने के लिये अनेकों चित्रों को एक क्रम में लगाया जाता है। इनको प्रोजैक्टर की सहायता से दिखलाना भी सरल कार्य है। इनको दिखलाने के लिये जो प्रोजैक्टर प्रयोग किये

जाते हैं वे सस्ते होते हैं और उनसे फिल्म स्ट्रिपों को दिखलाना भी सरल होता है। कभी-कभी बड़े प्रोजैक्टरों में फिल्म स्ट्रिपों को दिखलाने के लिये एक अलग भाग बना दिया जाता है। फिल्म स्ट्रिप सरलता से टूटते भी नहीं हैं। हाँ, असावधानी से प्रयोग करने पर वे खराब हो सकते हैं। फिल्म स्ट्रिपों के प्रयोग में सबसे अच्छी बात यह है कि हम केवल उन चित्रों को कक्षा में दिखला सकते हैं जिन्हें हम उपयोगी समझते हैं। अध्यापक इन स्ट्रिपों से पहले परिचित भी हो सकता है। कुछ अध्यापक स्वयं फोटो खींचकर फिल्म स्ट्रिप तैयार कर सकते हैं और कक्षा में उन्हें दिखला सकते हैं।

(९) **चार्ट, ग्राफ, नकशे तथा रेखाचित्र**—चार्ट, ग्राफ, नकशे तथा रेखाचित्र भी विज्ञान शिक्षण में सहायक सिद्ध होते हैं और कक्षाध्यापन में उनका अनेकों बार प्रयोग किया जाता है। चार्टों का प्रयोग दो पदार्थों या मात्राओं में सम्बन्ध देखने या उनकी तुलना करने के लिये किया जाता है। चार्टों को रेखाओं की सहायता से रेखागणित के रूपों में बनाया जाता है। इस प्रकार रंगों के चार्ट, दशमलव प्रणाली के चार्ट आदि बनाये जाते हैं।

विज्ञान सम्बन्धी अनेकों बातों को ग्राफों की सहायता से भी दिखलाया जाता है। विद्यार्थी तापक्रम का ग्राफ, हवा के दबाव का ग्राफ, वर्षा का ग्राफ आदि खींच कर मौसम का अनुमान लगा सकते हैं।

नकशे भी विज्ञान शिक्षण में सहायक होते हैं। नकशों की सहायता से विद्यार्थी यह समझ सकते हैं कि किन-किन स्थानों में विज्ञान सम्बन्धी कारखाने है, कहाँ उत्पादन की कौन सी वस्तुएँ मिलती हैं, विभिन्न स्थानों अथवा देशों में कैसा मौसम रहता है आदि।

कभी-कभी भौतिक तुला, विद्युत के यंत्रों, पम्पों आदि के रेखा चित्र खींचे जा सकते हैं। उनसे विद्यार्थी उनके सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(१०) **रेडियो**—रेडियो से विज्ञान सम्बन्धी अनेकों समाचार प्राप्त किए जा सकते हैं। भारतीय आकाश वाणी के विभिन्न केन्द्र विद्यार्थियों के लिये अनेकों समाचार ब्रौडकास्ट करते हैं। विज्ञान के अध्यापकों को चाहिये कि वे पहले से ही इस बात का पता लगाये रहें कि किस दिन विज्ञान से सम्बन्धित सूचना, वाद-विवाद अथवा नाटक ब्रौडकास्ट किया जाने वाला है। उसे अध्यापक ठीक समय पर विद्यालय में विद्यार्थियों को सुनवा सकता है। कभी-कभी अध्यापक यह भी

कर सकता है कि विज्ञान सम्बन्धी आवश्यक समाचारों को रिकर्डर (Recorder) से रिकर्ड कर ले और जब आवश्यकता समझे कक्षा में विद्यार्थियों को सुनवा दे। रेडियो का प्रोग्राम अखबारों में पहले ही छप जाता है। अध्यापक को चाहिये कि उन प्रोग्रामों के सम्बन्ध में पहले से ही जानकारी प्राप्त कर ले।

इस प्रकार हमने देखा कि विज्ञान शिक्षण में अनेकों प्रकार के साधनों से सहायता ली जा सकती है। कभी हम दृष्टि-सहाय का प्रयोग करते हैं और कभी श्रवण सहाय का प्रयोग करते हैं। दृष्टि सहाय तथा श्रवण सहाय को साथ-साथ भी प्रयोग किया जाता है। सहायक सामग्री की सहायता से विज्ञान शिक्षण को साधक तथा सार्थक बनाया जा सकता है।

प्रश्न

(१) विज्ञान शिक्षण में किन-किन साधनों से सहायता मिलती है? प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

(२) पदार्थ, नमूने तथा प्रतिमान से आप क्या समझते हैं? इनमें सबसे उत्तम दृष्टि सहाय (visual aid) कौन है और क्यों?

(३) आप कितने प्रकार के स्लाइडों का कक्षा में प्रयोग कर सकते हैं? उन्हें आप किस प्रकार बनायेंगे तथा प्रयोग करेंगे?

(४) फिल्मों का विज्ञान शिक्षण में क्या स्थान है? आप अपनी कक्षा में फिल्म का प्रयोग किस प्रकार करेंगे?

अध्याय १०

विज्ञान संग्रहालय, एक्येरियम, वाईवेरियम, तथा टरेरियम

(Museum, Aquarium, Vivarium, and Terrarium)

विज्ञान संग्रहालय की आवश्यकता—हमने पिछले अध्याय में यह कहा था कि विज्ञान शिक्षण को सार्थक तभी बनाया जा सकता है जब कि विद्यार्थियों को पढ़ाई गई वस्तुओं का वास्तविक अनुभव कराया जाय। विज्ञान शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों को उस संसार की विभिन्न वस्तुओं से तथा उनकी प्रकृति से परिचित कराना जिसमें वे रहते हैं। विद्यार्थी अपने वातावरण के सम्बन्ध में केवल पुस्तकों से पढ़कर ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। इसके लिये उन्हें वातावरण की वस्तुओं तथा दृश्यों आदि का निरीक्षण कर अनुभव प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इसके लिये या तो हम विद्यार्थियों को कक्षा के बाहर ले जाकर उन्हें निरीक्षण करने का अवसर प्रदान कर सकते हैं या कक्षा में ही बाह्य जगत की अनेकों वस्तुओं को लाकर विद्यार्थियों को दिखला सकते हैं। विद्यार्थियों को बार-बार कक्षा से बाहर बाह्य जगत में ले जाना भी सदा सम्भव नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में हम बाह्य जगत को ही एक प्रकार से कक्षा

अथवा प्रयोगशाला में लाने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिये हम बाह्य जगत के अनेकों विज्ञान सम्बन्धी पदार्थों का संग्रह कर विद्यालय में रखते हैं ताकि समय-समय पर विद्यार्थियों को उनका निरीक्षण करवाया जा सके और उन्हें वास्तविक पदार्थ से परिचित करवाया जा सके। इस प्रकार प्रत्येक विद्यालय में विज्ञान संग्रहालय का होना आवश्यक है क्योंकि उसी की सहायता से हम विद्यार्थियों को वास्तविक पदार्थ या उनके नमूने या उनके प्रतिरूप आदि दिखलाकर उन्हें पदार्थ से परिचित करा सकते हैं तथा उनका उनके वातावरण से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। तभी उनके ज्ञान की वास्तविक वृद्धि सम्भव है।

विज्ञान संग्रहालय में पदार्थों, नमूनों तथा प्रतिमानों को कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है?—

विज्ञान संग्रहालय में अनेकों प्रकार के पदार्थों तथा नमूनों का संग्रह किया जा सकता है; जैसे—तितली, बीज, पत्तियाँ, फूल, संगमरमर के टुकड़े, रेशम, रूई, जिगर, गुर्दा, फेफड़े, फल, इंजिन के प्रतिमान अनाज के दाने, चिड़ियों के घोंसले, पक्षियों के अंडे, साँप आदि। इन को निम्नलिखित स्थानों से प्राप्त किया जा सकता है :—

(१) कुछ सामग्री; जैसे—रेशम, रूई, उत्पादन के सामान, सन, विभिन्न प्रकार के लकड़ी के टुकड़े, बीजों, अनाजों आदि को औद्योगिक संग्रहालयों से प्राप्त किया जा सकता है।

(२) अध्यापक विद्यार्थियों को अपने घरों से विज्ञान सम्बन्धी सामग्री लाने के लिये उत्साहित कर सकता है। विद्यार्थी अपने घरों से विज्ञान सम्बन्धी चित्रों के संग्रह, विज्ञान सम्बन्धी पत्रिकाओं, किसी यंत्र के पुर्जे या कोई विज्ञान सम्बन्धी पदार्थ जो उन्होंने एकत्रित किये हों, ला सकते हैं। कभी-कभी विद्यार्थियों के अभिभावक अपने-अपने बच्चों से संग्रहालय में रखने के लिये वैज्ञानिक वस्तुओं को भेजते हैं। हमें चाहिये कि केवल उन्हीं वस्तुओं को संग्रहालय में रखें जो विज्ञान से सम्बन्धित हों। वस्तुओं को छाँटने लिये एक कमेटी बनाई जा सकती है।

(३) कसाई की दूकान से या कसाई घरों से जोव विज्ञान सम्बन्धी सामग्री प्राप्त की जा सकती है; जैसे—गुर्दे, जिगर, दिल, फेफड़े, विभिन्न अंगों ही हड्डियाँ, आँख आदि।

(४) सब्जी मंडियों से वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी सामग्री मिल सकती है; जैसे—विभिन्न प्रकार के फल, पत्तियाँ, फूल, बीज आदि।

(५) कुछ उत्तम प्रकार के पदार्थ या प्रतिमान स्टोरों (Stores) या औद्योगिक केन्द्रों से प्राप्त किये जा सकते हैं। कुछ औद्योगिक केन्द्र विज्ञापन के लिये विज्ञान सम्बन्धी वस्तुएँ मुफ्त में भी देते हैं।

(६) कुछ अच्छे नमूने या प्रतिमान विज्ञान सामग्री के विक्रेताओं से खरीदे जा सकते हैं। विभिन्न बड़े-बड़े शहरों में ऐसे विक्रेताओं के केन्द्र हैं; जैसे सैन्ट्रल साइन्टिफिक कं०, आगरा, हरगोलाल एण्ड सन्स, अम्बाला; साइन्टिफिक इंस्ट्रुमैन्ट कं० प्रयाग आदि।

(७) विद्यालय के विज्ञान संग्रहालय में सामग्री को एकत्रित करने के लिए अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। जब अध्यापक अथवा विद्यार्थी पर्यटन में जाते हैं अथवा किसी नवीन स्थान में भ्रमण करने जाते हैं तो वैज्ञानिक सामग्री को एकत्रित करने का सबसे उत्तम अवसर मिलता है। उन्हें ऐसे अवसरों को नष्ट नहीं करना चाहिये। यदि विद्यार्थी गर्मियों की छुट्टियों में पहाड़ों का भ्रमण करने जावें तो उन्हें साँप की शक्ल के पौधे (Snake Plant), फर्न (Fern), बाज के पेड़ के बीज (Seed of the Oak tree), विभिन्न प्रकार के अनाज के दाने (जैसे मडवा, मादिरा) आदि मिलते हैं। उन्हें इन पदार्थों को विज्ञान संग्रहालय के लिए एकत्रित कर लेना चाहिए।

अध्यापक तथा विद्यार्थी अवकाश के क्षणों में मिल-जुलकर अनेकों प्रकार के प्रतिमान तैयार कर सकते हैं। ये प्रतिमान कम व्यय में बन सकते हैं और अपने बनाये हुए प्रतिमानों में विद्यार्थी रुचि भी अधिक लेते हैं। अध्यापक को विद्यार्थियों की सहायता से विभिन्न प्रकार के स्लाइडों (Slides) को बनाकर संग्रहालय में रख देना चाहिये। स्लाइडों के बनाने की विधि का वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। संग्रहालय के लिये विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक वस्तुओं के तथा विभिन्न वैज्ञानिकों के चित्र भी विद्यार्थियों से बनवाये जा सकते हैं या विभिन्न पत्रिकाओं से एकत्रित किये जा सकते हैं। विद्यार्थियों द्वारा एकत्रित किये गये पदार्थों, नमूनों, चित्रों आदि में उनका नाम तथा प्रदान करने की तिथि लिख देना भी एक अच्छी रीति है। प्रत्येक पदार्थ या नमूने आदि का नाम तथा उसके बारे में कुछ जानकारी की बातें भी लिख देनी चाहिये।

जीवों, वनस्पतियों तथा अन्य पदार्थों को एकत्रित करने तथा सुरक्षित रखने के उपाय—जैसा ऊपर कहा गया है कि विज्ञान संग्रहालय में विभिन्न जीवों तथा वनस्पतियों को संग्रहित करके रखना होता है। केवल संग्रहीत करने से ही सग्रहालय नहीं बनाया जा सकता है। हमें उनकी सुरक्षा पर भी ध्यान देना आवश्यक है अन्यथा एकत्रित की गई सामग्री शीघ्र ही नष्ट हो जावेगी। जीवों को कुछ विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थों की सहायता से या यन्त्रों से मारा जाता है तथा कुछ विशेष रासायनिक पदार्थों में रखा जाता है जिससे वे सड़ने नहीं पाते। नीचे की तालिका में कुछ जीवों के नाम दिये गये हैं तथा उनके सामने उन रासायनिक पदार्थों या यन्त्रों के नाम लिखे हैं जिनसे उनको मारा जाता है या पकड़ा जाता है तथा जिनमें उन्हें सुरक्षित रखा जाता है। इसी तालिका में उन स्थानों के नाम भी दिये गये हैं जहाँ वे जीव पाये जाते हैं।

जीव	पाए जाने के स्थान	मारने वाले रासायनिक पदार्थ या यंत्र	सुरक्षित रखने के लिए प्रयोग किए जाने वाले रासायनिक घोल
साँप	जंगलों तथा खेतों में।	शरीर में ईथर की सुई लगाकर	८% फारमेंलीन का घोल
मछली	तालाब, पोखर, नदी आदि में	जाल या काँटे से मारी जाती है	१०% फारमेंलीन का घोल
घोंघे	समुद्र, नदी, तालाब झील आदि में	जाल से पकड़े जाते हैं।	८% फारमेंलीन का घोल
कीड़े मकोड़े	जंगल, खेत पानी आदि में	जाल, चिमटी मे पकड़े जा सकते हैं या अलकोहल से मारे जा सकते हैं	अलकोहल में रखकर अथवा सुखाकर
केंचुआ	बरसात में खेतों अथवा गीले स्थानों में	हाथ में कपड़ा लेकर पकड़े जा सकते हैं।	५% फारमेंलीन का घोल
मेंढक	गीले स्थानों, तालाब, पोखर आदि के किनारे	क्लोरोफार्म सुंघाकर मारे जा सकते हैं।	८% फारमेंलीन का घोल
चिड़ियाँ	सब जगह मिलती हैं।	जालसे पकड़ीजाती हैं और क्लोरोफार्म सुंघाकर मारी जाती हैं	८% फारमेंलीन का घोल

जीव जन्तुओं की खाल को सुरक्षित रखने के लिये तारपीन का तेल, गन्धक, नैप्थलीन आदि का प्रयोग किया जाता है।

वनस्पतियों को सुरक्षित रखने के लिये भी कुछ उपाय निम्नलिखित हैं। इनको सुरक्षित रखना सरल होता है। पौधों के नमूनों को ४ प्रतिशत फारमेल्डिहाइड (4% Formaldehyde) के घोल में सुरक्षित रखा जा सकता है। परन्तु इस घोल में तीव्र गन्ध आती है और

इसमें पौधों का रंग उड़ जाता है। यदि हम पौधे के रंग की सुरक्षा करना चाहें तो हमें निम्नलिखित घोल का प्रयोग करना चाहिये :—

५०% अल्कोहौल	९० घ० से०
४०% फारमेंलीन	५ घ० से०
ग्लीसरीन	२·५ घ० से०
ग्लेसियल एसिटिक एसिड	२·५ घ० से०
कौपर क्लोराइड	१० ग्राम
यूरैनियम नाइट्रेट	१·५ ग्राम।

फलों; जैसे—सेब, नाशपाती आदि को निम्नलिखित घोल में सुरक्षित रखा जा सकता है :—

डिस्टिल्ड वाटर (Distilled water)	४००० घ० से०
जिन्क क्लोराइड	२०० ग्राम
४% फारमेंलीन	१०० घ० से०
ग्लीसरीन	१०० घ० से०

विज्ञान संग्रहालय के चार्टों, चित्रों, पदार्थों, प्रतिमानों आदि की दीमक, चूहों तथा अन्य कीड़े मकोड़ों से रक्षा करना आवश्यक है। इसके लिए डी० डी० टी का प्रयोग किया जा सकता है। नैप्थलीन का चूर्ण भी इसके लिये उपयोगी है। प्रति सप्ताह इन सब चीजों की सफाई करते रहना चाहिए। उन चीजो को संग्रहालय से हटा देना चाहिए जो खराब हो गई हों अथवा पुरानी हो गई हों और जिनके स्थान पर कुछ नई सामग्री उपलब्ध हो गई हो। संग्रहालय को सजाकर रखना भी आवश्यक है।

कभी-कभी हमें कक्षा में जीवित जीव-जन्तुओं को दिखलाने की आवश्यकता होती है। इसलिये हमें विद्यालय में एक्येरियम, वाईवेरियम तथा टरेरियम का भी प्रबन्ध करना चाहिये। इनका अलग-अलग वर्णन नीचे किया गया है :—

एक्येरियम—एक्येरियम में पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं को जीवित रूप में सुरक्षित रखा जाता है। इसके लिए एक कांच के बक्स का प्रयोग किया जाता है। इस बक्स की तह में तालाब या झीलों की मिट्टी डालकर उसके ऊपर बालू की एक हल्की तह लगा दी जाती है। उसमें कुछ पानी में उपजने वाले पौधे; जैसे सैवाल या हाइड्रेला आदि डाल दिये जाते हैं।

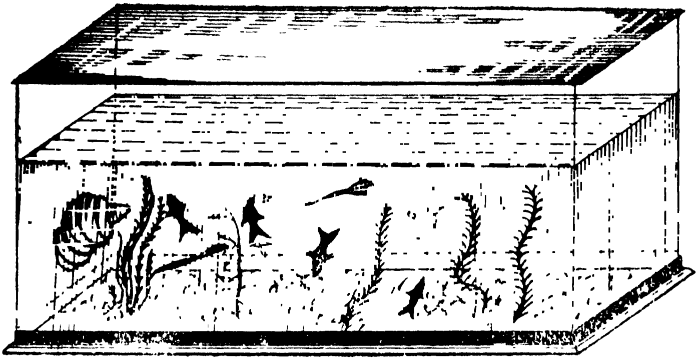

चित्र—एक्येरियम

अब इस एक्येरियम में सावधानी से पानी भर कर उसमें कुछ घोंघे, मछली के अण्डे, बच्चे आदि पानी के जीव-जन्तु डाल दिये जाते हैं। इस एक्येरियम के पानी को हर सप्ताह साफ करते रहना चाहिए। एक्येरियम को काँच का इसलिए बनाया जाता है ताकि पानी के जीव-जन्तु उसके अन्दर दीखते रहें। इस प्रकार उनके खाने, पीने, रहने आदि आदतों तथा क्रियाओं का निरीक्षण किया जा सकता है और उनके जीवन इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

आरम्भ में जीव-जन्तुओं की टहल करने में कठिनाई होती है क्योंकि उनकी खाने-पीने की आदतें ज्ञात नहीं हो पातीं। बाद में जब उनकी आदतें मालूम हो जाती हैं तो यह कार्य सरल हो जाता है। जीव-जन्तुओं को खिलाने के लिये उनको उनके उपयुक्त भोजन देना आवश्यक होता है। कभी भी आवश्यकता से अधिक भोजन नहीं देना चाहिए। कम भोजन देने से उनको उतनी हानि नहीं होती जितनी कि अधिक भोजन देने से। घोंघों को एल्गी (algae), पानी के पौधे, गोश्त के टुकड़े तथा कटल-फिश-बोन पाउडर (Cuttle-Fish bone powder) खाने को देना चाहिये। जब कोई घोंघा मर जाय तो उसे एक्येरियम से बाहर निकाल देना चाहिये। घोंघे एक्येरियम की सफाई करने में भी सहायक होते हैं।

मछलियों को खाना हर दूसरे दिन देना चाहिए। मछलियाँ विभिन्न प्रकार का खाना खाती हैं; जैसे—केंचुवा, गोश्त के छोटे-छोटे टुकड़े, मच्छर, पानी के कीड़े-मकोड़े, उबले हुए आलू आदि। जब किसी मछली को कोई रोग हो जाय तो उसे तुरन्त एक्येरियम से बाहर

निकाल देना चाहिए क्योंकि वह रोग अन्य मछलियों में फैल सकता है। जब मछली अपनी पूँछ फड़फड़ाती है या उसके बदन में सफेद दाग हो जाते हैं या जब वह अजीब व्यवहार करने लगती है तो समझ लेना चाहिए कि उसे कोई रोग हो गया है। हर महीने में मछलियों को नमक के पानी में २४ घन्टे के लिए छोड़ देना चाहिए। इससे वे रोग से बच सकती हैं और उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

विद्यालय में एक्वेरियम का होना बहुत आवश्यक है। इसे या तो प्रयोगशाला में रखा जा सकता है या विज्ञान की कक्षा में। एक्वेरियम को भी विज्ञान में सहायक सामग्री की भाँति प्रयोग किया जा सकता है। इसको सुरक्षित रखने का कार्य कुछ ऐसे विद्यार्थियों के ऊपर होना चाहिए जो उसमें वास्तविक रुचि ले सकें और उसका उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से सम्भाल सकें।

वाईवेरियम—जिस प्रकार पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं को सुरक्षित रूप में एक्वेरियम में रखा जाता है उसी प्रकार वायु में रहने

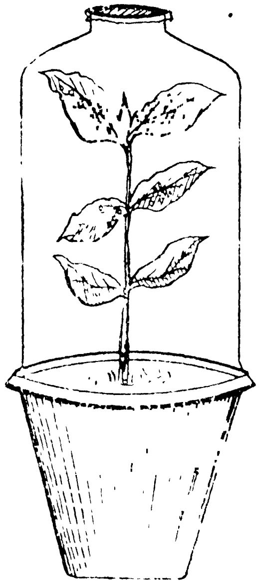

चित्र—वाइवेरियम का एक साधारण नमूना

वाले जीव-जन्तुओं को वाईवेरियम में सुरक्षित रूप में रखा जा सकता है। वाइवेरियम से उन जन्तुओं के जीवन इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जाता है जो वायु में रहते हैं। वाईवेरियम को भी प्रयोगशाला में

रखा जा सकता है। इसके लिये ऐसा स्थान अधिक उपयुक्त होता है जहाँ शुद्ध वायु, रोशनी तथा धूप प्राप्त हो सकें। वाईवेरियम बनाने के लिये हम किसी ऐसे पौधे को जिसमें वायु में रहने वाले जन्तुओं के अण्डे हों एक बैल-जार से इस प्रकार ढक देते हैं कि बैल-जार का ऊपरी मुँह ऊपर को हो। उस ऊपरी मुँह को एक पतले कपड़े से, जिससे अन्दर को हवा जा सके, बन्द कर दिया जाता है। अब नित्य दिन हम उसका निरीक्षण कर सकते हैं और उन जन्तुओं के जीवन की विभिन्न दशाओं का निरीक्षण कर सकते हैं।

वाईवेरियम के लिए हम एक ऐसे पौधे को ले सकते हैं जिसमें तितली के अण्डे हों और उससे तितली के जीवन इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। वाईवेरियम में रोशनी, वायु तथा धूप का उचित प्रबन्ध रहना चाहिए।

टरेरियम—कुछ जीव-जन्तु ऐसे होते हैं जो कभी जमीन के नीचे रहते हैं या कभी ऊपर, जैसे केंचुवा। कुछ ऐसे होते हैं जो गीली जमीन के अन्दर अथवा गीली घास अथवा छोटे-मोटे घने पौधों के बीच में रहते हैं; जैसे—ट्री फ्रौग (Tree Frog)। कुछ ऐसे होते हैं जो कभी

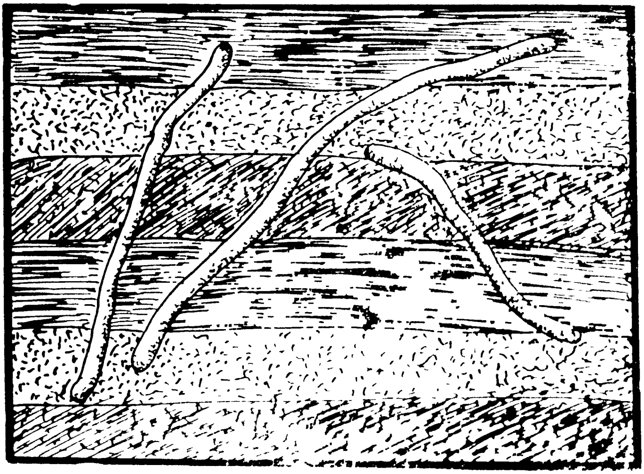

चित्र—केंचुए के लिए टरेरियम

पानी में रहते हैं और कभी जमीन में; जैसे—ग्रास फ्रौग (Grass Frog)। इन जीव-जन्तुओं को टरेरियम में रखा जाता है। इनके लिए इनकी रहने की आदतों के अनुसार अलग-अलग प्रकार के टरेरियम

बनाए जाते हैं। केंचुए के लिये निम्नलिखित प्रकार से टरेरियम बनाया जा सकता है।

एक काँच के बक्स में सबसे नीचे १" मोटी खेत की मिट्टी की तह बिछाई जाती है। उसके ऊपर पत्तों की खाद, ईंट का चूरा, मिट्टी की तहें जमाई जाती हैं। इसी प्रकार कई तहें जमाई जाती हैं और उनको पानी से नम कर दिया जाता है।

केंचुए के खाने के लिए मिट्टी के अन्दर कुछ कीड़े-मकोड़े डाल दिये जाते हैं।

ग्रास फ्रौग के लिए जो टरेरियम बनाया जाता है उसमें आधे हिस्से में पानी तथा आधे मे गीली मिट्टी, घास आदि का प्रबन्ध किया जाता है। उसमें उसके खाने के लिये कुछ कीड़े-मकोड़े तथा मक्खियाँ आदि छोड़ दी जाती हैं। ग्रास फ्रौग जब चाहता है पानी में चला जाता है और जब चाहता है उससे ऊपर नम स्थान में आ जाता है।

ट्री फ्रोग के लिये बनाए गये टरेरियम में अधिक नमी रहनी चाहिए और उसके लिए फर्न, काई, तथा छोटे-छोटे पौधों से छिपने का स्थान बनाया जाना चाहिये। ऐसे स्थान में वह सूर्य की गर्मी से बचने के लिये छिपता है। ये फ्रौग दिन में छिपे रहते हैं तथा रात को खाने की तलाश में बाहर निकलते हैं। इनको खाना रात के समय दिया जाना अच्छा है। वैसे यदि दिन में खाना दिया जाय तो वे उसे खा लेते हैं।

विज्ञान संग्रहालय, एक्वेरियम, वाईवेरियम तथा टरेरियम से विज्ञान शिक्षण में बहुत [सहायता मिलती है और विद्यार्थी उनकी सहायता से वैज्ञानिक पदार्थों का वास्तविक अनुभव कर पाते हैं। भारतीय विद्यालयों में इनका अभाव है। हर विज्ञान के अध्यापक को अपने विद्यालय में इन्हें बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न

(१) आप अपने विद्यालय में विज्ञान संग्रहालय का संगठन किस प्रकार करेंगे तथा उसके लिये सामग्री किस प्रकार और कहाँ से एकत्रित करेंगे ?

(२) मान लीजिए आपको अपने विद्यालय में तितली, मैढक, मछली, केंचुए आदि को जीवित रूप में रखना है तो उनके लिए किस-किस प्रकार के निवास स्थान बनायेंगे ? उनके भोजन का आप क्या प्रबन्ध करेंगे ?

अध्याय ११
पर्यटन
(Excursion)

पर्यटन की आवश्यकता—शिक्षा के क्षेत्र में पर्यटन का एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से ही शिक्षा-शास्त्री पर्यटन को बालक को शिक्षा का एक प्रमुख साधन मानते आये हैं। रूसो (Rousseau) अपने इमील (Emile) नामक बालक को भ्रमण (Grand tour) द्वारा शिक्षा देना चाहते थे। उनका कहना था कि बालक को घर में अथवा कक्षा में पुस्तक पढ़वाकर शिक्षा नहीं दी जा सकती है। बालक भ्रमण करके ही वस्तुओं का स्वाभाविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

विज्ञान के क्षेत्र में पर्यटन का स्थान और भी महत्वपूर्ण है। कक्षा में हम बालकों को अनेकों ऐसी बातें पढ़ाते हैं जिनको मूल तथा स्वा-भाविक रूप में देखे बिना वे उन्हें सही प्रकार से नहीं समझ पाते हैं। हम कक्षा में विद्यार्थी को बिजली तथा बिजलीघर के सम्बन्ध में पढ़ाते हैं परन्तु जब तक विद्यार्थी बिजलीघर को तथा उसकी कार्य प्रणाली को स्वयं अपनी आँखों से देख नहीं लेता उसे नहीं समझ पाता है। हम विद्यार्थियों को कक्षा में अथवा प्रयोगशाला में पानी की सफाई के बारे में पढ़ाते हैं। परन्तु विद्यार्थी पानी की सफाई की क्रिया को पूर्ण रूप से तभी समझ सकता है जब वह स्वयं जाकर पानी घर की कार्य

प्रणाली को देखे। फल, फूल, पत्तियों, पौधों आदि के बारे में उसे सही ज्ञान तभी हो सकता है जब वह बाग, बगीचों, जंगलों आदि में उनको अपने स्वाभाविक रूप में देखे। इसीलिये वाल्टर (Walter) महोदय ने कहा है—"The place where a plant or animal lives is just as important as the plant or animal itself"❀। कहने का अर्थ यह है कि विज्ञान विषय के ज्ञान के लिये विद्यार्थियों को वस्तुओं अथवा क्रियाओं का स्वयं निरीक्षण करने का तथा उनको अपने स्वाभाविक रूप में देखने का अवसर मिलना चाहिये। इसके लिये पर्यटन एक महत्त्वपूर्ण साधन है। पर्यटन के द्वारा ही विद्यार्थी अपने वैज्ञानिक वातावरण से परिचित होता है और वस्तुओं को स्वाभाविक रूप में देखता है। इसी से कक्षाध्यापन का सम्बन्ध बाह्य वातावरण से जोड़ा जा सकता है।

पर्यटन के उद्देश्य—पर्यटन के कुछ निश्चित उद्देश्य हैं। पर्यटन केवल इसीलिये नहीं कराया जाना चाहिये कि उसे केवल कराना है या केवल मनोरंजन के लिये नहीं कराना चाहिये। पर्यटन के मुख्य उद्देश्यों में से कुछ उद्देश्य निम्नलिखित हैं:—

(१) इससे विद्यार्थियों में विज्ञान विषय के लिये रुचि उत्पन्न की जाती है और उन्हें अभिरोचन (Motivation) मिलता है।

(२) उन्हें विज्ञान की वस्तुओं तथा प्राकृतिक नियमों का स्वयं निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त होता है जिससे उनके ज्ञान की वृद्धि होती है।

(३) कक्षा तथा प्रयोगशाला में पढ़ी हुई वस्तुओं, सिद्धान्तों तथा नियमों का बाह्य जगत में जाकर स्पष्टीकरण करने का अवसर मिलता है।

(४) प्राकृतिक तथा अन्य विज्ञान सम्बन्धी वस्तुओं को स्वाभाविक रूप में देखने से उनका सही ज्ञान हो पाता है।

(५) पर्यटन के द्वारा ही विद्यार्थी विज्ञान सम्बन्धी सामग्री एकत्रित कर पाता है जो उसे कक्षा अथवा घर में विज्ञान विषय को समझने में सहायक सिद्ध होती है।

(६) इसी से विद्यार्थी दूसरों के साथ मिल-जुलकर काम करना सीखता है।

❀ Hunter, G. W. : 'Science Teaching'; American Book Co.; New York, London, 1934, Page 167.

(७) पर्यटन से ही विद्यार्थी विज्ञान की वास्तविक महत्ता को समझता है जिसे वह केवल कक्षा में पढ़कर नहीं समझ पाता।

हमें चाहिये कि यदि हम विद्यार्थियों को कक्षा से बाहर वस्तुओं का निरीक्षण कराने ले जायँ तो इन उक्त लिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखें अन्यथा पर्यटन का उद्देश्य समाप्त हो जावेगा और उससे कोई लाभ न होगा।

पर्यटन के स्थान—अब प्रश्न यह है कि पर्यटन के लिये विद्यार्थियों को किन-किन स्थानों में ले जाया जा सकता है। पर्यटन के लिये स्थान नियुक्त करना अनेक बातों में निर्भर करता है। पहली बात तो यह है कि पर्यटन के लिये उस स्थान को छाँटना चाहिये जहाँ विद्यार्थी अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का निरीक्षण कर सकें तथा उन्हें समझ सकें। छोटे से बच्चों को गंधक के तेजाब वाले कारखाने को दिखलाने से उन्हें उतना लाभ नहीं होगा जितना कि जानवरों के प्राकृतिक रूप से रहने के स्थानों को दिखलाने से या वाटिकाओं में जाकर फल, फूल, पत्तियों आदि को दिखलाने से होगा। पर्यटन का स्थान अध्ययन विषय के ऊपर भी निर्भर करता है। भौतिक विज्ञान के लिये विद्यार्थियों को रेडियो स्टेशन, टेलीफौन ऐक्सचेन्ज, बिजलीघर, इंजन की मरम्मत के वर्कशाप, हवाई अड्डे, रेल के ब्रेक तथा इंजन, मोटर कम्पनी आदि का निरीक्षण करावाया जा सकता है।

रसायन विज्ञान सम्बन्धी वस्तुओं का निरीक्षण करने के लिये तेजाब फैक्टरी, साबुन फैक्टरी, बर्फ की फैक्टरी, कोयले की खान, पानी घर, गैस प्लान्ट (Gas plant), शक्कर की फैक्टरी, आदि का निरीक्षण करवाया जा सकता है।

जीव विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान के लिये वाटिकाओं, बगीचों, पोखरों, एक्येरियम, वाईवेरियम, टरेरियम, जानवरों के रहने के स्थानों, झरनों, अजायबघरों, विज्ञान संग्रहालयों आदि का निरीक्षण करवाया जा सकता है।

पर्यटन के लिये उपयुक्त स्थान छाँटने का उत्तरदायित्व अध्यापक के ऊपर होना चाहिये क्योंकि वह विद्यार्थियों की आवश्यकता को समझ सकता है।

पर्यटन के लिए तैयारी—अध्यापकों को यह स्वयं देखना चाहिये कि वर्ष में कितनी बार विद्यार्थियों को निरीक्षण के लिये कक्षा से बाहर ले जाया जाय और कहाँ ले जाया जाय। पर्यटन के लिये विशेष प्रकार

की तैयारी की आवश्यकता होती है अन्यथा वह असफल हो जाता है और उससे कोई लाभ नहीं होता। पर्यटन कभी समीप के स्थानों में भी हो सकता है परन्तु कभी-कभी दूर के स्थानों में भी जाना पड़ता है। समीप के स्थानों में जाने के लिये अध्यापक को केवल अपने ही घंटे की आवश्यकता होती है परन्तु दूर के स्थान के लिये उसे सभी अध्यापकों के घंटों की आवश्यकता होती है। इसलिये ऐसे अवसर पर विज्ञान के अध्यापक को अन्य अध्यापकों के सहयोग के साथ कार्य करना चाहिये।

पर्यटन की तैयारी—पर्यटन की तैयारी के लिये सभी विद्यार्थियों को हाथ बटाना चाहिये। इसके लिये पहले कक्षा में वाद-विवाद हो जाना चाहिये कि पर्यटन का उद्देश्य क्या होगा, उसका संगठन किस प्रकार किया जावेगा और किस विद्यार्थी को कौन से कार्य का उत्तर-दायित्व लेना होगा। एक छोटी कमेटी भी बनाई जा सकती है जो देखेगी कि सब लोग अपने-अपने कार्य को सुचारुरूप से कर रहे हैं अथवा नहीं, तथा जो आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता भी करेगी।

प्रत्येक पर्यटन के लिये मार्ग-प्रदर्शन पत्र (Guide Sheet) का होना आवश्यक है। यह पत्र प्रत्येक पर्यटन के लिये भिन्न होगा। इसकी सहायता से विद्यार्थी यह समझ सकते हैं कि उन्हें पर्यटन में क्या-क्या कार्य करना है, क्या-क्या सीखना है तथा कौन-कौन सी चीजों को साथ ले जाना आवश्यक है। इससे विद्यार्थी भूल नहीं कर पावेंगे। मार्ग-प्रदर्शन पत्र में कुछ निम्नलिखित प्रकार की बातें लिखी रहनी चाहिये :—

(१) कुछ यंत्रों अथवा सामग्री के नाम जिनको पर्यटन में ले जाने की आवश्यकता होती है; जैसे—थर्मामीटर, ग्राफ पेपर, चाकू, फोता, रूलर, पेंसिल, नोट बुक, लैन्स (Lense), जार (Jar), एक चौड़े मुँह की बोतल में फार्मलीन अथवा स्प्रिट जिसमें वस्तुओं को रख कर प्रयोगशाला में लाया जा सके, एक जाल के साथ छड़ी, एक टीन का डिब्बा जिसमें वस्तुओं को एकत्रित कर लाया जा सके, आदि।

(२) प्रत्येक विद्यार्थी अथवा कमेटी के लोगों के जो कार्य हों अथवा उन्हें जो कुछ संग्रह करने के लिये कहा गया हो उसका विवरण भी मार्ग-प्रदर्शन पत्र में होना चाहिये।

(३) उन प्रश्नों, नियमों तथा सिद्धान्तों की सूची जिनका विद्या-

र्थियों को अध्ययन करना हो, इस पत्र में दी जा सकती है।

(४) पर्यटन का कार्य-क्रम।

(५) जिस रास्ते से जाना हो उसका वर्णन।

(६) जिस प्रकार के कपड़े या जूते आदि पहन कर जाना आवश्यक हो उनका विवरण; जैसे—यदि बिजलीघर में जाना हो तो रबड़ के जूते तथा रबड़ के दस्ताने, बर्फ के कारखाने में जाना हो तो गरम कपड़े आदि।

(७) खाने की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्देश।

(८) प्राथमिक चिकित्सा की वस्तुएँ जिनको साथ ले जाना आवश्यक हो।

(९) व्यक्तिगत वस्तुएँ जो विद्यार्थी चाहें तो ले जावें; जैसे—कैमरा, दूरबीन आदि।

(१०) उन सावधानियों के सम्बन्ध में आदेश जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक हों, ताकि किसी विद्यार्थी को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे।

इन सब आवश्यक बातों की सूची तभी तैयार की जा सकती है जब कि अध्यापक पर्यटन के स्थान को पहले ही जाकर देख ले और उससे भली-भाँति परिचित हो जाय। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि उस स्थान को पहले जाकर देख ले तथा यह ज्ञात कर ले कि विद्यार्थी वहाँ कौन-कौन सी वस्तुओं का निरीक्षण कर सकते हैं, उनको वहाँ के लिए कौन-कौन सी सामग्री अथवा यन्त्र ले जाना आवश्यक है, आदि। यदि अध्यापक उस नवीन स्थान से स्वयं ही परिचित नहीं है तो पर्यटन अवश्य ही असफल हो जावेगा।

पर्यटन के पूर्व अध्यापक को उसके संगठन सम्बन्धी बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। उनमें कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

(१) पर्यटन के लिए विद्यालय के अधिकारियों से आज्ञा ले लेनी चाहिए।

(२) यदि पर्यटन का स्थान दूर हो और अध्यापक यह समझता हो कि विद्यार्थियों को उसमें पाँच-छः घण्टे लगेंगे तो उसे उन अध्यापकों से परामर्श कर लेना चाहिए जिनके घण्टों को विद्यार्थियों को छोड़ना होगा।

(३) पर्यटन में जाने के पूर्व अध्यापक को विद्यार्थियों के अभिभावकों से भी आज्ञा ले लेनी चाहिए।

(४) अध्यापक को चाहिये कि सवारी का भी ठीक प्रबन्ध कर ले। यदि पर्यटन का स्थान दूर हो तो बस का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। पर्यटन के स्थान में जाने तथा वहाँ से लौटने में रास्ते में अधिक समय व्यय नहीं होना चाहिए अन्यथा पर्यटन साधक नहीं हो पाता। यदि विद्यालय के पास अपनी स्वयं की बस हो तो अधिकारियों से उसके लिए आज्ञा ले लेनी चाहिए। बस का बीमा करा लेना भी एक समझदारी होगी।

(५) पर्यटन के लिये जो धन की आवश्यकता हो उसके लिये अध्यापक को कुछ तो विद्यार्थियों से चंदा इकट्ठा करना चाहिये और कुछ अधिकारियों से प्रार्थना करके विद्यालय से प्राप्त करना चाहिये।

(६) पर्यटन में कितना धन व्यय किया जाय, पर्यटन किस स्तर का होना चाहिए, खाने-पीने का प्रबन्ध कैसा होना चाहिए आदि बातों को विद्यार्थियों से सलाह करके तय करना चाहिए।

कभी-कभी सब विद्यार्थी एक टोली बनाकर पर्यटन में जा सकते हैं और कभी-कभी दो या तीन टोलियाँ बनाकर जा सकते हैं। यह सब कुछ आवश्यकतानुसार किया जाना चाहिये। प्रत्येक टोली का मार्ग का पूरा विवरण दे देना आवश्यक है। हर टोली का एक-एक नायक होना चाहिए।

पर्यटन में यदि सावधानियों पर ध्यान न दिया जाय तो कई प्रकार की क्षति हो सकती है। बिजलीघर, गरम पाइप, तेजाब के कारखाने, नदियों अथवा झीलों के किनारे, जहरीले पदार्थों के कारखानों आदि स्थानों में यदि सावधानी से काम न लिया जाय तो मृत्यु तक हो सकती है। ऐसे अवसरों पर हमें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से काम लेना चाहिए। विद्यार्थियों को यह बतलाना चाहिए कि उन्हें केवल कौन-कौन से काम करने चाहिए और उसके अतिरिक्त कोई कार्य नहीं करना चाहिये। उन्हें उन अनेकों कार्यों की सूची नहीं देनी चाहिए जो उन्हें नहीं करने चाहिए बल्कि उन कार्यों की सूची देनी चाहिए जो उन्हें करने चाहिए और जिसके अतरिक्त अन्य कार्य नहीं करने चाहिए।

पर्यटन में जाने के पूर्व अध्यापक को प्रत्येक विद्यार्थी की वस्तुओं का निरीक्षण करके यह देख लेना चाहिए कि उनके पास सब आवश्यक वस्तुएँ हैं अथवा नहीं। उस विद्यालय की सामग्री की, जो कि

पर्यटन में ले जानी है, एक सूची बना लेनी चाहिए ताकि कोई सामग्री भूल से खो न जाय। विद्यार्थियों को भली-भाँति समझा देना चाहिए कि उन्हें किन-किन वस्तुओं का निरीक्षण करना है और कहाँ-कहाँ क्या बातें अपनी नोट बुक में लिखनी हैं। कैमरे के प्रयोग के लिये भी निश्चित आदेश दे देने चाहिए।

पर्यटन में भाग लेने के लिये विद्यार्थियों के अभिभावकों को भी निमन्त्रित करना अच्छा है। यह एक ऐसा अवसर है जब कि अध्यापक विद्यार्थियों के अभिभावकों से भली-भाँति परिचित हो सकता है।

खाने-पीने का सामान ले जाने तथा उसकी व्यवस्था करने के लिए एक कमेटी होनी चाहिए जो कि खाने का प्रबन्ध करे। खाने के सामान को स्वच्छता से ढक कर ले जाना चाहिये। पीने का पानी केवल स्वच्छ स्थान से लिया जाना चाहिये। खाने के स्थान की सफाई कर लेना भी आवश्यक है।

अध्यापक को मार्ग में तथा पर्यटन के स्थान में सक्रिय रहना चाहिये। उसे चाहिए कि विद्यार्थियों को उन अधिक से अधिक वैज्ञानिक वस्तुओं, प्राकृतिक नियमों तथा सिद्धान्तों से परिचित कराए जो कि वहाँ सम्भव हो सकती हैं। अध्यापक को प्रत्येक विद्यार्थी से प्रश्न पूछते रहना चाहिए और उनको भी नवीन बातों के सम्बन्ध में जानकारी करने के लिए प्रश्न पूछने को उत्साहित करते रहना चाहिए। अध्यापक को यह देखते रहना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी सक्रिय रूप से कार्य कर रहा है और निरीक्षण कर रहा है। अध्यापक को चाहिये कि विद्यार्थियों में नवीनता का भाव उत्पन्न करता रहे ताकि वे पर्यटन में रुचि ले सकें। अनेक बार ऐसा होता है कि पर्यटन के स्थान से तथा वहाँ की वस्तुओं से कुछ विद्यार्थी परिचित होते हैं और इसलिये उनमें रुचि नहीं लेते। अध्यापक को चाहिए कि ऐसे विद्यार्थियों को देखी हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में भी ऐसी नवीन बातें बताने का प्रयत्न करे जिससे वे उनमें रुचि लेने लगें। किसी वस्तु के निरीक्षण के पश्चात् विद्यार्थियों से उसके सम्बन्ध में प्रश्न किए जाने चाहिए जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे उसे पूर्ण रूप से समझ गये हैं अथवा नहीं। अध्यापक को बार-बार यह प्रयत्न करना चाहिए कि कक्षा अथवा प्रयोगशाला में पढ़ाई गई वस्तु का यहाँ स्पष्टीकरण किया जा सके। इस बात में भी ध्यान देना चाहिए कि विद्यार्थियों को इतना कार्य नहीं दिया जाय जिसे वे पूरा न कर सकें। बीच-बीच में कार्य में परिवर्तन

करते रहना चाहिए ताकि विद्यार्थी नीरसता का अनुभव न करने लगें। अध्यापक को प्रत्येक विद्यार्थी का निरीक्षण कर यह देखते रहना चाहिए कि वे आवश्यक बातों को नोट कर रहे हैं।

निरीक्षण कार्य के अन्त में कुछ मनोरंजन की व्यवस्था भी रखी जा सकती है। इससे विद्यार्थियों में पर्यटन के लिए रुचि बढ़ाई जा सकती है।

पर्यटन से लौटते समय अध्यापक को देख लेना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी के पास अपनी-अपनी वस्तुएँ सुरक्षित हैं तथा विद्यालय की सामग्री भी सुरक्षित है। लौटते समय विद्यार्थियों को कुछ ऐसा कार्य देना चाहिए जिसके सम्बन्ध में उन्होंने निरीक्षण किया हो, या जो नवीन बातें उन्होंने देखी हों या जिस सामग्री को उन्होंने एकत्रित किया हो। रास्ते में भी अध्यापक विद्यार्थियों से प्रश्न पूछ सकता है तथा उनके संदेहों को दूर कर सकता है :—

पर्यटन के बाद क्या ?—पर्यटन के समाप्त होने के बाद भी अध्यापक को कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखना चाहिए जिनमें कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं।

(१) पर्यटन से लौटकर अध्यापक को विद्यार्थियों से कक्षा में निरीक्षण की गई वस्तुओं तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में वाद-विवाद करना चाहिए, उनके सम्बन्ध में प्रश्न पूछने चाहिए तथा विद्यार्थियों के कुछ सुझाव लेने चाहिए।

(२) कुछ विद्यार्थियों से देखी गई वस्तुओं के बारे में व्याख्यान देने को कहना चाहिए।

(३) प्रत्येक विद्यार्थी से पर्यटन में देखी गई वस्तुओं तथा प्राकृतिक नियमों के बारे में निबन्ध लिखने को कहना चाहिये। इनमें से कुछ अच्छे निबन्धों को विद्यालय की पत्रिका में छपवाया जा सकता है।

(४) विद्यार्थियों द्वारा एकत्रित की गई अच्छी वस्तुओं को विज्ञान संग्रहालय में रखा जा सकता है। प्रत्येक वस्तु में उस वस्तु को एकत्रित करने वाले विद्यार्थी का नाम लिख देना चाहिये।

(५) विद्यार्थियों के प्रश्नों के आधार पर अगले पर्यटन की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिनसे उन प्रश्नों के उत्तरों को सरलता से दिया जा सके।

(६) कैमरे से खींचे गये चित्रों को कक्षाध्यापन के समय अथवा प्रयोगशाला में प्रयोग करते समय दिखलाया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थी पढ़ाई गई वस्तु को सरलता से समझ सकें।

(७) इन विद्यार्थियों की सहायता से मार्ग-प्रदर्शक पत्र (Guide Sheet) बनाने में सहायता लेनी चाहिये जो कि आगे के विद्यार्थियों के लिये सहायक सिद्ध हो सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान शिक्षण में पर्यटन का महत्व पूर्ण स्थान है और वह तभी सफल होता है जब कि उसको अच्छी तरह संगठित किया जाय।

प्रश्न

(१) पर्यटन की विज्ञान शिक्षण में क्यों आवश्यकता है? समझा कर लिखिये।

(२) यदि आपको विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए पर्यटन का संगठन करना हो तो आप किस प्रकार करेंगे?

(३) पर्यटन को साधक बनाने के लिये कुछ सुझाव दीजिये।

अध्याय १२

भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा के सुधार हेतु कुछ सुझाव

(Some Suggestions for Improving Science Education in The Secondary Schools of India)

भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा का स्तर अन्य प्रगतिशील देशों के विद्यालयों के स्तर से कम होता जा रहा है। यदि हमें अपने देश की संस्कृति तथा सभ्यता की उन्नति करनी है, तो विज्ञान शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना होगा। इस वैज्ञानिक युग में किसी देश की संस्कृति तथा सभ्यता को उस देश की वैज्ञानिक प्रगति के आधार पर मापा जाता है। हमारे देश की वैज्ञानिक प्रगति तभी हो सकती है जब कि विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया जाय। तभी आज के विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थी कल को एक अच्छे वैज्ञानिक बन पावेंगे। भारतीय विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा की प्रगति के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं :—

(१) भारतीय विद्यालयों में आठवीं कक्षा के बाद कुछ विषय वैकल्पिक (Optional) हो जाते हैं। कुछ विद्यार्थी नवीं कक्षा में विज्ञान विषय छाँटते हैं, कुछ आर्टस्, कुछ व्यापार आदि। अधिकतर यह देखा

गया है कि विषयों के छाँटने के लिए एक वैज्ञानिक विधि का प्रयोग नहीं किया जाता। यदि विद्यार्थी के अभिभावुक चाहते हैं कि उसे विज्ञान विषय लेना चाहिए तो उसे विज्ञान विषय दे दिया जाता है। कुछ विद्यार्थी यह स्वप्न देखते हैं कि वे आगे चलकर डाक्टर या इन्जीनियर बनेंगे और इसीलिए विज्ञान विषय के अध्ययन से उन्हें आगे चलकर नौकरी सरलता से मिल जावेगी। इसलिए वे विज्ञान विषय छाँटते हैं। कुछ यह भी सोचते हैं कि चूँकि उनके मित्रों ने विज्ञान विषय छाँटा है इसलिए उन्हें भी विज्ञान विषय छाँटना चाहिए। इन विज्ञान विषय छाँटने वाले विद्यार्थियों में अनेकों ऐसे होते हैं जिनमें विज्ञान विषय के अध्ययन की क्षमता होती ही नहीं और वे बार-बार असफल होते हैं। इससे शिक्षा के क्षेत्र में बहुत अहित होता है। जिन विद्यार्थियों में किसी विषय के अध्ययन हेतु क्षमता ही नहीं है उन्हें उस विषय का अध्ययन कराना तो वैसा ही है जिसे अँग्रेजी में कहते हैं (To fit square pegs into round holes)। ऐसे विद्यार्थी जो विज्ञान विषय की क्षमता न रखते हुए इस विषय को अध्ययन हेतु अपनाते हैं आगे चलकर न केवल अपना अहित करते हैं बल्कि एक प्रकार से पूरे समाज का अहित करते हैं। हमें चाहिए कि विज्ञान विषय के लिए उन्हीं विद्यार्थियों को अनुमति दें जिनमें इस विषय के अध्ययन की क्षमता है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या विज्ञान विषय के अध्ययन के लिए कोई विशेष वैज्ञानिक योग्यता होती है। हम यही कहेंगे कि वैज्ञानिक योग्यता कोई एक विशेष प्रकार की योग्यता तो नहीं है परन्तु वह अनेकों योग्यताओं से मिल-जुलकर बनती है। ये विभिन्न योग्यताएँ सामान्य बुद्धि, तर्क शक्ति, वस्तु प्रेक्षण (Space) शक्ति, भाषा ज्ञान, संख्या के गणना की योग्यता, कार्य करने की लगन आदि हैं। किसी विद्यार्थी को विज्ञान विषय का अध्ययन तभी करवाया जा सकता है जबकि उसमें विज्ञान के प्रति रुचि हो तथा साथ-साथ उक्त लिखित योग्यताएँ हों।

अब प्रश्न है कि यह किस प्रकार ज्ञात किया जाय कि किसी विद्यार्थी में उक्त लिखित योग्यताएँ हैं अथवा नहीं। अध्यापक कुछ तो इन योग्यताओं को अपनी निरीक्षण शक्ति के आधार पर ज्ञात कर सकता है और कुछ परीक्षाओं के प्रयोग से ज्ञात कर सकता है। कुछ

निम्नलिखित परीक्षाओं के आधार पर उक्त लिखित योग्यताओं का मापन किया जा सकता है।

(१) शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षा
(२) गणित परीक्षा
(३) विज्ञान परीक्षा
(४) स्पेस टैस्ट (Space Test)
(५) रुचि परीक्षा
(६) प्रोग्रैसिव मैट्रिसेज (Progressive Matrices)
(७) सामूहिक आलेख पत्र की सूचनाएँ (Informations gathered from cumulative record cards)
(८) हिन्दी परीक्षा।

यदि इन उक्त लिखित परीक्षाओं तथा आलेख पत्र द्वारा यह ज्ञात हो सके कि कोई विद्यार्थी तीव्र बुद्धि है, विज्ञान तथा गणित में अच्छा है, उसकी रुचि प्रायोगात्मक कार्यों के लिये है, उसे भाषा का ज्ञान सामान्य रूप से है, उसकी वस्तु प्रेक्षण शक्ति अच्छी है, तथा वह लगन के साथ कार्य करता है तो ऐसे विद्यार्थी को विज्ञान विषय के अध्ययन के लिये अनुमति दी जानी चाहिये। इस प्रकार विद्यार्थियों को विज्ञान विषय के अध्ययन के लिये छाँटना चाहिये। यदि हम इस विधि का अनुसरण करेंगे तो तभी विद्यार्थी विज्ञान विषय में प्रगति कर पावेंगे और आगे चलकर एक अच्छे वैज्ञानिक बनेंगे। तभी समाज का भी कल्याण हो सकेगा।

(२) विज्ञान विषय की प्रगति के लिये दूसरी आवश्यकता यह है कि हम इस विषय को केवल भौतिक विज्ञान या रसायन विज्ञान अथवा जीव विज्ञान के अध्ययन तक ही सीमित न रखें। विज्ञान की समस्याएँ उन सब स्थानों में उपस्थिति रहती हैं जहाँ-जहाँ बच्चे रहते हैं। बच्चों के सम्मुख प्रतिक्षण विज्ञान सम्बन्धी समस्याएँ प्रस्तुत होती रहती हैं। हमें चाहिये कि बच्चों को उन विभिन्न समस्याओं का हल ढूँढ़ने के लिये प्रोत्साहित करते रहें। उन्हें प्रकृति में विद्यमान वस्तुओं को अपने स्वाभाविक रूप में देखने का अवसर प्रदान करें। विज्ञान बच्चों के चारों ओर है। इसको केवल पुस्तकों से नहीं पढ़ाया जा सकता है। इसके लिये बच्चों को वैज्ञानिक वस्तुओं को तथा उनके कार्यों को मूल तथा स्वाभाविक रूप में देखने का अवसर देना चाहिये। वाल्टर (Walter) महोदय ने ठीक कहा है :—"The

Place, where a plant or animal lives is just as important as the plant or aniaml.itself*" हमें चाहिये कि बालकों को खेतों में, बगीचों में, कारखानों में, आकाशवाणी के केन्द्रों में तथा अन्य विज्ञान संबंधी स्थानों में ले जावें और वहाँ वैज्ञानिक वस्तुओं का तथा वैज्ञानिक विधियों का निरीक्षण करने दें। कहने का अर्थ यह है कि विद्यालयों में पर्यटन (Excursions) को प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए। पर्यटन को पाठ्य-क्रम का एक अंग मानना चाहिए। पर्यटन का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि किसी नए स्थान में जाकर केवल मनोविनोद किया जाय बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए कि विद्यार्थी विज्ञान सम्बन्धी वस्तुओं तथा क्रियाओं का निरीक्षण कर सकें और उनके सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकें। पर्यटन के मूल्य के सम्बन्ध में हम पिछले अध्याय में पूर्ण रूप से अध्ययन कर चुके हैं।

(२) विज्ञान शिक्षा की प्रगति इस बात पर भी निर्भर करती है कि विद्यार्थी किस प्रकार की पुस्तकों से इस विषय को पढ़ते हैं। पाठ्य पुस्तकों का शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाठ्य-पुस्तकों से ही पाठ्य-वस्तु को संगठित रूप में पढ़ा जा सकता है, इन्हीं की सहायता से किसी विषय का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तथा इन्हीं की सहायता से सब विद्यालयों के कार्यों में समानता लाई जा सकती है। पाठ्य पुस्तकों से विद्यार्थी को अभिरोचन तथा प्रेरणा मिलती है और अनेकों समस्याओं को हल करने का अवसर प्राप्त होता है। सारांश में यह कहा जा सकता है कि न केवल विज्ञान विषय में बल्कि सभी विषयों में पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थियों के ज्ञान प्राप्त करने का एक मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण साधन है।

यदि विज्ञान विषय में उन्नति करनी है तो सबसे पहले हमें उन पाठ्य-पुस्तकों में सुधार करना होगा जिनसे विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करते हैं। भारतीय सरकार पाठ्य-पुस्तकों के सुधार के लिए प्रयत्न कर रही है। इसके लिए 'सैन्ट्रल ब्यूरो आफ टैक्सट-बुक रिसर्च' (Central Bureau of Text Book Research) खोला गया है। इस ब्यूरो ने पाठ्य-पुस्तकों के सुधार हेतु अनेकों सुझाव दियें हैं। इससे पाठ्य-पुस्तकों में सुधार हुआ भी है और आगे सुधार होने की आशा है। परन्तु विज्ञान की पुस्तकों में सुधार तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि बाजारों में

* Hunter, G. W. : 'Science Teaching'; American Book Co., New York, London, 1934, P. 167.

'परीक्षा प्रश्नों के हल' या 'गैस पेपरस' (Guess Papers) आदि का छपना बन्द न कर दिया जाय। विद्यार्थी इन सस्ती पुस्तकों को खरीद लेते हैं और परीक्षा के कुछ दिन पहिले उन्हें रटकर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं। हमें पहले यह विचार करना है कि विद्यार्थी इन सस्ती पुस्तकों को क्यों खरीदते हैं। कुछ कारण निम्नलिखित हैं :—

(अ) ये पुस्तकें सरल रूप में लिखी होती हैं। विद्यार्थी इन पुस्तकों में उत्तरों के रूप में प्रश्नों को पढ़ सकते हैं; इसलिए उन्हें अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है।

(ब) अच्छी पाठ्य-पुस्तकों का मूल्य भी अधिक होता है; इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी उन्हें नहीं खरीद सकता है।

(स) हमारी परीक्षा प्रणाली दोष पूर्ण है। परीक्षा में उतीर्ण होने के ऊपर इतना बल दिया जाता है कि विद्यार्थी शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा में उत्तीर्ण होना बना लेता है न कि ज्ञान प्राप्त करना। इसीलिये वह उन्हीं बातों को पढ़ने की चेष्टा करता है जो परीक्षा में पूछी जा सकती हैं। ऐसी बातें उसे 'गैस पेपरस्' अथवा 'परीक्षा प्रश्नों के हल' नामक सस्ती पुस्तकों में मिल जाती हैं। उन्हीं को पढ़कर वह परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयत्न करता है।

हमें चाहिये कि विज्ञान विषय में कुछ अच्छी पाठ्य-पुस्तकों को तथा सहायक पुस्तकों को लिखें। ये पुस्तकें रोचक होनी चाहिए तथा इनका मूल्य भी अधिक नहीं होना चाहिए। इन पुस्तकों में जटिल भाषा का प्रयोग भी नहीं होना चाहिये। आवश्यकतानुसार चित्रों का भी इनमें प्रयोग किया जाना चाहिये। हर पाठ के प्रारम्भ में तथा अन्त में कुछ प्रश्न रखे जाने चाहिये जिनके आधार पर विद्यार्थी की यह परीक्षा ली जा सके कि वह पाठ को भली भाँति समझ गया है अथवा नहीं।

हमें चाहिये कि हम अपनी परीक्षा प्रणाली में भी परिवर्तन करें। विद्यार्थी की दिन प्रतिदिन की प्रगति पर बल दिया जाना चाहिये न कि वर्ष के अन्त के एक परीक्षा फल के ऊपर। यदि विद्यार्थी को यह ज्ञात हो जाय कि उसके दिन प्रतिदिन के कार्य के आधार पर उसे सफल घोषित किया जावेगा तो वह अच्छा कार्य करने की चेष्टा करेगा और केवल उन प्रश्नों को रटने का प्रयत्न नहीं करेगा जो कि परीक्षा में पूछे जा सकते हैं। ऐसा होने पर ही वह अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करेगा।

(४) हमारे देश में विज्ञान विषय की प्रगति इसलिये भी नहीं हो रही है क्योंकि यहाँ इस विषय के अच्छे अध्यापकों का अभाव है। विज्ञान के अध्यापक को विज्ञान के सभी क्षेत्रों से कुछ न कुछ परिचित अवश्य होना चाहिये। परन्तु आजकल देखा जाता है कि भौतिक विज्ञान पढ़ाने वाला अध्यापक जीव विज्ञान की बातों को नहीं जानता या रसायन विज्ञान का अध्यापक वनस्पति विज्ञान को नहीं जानता। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी अध्यापकों को विज्ञान के सभी क्षेत्रों की जानकारी नहीं होती। वे या तो भौतिक तथा रासायनिक विज्ञान वाले होते हैं या जीव तथा वनस्पति विज्ञान वाले। हमें चाहिये कि प्रत्येक विद्यालय में तथा प्रशिक्षण महाविद्यालय में दोनों प्रकार के अध्यापकों को रखें ताकि वे अपने-अपने विषय को पूर्णरूप से पढ़ा सकें और विद्यार्थियों को सभी विषयों का सही ज्ञान प्राप्त हो सके।

(५) जैसा पहले कहा गया है कि विज्ञान विषय केवल पाठ्य पुस्तकों से नहीं सीखा जा सकता है। इसके लिये निरीक्षण तथा प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। परन्तु प्रयोगात्मक कार्यों के लिये प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। खेद की बात है कि हमारे विद्यालयों में प्रयोगशालाओं का अभाव है। हमने किसी पिछले अध्याय में इस बात का वर्णन किया है कि प्रयोगशाला विज्ञान विषय में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके अभाव में विद्यार्थी विज्ञान विषय को भली-भाँति नहीं समझ सकता है। जब तक विद्यार्थी पुस्तकों में पढ़े हुए नियमों तथा सिद्धान्तों की जाँच प्रयोगशाला में स्वयं नहीं कर लेता वह उन्हें समझने में असमर्थ रहता है। हमारे विद्यालयों में विद्यार्थियों को विज्ञान विषय बिना प्रयोग करवाये पढ़ाया जाता है और इसीलिये विद्यार्थी उसका सही ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते। जिन विद्यालयों में प्रयोगशाला है भी, वहाँ देखा जाता है कि या तो अध्यापक विज्ञान के यंत्रों को अलमारियों में बन्द रखते हैं ताकि कोई विद्यार्थी उन्हें तोड़ न सके या विद्यार्थी स्वयं ही प्रयोग करने में रुचि नहीं लेते। चूँकि जूनियर स्कूलों तथा माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोगात्मक कार्यों के लिये कोई परीक्षा नहीं होती इसलिये विद्यार्थी प्रयोग करने में रुचि ही नहीं लेते। हमें चाहिए कि प्रत्येक विद्यालय में विज्ञान विषय को प्रयोगशाला बनाने का प्रयत्न करें। सरकार इस ओर कदम उठा रही है। हमें इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए। हमें विद्यार्थी के प्रयोगात्मक कार्य को भी महत्त्व देना

चाहिए। प्रयोगात्मक कार्य के लिए भी परीक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। तभी विद्यार्थी उसमें रुचि लेंगे।

प्रयोगशाला के लिए कुछ यंत्र तो अध्यापक तथा विद्यार्थी मिलकर स्वयं ही बना सकते हैं। ये यंत्र सस्ते भी बन सकेंगे और इनके बनाने में विद्यार्थी उन्हें भली-भाँति समझ भी जावेंगे। जहाँ तक प्रयोग करने का सम्बन्ध है, सभी प्रयोग प्रयोगशाला ही में नहीं होते बल्कि कुछ प्रयोग घरों में भी किये जा सकते हैं। अध्यापक विद्यार्थियों को इस प्रकार का प्रयोग कार्य गृह-कार्य के रूप में दे सकता है।

(६) अध्यापकों को चाहिए कि विद्यार्थियों को विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों, नियमों तथा सिद्धान्तों को रटाने का प्रयत्न न करें बल्कि उनको इस उद्देश्य से पढ़ायें कि वे व्यावहारिक जीवन में आने वाली समस्याओं का हल कर सकें, स्वयं चिन्तन कर सकें और किसी भी कार्य को करने के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग कर सकें। "Many teachers think that good science education means instilling in students some facts and principles of science. They should be reminded that good science education means instilling in the students an outlook on life which would help him to make judgment free from prejudices with an open mind with objectivity and with intellectual honesty. In other words, it means that a student should acqire facility in handling problems in a sciencific way. He should do independent thinking. He should observe, plan and organise, predict, test, replan and reorganize until his research has satisfied his question. It is likely that children will take scientific attitude only when they have successfully used problem solving skills and have thus confidence in handling them. This is the key, note for the improvement of science education in our contry".*

* Rawat, D, S. : 'A Comparative Study of the Standard of General Science in certain Secondary Schools in England and in, U. P (India). For Pupils of a Chosen Age, Range'; M. A. Education Thesis, Birmingham University, England, 1956-57,

प्रश्न

(१) आप अपने विद्यालय में नवीं कक्षा में विज्ञान विषय लेने वाले विद्यार्थियों को किस प्रकार छाँटेंगे।

(२) भारतीय विद्यालयों में विज्ञान विषय की प्रगति के लिये कुछ सुझाव दीजिये।

अध्याय १३

(विज्ञान परीक्षा)

(Science Test)

प्रस्तावना—जिस प्रकार अन्य विषयों में विद्यार्थियों के विषय ज्ञान के मापन के हेतु परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार विज्ञान विषय के लिये भी परीक्षा का प्रयोग किया जाता है। आजकल विद्यालयों में जो निबन्धात्मक परीक्षाएँ (Essay type examinations) प्रयोग की जाती हैं उनमें अनेकों दोष हैं। उनमें एक अच्छी परीक्षा की विशेषताओं का अभाव है। अब पहले हम यह देखें कि एक अच्छी परीक्षा की क्या विशेषता होनी चाहिए। यदि निबन्धात्मक परीक्षा में वे विशेषताएँ नहीं हैं तो हमें उसमें सुधार करना चाहिए तथा उसकी पूर्ति किसी नवीन प्रकार की वैषयिक परीक्षा (New type objective Test) से करनी चाहिए।

अच्छी परीक्षा की विशेषताएँ—एक अच्छी परीक्षा की निम्नलिखित ६ विशेषताएँ होती हैं :—

(१) एक अच्छी परीक्षा को विश्वसनीय (Reliable) होना चाहिए अर्थात् परीक्षा को ऐसा होना चाहिए ताकि एक ही उत्तर पुस्तिका में विभिन्न परीक्षक एक निश्चित अंक प्रदान करें अथवा एक ही विद्यार्थी की उत्तर-पुस्तिका में विभिन्न समयों में एक ही परीक्षक एक समान अंक प्रदान करे। प्रचलित निबन्धात्मक

परीक्षाओं में यह विशेषता नहीं पाई जाती। ऐसी परीक्षा में एक ही प्रश्न के उत्तर के लिए भिन्न-भिन्न परीक्षक भिन्न-भिन्न अङ्क प्रदान करते हैं।

(२) एक अच्छी परीक्षा को वैध (Valid) होना चाहिये; अर्थात् उसे शुद्धता और साधकता के साथ उसी योग्यता अथवा उसी उद्देश्य का मापन करना चाहिए जिसके हेतु उसे बनाया गया है। परीक्षा-पत्र को विद्यार्थियों के पाठ्य क्रम पर आधारित होना चाहिये। निबन्धात्मक परीक्षा के प्रश्नों में वैधता का अभाव होता है। प्रश्न के उत्तर इतने लम्बे होते हैं कि यह ज्ञात नहीं किया जा सकता है कि वह किस उद्देश्य का मापन कर रहा है।

(३) परीक्षा की तीसरी विशेषता यह होनी चाहिये कि उसे वैषयिक (Objective) होना चाहिये; अर्थात् किसी प्रश्न के उत्तर के लिए वैषयिक ढंग से अंक प्रदान किये जाने चाहिए तथा प्रश्नों का निर्माण वैषयिक ढङ्ग से होना चाहिये। एक प्रश्न के एक से अधिक उत्तर नहीं होने चाहिए। प्रश्नों को संक्षेप में होना चाहिये तथा उनके उत्तरों को भी संक्षेप में होना चाहिए। प्रचलित निबन्धात्मक परीक्षा में प्रश्न भी लम्बे होते हैं तथा उनके उत्तर भी लम्बे होते हैं। एक प्रश्न का उत्तर अनेकों प्रकार से दिया जा सकता है। उनमें अंक भी वैषयिक ढंग से प्रदान नहीं किये जा सकते हैं।

(४) एक परीक्षा को व्यापक (Comprehensive) होना चाहिए; अर्थात् उसके प्रश्नों को पूरे पाठ्य-क्रम तथा सम्पूर्ण पाठ्य-पुस्तक पर आधारित होना चाहिये। यह तभी सम्भव है जब परीक्षा में छोटे-छोटे अनेकों प्रश्न रखे जावें। निबन्धात्मक परीक्षा में केवल आठ-दस प्रश्न होते हैं जो कि पाठ्य-क्रम के केवल कुछ निश्चित भागों से पूछे जाते हैं। ऐसे प्रश्नों से विद्यार्थी के पूर्ण ज्ञान का मापन नहीं हो पाता बल्कि केवल कुछ अंश का मापन हो पाता है।

(५) एक अच्छी परीक्षा को विभेदकारी (Discriminating) होना चाहिये; अर्थात् उसे अच्छे तथा कमजोर विद्यार्थियों में विभेद करने में समर्थ होना चाहिए। निबन्धात्मक परीक्षा में इस विशेषता का भी अभाव होता है। कुछ विद्यार्थी अनुमान लगाकर

कुछ निश्चित बातें पढ़कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं और कुछ अच्छे विद्यार्थी जो पूरे पाठ्यक्रम का समझ-बूझकर अध्ययन करते हैं ऐसी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं जिसमें उनके ज्ञान के केवल कुछ ही भाग के आधार पर प्रश्न पूछे जाते हैं।

(६) एक अच्छी परीक्षा को प्रयोग करने में तथा उसमें अंक प्रदान करने में सरलता होनी चाहिए ; अर्थात् परीक्षा को उपयोगी (Usable) होना चाहिए। निबन्धात्मक परीक्षाओं को हल करने में विद्यार्थी को अधिक लिखने को आवश्यकता होती है तथा समय भी अधिक लगता है। उनमें अंक प्रदान करना भी एक कठिन कार्य है तथा उनमें समय भी अधिक व्यय होता है।

विज्ञान विषय के लिए कैसी परीक्षा हो ?—

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि निबन्धात्मक परीक्षाओं में एक अच्छी परीक्षा की विशेषताओं का अभाव होता है। हमें चाहिये कि उनमें सुधार करें। निबन्धात्मक परीक्षाओं में क्या सुधार किए जाने चाहिये, इसके लिये पाठक लेखक की पुस्तक 'मानसिक परीक्षाएँ' पढ़ सकते हैं। हम यहाँ केवल इतना कहेंगे कि निबन्धात्मक परीक्षाओं को परीक्षा प्रणाली से नहीं हटाया जा सकता है। इन परीक्षाओं की सहायता से विद्यार्थी की अभिव्यक्ति का सही मापन हो सकता है। उसके विचारों के संगठन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। निबन्धात्मक परीक्षाओं में विद्यार्थी को अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता रहती है। इससे यह ज्ञात हो सकता है कि विद्यार्थी चिन्तन में कहाँ अशुद्धि करता है। विद्यार्थी के लिखने की गति तथा शुद्धता का भी ज्ञान निबन्धात्मक परीक्षाओं से ही हो सकता है। निबन्धात्मक परीक्षा में सुधार करने के लिये अनेकों सुझाव हो सकते हैं। यहाँ हम इस सम्बन्ध में केवल दो शब्द कहेंगे। निबन्धात्मक परीक्षाओं के प्रश्नों को वैषयिक होना चाहिये। उन्हें बनाने के पूर्व यह निश्चित कर लेना चाहिये कि वे किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करें। उन्हें संक्षेप रूप में बनाना चाहिये तथा उनके उत्तर भी संक्षेप रूप में होने चाहिये। यदि प्रश्नों के उत्तर कुछ वाक्यों में हों तो उनमें अंक प्रदान करने के लिए कुछ नियम निर्धारित कर लेने चाहिये। परीक्षा में प्रश्न पूरे पाठ्य-क्रम पर आधारित होने चाहिये तथा उन्हें कठिनाई के क्रम में रखा जाना चाहिये। प्रश्नों को इस प्रकार का नही होना चाहिये जिससे कि विद्यार्थी को केवल रट कर लिखने की योग्यता का मापन

हो सके बल्कि ऐसा होना चाहिये जिससे विद्यार्थी की उच्च मानसिक योग्यताओं का मापन हो सके। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए यह निर्धारित नहीं किया जाना चाहिये कि जो विद्यार्थी ३३% प्रतिशत अथवा कोई निश्चित प्रतिशत अंक प्राप्त करेगा वह उत्तीर्ण समझा जावेगा बल्कि ऐसा होना चाहिए कि पहले विद्यार्थियों के प्राप्ताङ्कों को प्रतिशतीय प्राप्ताङ्कों (Percentile Scores) में परिवर्तित कर लेना चाहिये और तब यह निर्धारित करना चाहिये कि कितने प्रतिशतीय प्राप्तांक तक अंक पाने वाले विद्यार्थी उत्तीर्ण कहे जावेंगे। हम यहाँ इन सुझावों का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं करेंगे। यहाँ एक सुझाव यह दिया जावेगा कि विज्ञान विषय में दो प्रकार की परीक्षाओं का प्रयोग किया जाना चाहिये। एक तो निबन्धात्मक परीक्षा का तथा दूसरा नवीन प्रकार की वैषयिक परीक्षा का, जिसे हम साफल्य परीक्षा (Achievement Test) कहेंगे। विज्ञान विषय में जो परीक्षाएँ अध्यापक बनाते हैं उन्हें अध्यापक निर्मित परीक्षा कहते हैं और जो परीक्षाएं मनोवैज्ञानिक अथवा परीक्षा निर्माता इस प्रकार बनाते हैं ताकि उन्हें किसी भी विद्यालय केलिए प्रयोग किया जा सके उन्हें प्रमापीकृत साफल्य परीक्षा (Standardized Achievement Test) कहते हैं। ऐसी परीक्षा में सामान्य-स्तर (Norms) ज्ञात रहते हैं जिनकी सहायता से विभिन्न विद्यार्थियों के विषय सम्बन्धी ज्ञान की तुलना की जा सकती है। अध्यापक निर्मित परीक्षा तथा प्रमापीकृत परीक्षा के अपने-अपने लाभ तथा दोष हैं। हम इस स्थान पर उनका विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं करेंगे। हमें केवल इतना जान लेना चाहिये कि जिस परीक्षा को अध्यापक अपनी कक्षा के लिये बनाता है वह उस कक्षा के विद्यार्थियों के विषय ज्ञान का मापन करने हेतु उपयोगी होतो है क्योंकि ऐसी परीक्षा का निर्माण करने में परीक्षक उन उद्देश्यों को ध्यान में रखता है जिन उद्देश्यों के आधार पर विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है। प्रमापीकृत परीक्षा में यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक विद्यालय के विद्यार्थियों के लिये उन उद्देश्यों का मापन कर सके जिनके आधार पर उनको पढ़ाया गया हो। फिर भी यदि अध्यापक अपने विद्यालय के विद्यार्थियों की तुलना दूसरे विद्यालयों के विद्यार्थियों से करना चाहता है तो उसे प्रमापीकृत परीक्षा का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। अध्यापक निर्मित परीक्षा के सामान्य-स्तर केवल अपनी कक्षा तक सीमित रहते हैं क्योंकि उनका प्रयोग विभिन्न विद्यालयों में न करके

केवल एक ही कक्षा में किया जाता है। इस अध्याय में हम अब इस बात का वर्णन करेंगे कि विज्ञान विषय में साफल्य परीक्षा का निर्माण कैसे किया जा सकता है तथा उसका प्रमापीकरण किस प्रकार किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए विभिन्न पदों (Steps) को ध्यान में रखा जाता है। यदि अध्यापक इन पदों का अनुसरण करें तो उनके द्वारा बनाई गई परीक्षा भी एक अच्छी परीक्षा बन सकती है। परीक्षा का प्रमापीकरण करने में पहले प्रथम निर्माण-परीक्षा (First try-out test) बनाई जाती है और तब उसमें सुधार करके अन्तिम परीक्षा (Final Test) बनाई जाती है और तब उसके सामान्य-स्तर ज्ञात करके उसे प्रमापीकृत किया जाता है। अध्यापक द्वारा बनाई गई प्रथम निर्माण-परीक्षा ही अन्तिम परीक्षा होगी क्योंकि वह उस परीक्षा को दुबारा उसी कक्षा में प्रयोग करके उसमें सुधार नहीं कर सकता। प्रमापीकृत परीक्षा में प्रथम निर्माण-परीक्षा के बनाने के पश्चात् उसे एक दूसरे नमूने (Sample) में प्रयोग किया जाता है परन्तु अध्यापक निर्मित परीक्षा के लिए यह सम्भव नहीं है।

अब हम देखें कि विज्ञान विषय की प्रमापीकृत साफल्य परीक्षा का क्या अर्थ है तथा उसका किस प्रकार निर्माण किया जाता है और प्रमापीकरण किया जाता है।

साफल्य परीक्षा का अर्थ—साफल्य परीक्षा (Achievement Test) द्वारा अध्यापक यह ज्ञात कर लेता है कि किसी विद्यार्थी ने विषय संबंधी ज्ञान पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया है अथवा नहीं। साफल्य परीक्षा द्वारा बालकों के विषय ज्ञान की तुलना की जा सकती है। साफल्य परीक्षा में हम आपेक्षिक सफलता (relative achievement) पर ध्यान देते हैं न कि अकेवल सफलता (absolute achievement) पर। यदि एक विद्यार्थी १० अंक प्राप्त करता है और दूसरा २० अंक प्राप्त करता है तो हम कहेंगे पहिला विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थी से योग्यता में १० अंक कम है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये कोई निश्चित अंक पहिले से ही निर्धारित नहीं किये जाते हैं।

विज्ञान विषय में साफल्य परीक्षा का निर्माण तथा प्रमापीकरण—विज्ञान विषय में साफल्य परीक्षा का निर्माण करने के लिये निम्न-लिखित पदों (Steps) का अनुसरण किया जाता है :—

(१) सबसे पहिले हम कुछ उद्देश्य निर्धारित कर लेते हैं जिनका कि हम अपनी परीक्षा द्वारा मापन करना चाहते हैं। एक परीक्षा से

केवल दो, तीन या चार उद्देश्यों का मापन करना उपयुक्त है। मान लीजिये हमें एक विज्ञान विषय की परीक्षा का निर्माण करना है तो हम उससे निम्नलिखित उद्देश्यों का मापन कर सकते हैं या कोई तीन चार अन्य उद्देश्यो का मापन कर सकते हैं।

(अ) विद्यार्थी व्यवहारिक जीवन में आने वाली विज्ञान सम्बन्धी नवीन समस्याओं का हल कर सकता है।

(ब) वह सही तर्क-वितर्क कर सकता है।

(स) वह विज्ञान सम्बन्धो इकाइयों तथा पदों का सही प्रयोग कर सकता है।

(२) अब यह विचार किया जाता है कि विद्यार्थी को किसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर क्यों पढ़ाया जाता है और यह कब ज्ञात हो सकता है कि उस उद्देश्य की पूर्ति हो गई है अथवा नहीं। किसी विद्यार्थी को किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर पढ़ाने से तात्पर्य है, वह उस ज्ञान को ग्रहण कर ले जो उस उद्देश्य के अन्तर्गत आता है। ऐसा होने पर उसके व्यवहार में परिवर्तन (behaviour change) आ जाता है। जिस बालक ने इकाइयों के उद्देश्य की विज्ञान में पूर्ति करली है सम्भवतः वह छोटी इकाइयों को बड़ी इकाइयों में बदल सकता है; लम्बाई, क्षेत्र फल, भार, ताप, घनत्व, विद्युत धारा, तापक्रम आदि की ठीक इकाइयों को जीवन में प्रयोग कर सकता है, आदि। अर्थात् उसके व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन (expected change in behaviour) हो गया है और इस प्रकार हम समझ लेते हैं कि इस उद्देश्य की पूर्ति हो गई या बालक ने वह उद्देश्य ग्रहण कर लिया है। यदि विद्यार्थी विज्ञान सम्बन्धी समस्याओं को सही प्रकार से हल कर सकता है तो हम कहते हैं कि हमारे इस उद्देश्य की पूर्ति होगई है; अर्थात् विद्यार्थी के व्यवहार में प्रत्याशित परिवर्तन हो गया है। इसीलिये उद्देश्य निर्धारित करने के पश्चात् साफल्य परीक्षा के निर्धारण में दूसरा पद यह होता है कि उद्देश्यों की इस प्रकार व्याख्या की जाती है कि उस बालक के व्यवहार में कौन-कौन से प्रत्याशित परिवर्तन हो जाने चाहिए जिससे हम कह सकें कि बालक ने उद्देश्य को ग्रहण (achieve) कर लिया है। इन्हीं व्यवहार सम्बन्धी व्याख्याओं को जो कि किसी बालक के उद्देश्य पूर्ति पश्चात् व्यवहार के नमूने को बतलाती हैं 'व्यवहार प्रतिरूप' (behaviour pattern) कहते हैं। इस प्रकार एक उद्देश्य को अनेकों व्यवहार प्रतिरूपों (behaviour patterns) में विच्छेदित किया जा

सकता है, जैसा कि अभी ऊपर उदाहरणार्थ कहा गया है। हर उद्देश्य के लिये अलग-अलग व्यवहार प्रतिरूपों की व्याख्या की जाती है।

(३) परीक्षा निर्माण करने वाले को उस पूरे पाठ्यक्रम (Curriculum) तथा उन पाठ्य-पुस्तकों (Text books) का विश्लेषण (analysis) करना चाहिए जोकि उस कक्षा में प्रयोग होती है, जिसके लिये वह परीक्षा बनाई जा रही है। कभी-कभी अध्यापकों द्वारा बनाये गये अनेकों वर्षों के प्रश्न पत्रों का विश्लेषण करना भी सहायक सिद्ध होता है। इन सब बातों से हम वैज्ञानिक रूप से वही पाठ्य-वस्तु अपनी परीक्षा में पूछेंगे जो उनके पाठ्य-क्रम के अनुकूल होगी तथा विभिन्न प्रश्नों में अध्यापकों की राय के अनुसार बल (weight) दे पायेंगे। इससे यह भी होगा कि हम पाठ्य-क्रम सम्बन्धी हर प्रसंग (topic) को परीक्षा-पत्र में रख सकेंगे।

(४) इतना कर लेने के पश्चात् प्रश्न उठता है कि प्रश्न (items) या पद किस विधि से बनाये जायँ और किस प्रकार के बनाये जायँ। प्रश्न बनाने के लिये हम पहले एक उद्देश्य को ध्यान में रखते हैं, फिर उसके एक व्यवहार प्रतिरूप व पाठ्य-वस्तु के विश्लेषण को ध्यान में रखते हैं और तब इस सम्बन्ध में जितने प्रश्न बन सकें, बनाते हैं। मान लीजिए, हमारा उद्देश्य बालकों को विज्ञान की इकाइयों का ज्ञान प्राप्त कराना है। व्याख्या करने पर इसका एक व्यवहार प्रतिरूप हो सकता है कि बालक एक प्रकार की इकाई को दूसरी इकाई में बदल सकता है। पाठ्य-क्रम का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उनके पाठ्य-क्रम में ताप, तापक्रम, घनत्व, से० मी०, ग्राम, वर्ग फीट, पाउन्ड, मिनट, सैकिन्ड आदि इकाइयाँ हैं। यदि ऐसा है तो हम बच्चों से यह पूछ सकते हैं :—

(१) १ से० मी० कितने इंच के बराबर होगा ?

(२) १० सेन्टीग्रेड तापक्रम फारनहाइट इकाई मे कितना हुआ ?

आदि......

जब इस व्यवहार प्रतिरूप सम्बन्धी सब प्रश्न पाठ्य-क्रम से पूछ लिये जावें तो फिर इसी उद्देश्य के अन्य व्यवहार प्रतिरूप सम्बन्धी प्रश्न पाठ्य-क्रम से पूछे जाते हैं। जब एक उद्देश्य सम्बन्धी सब प्रश्न समाप्त हो जाते हैं; तब इसी प्रकार दूसरे, तीसरे आदि उद्देश्यों पर प्रश्न बनाये जाते हैं।

अब यह देखना है कि प्रश्न किस प्रकार के होने चाहिये। प्रश्न

सदा छोटे तथा वैषयिक (objective) होने चाहिये तथा उनका उत्तर भी संक्षेप में ही होना चाहिये। हर प्रश्न का केवल एक ही उत्तर होना चाहिये। प्रश्न निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं :—

(क) बहुनिर्वचन रूप (Multiple choice form)

(ख) एकान्तर प्रत्युत्तर रूप (Alternate response form)

(ग) प्रश्न को सही उत्तर से मिलाना (Matching form)

(घ) साधारण प्रत्यास्मरण रूप (Simple recall form)

(ङ) रिक्त स्थान पूर्तिरूप (Completion form)

इन उक्त रूपों में एकान्तर प्रत्युत्तर रूपों को अधिकाँश प्रयोग नहीं किया जाता है, क्योंकि उनमें उत्तरों को अनुमान (guess) से लिखने की सम्भावना अधिक होती है। नीचे हर प्रकार के प्रश्नों का एक-एक उदाहरण दिया गया है। ये उदाहरण लेखक ने अपने बनाए हुए विज्ञान परीक्षा में से दिये हैं जिसे इस अध्याय के अन्त में दिया गया है।*

(क) **बहुनिर्वचन** रूप (Multiple choice form) का उदाहरण :

आदेश--नीचे लिखे प्रश्न के पाँच उत्तर दिये गये हैं, तुम सही उत्तर छाँट कर उसके सामने लिखे अक्षर को बाईं ओर दिये हुए कोष्टक में लिखो।

प्रश्न—नीचे लिखे द्रवों में से कौनसा नीले लिटमस को लाल करता है ?

(क) (अ) नीबू का रस, (ब) सोडा वाटर, (स) अल्कोहल (द) कास्टिक सोडा का घोल (ध) सोडियम हाइड्रोआक्साइड का घोल।

(ख) **एकान्तर प्रत्युत्तर रूप** (Alternate response form) : इस रूप को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(अ) नियमित सत्य-असत्य (regular true and false)

(ब) अपरिवर्तित सत्य-असत्य (modified true and false)।

(नियमित अत्य-असत्य का उदाहरण)

आदेश—नीचे दिया हुआ कथन यदि सत्य है तो उसके सामने लिखे हुए 'स' के चारों ओर घेरा बना दो, यदि गलत है तो अ के चारों

---

* Rawat, D. S. : 'A comparative study of the standard of General Science in certain Secondary Schools of England and India (U. P.) for pupil's of chosen Age Range, M. A. Education Thesis, Birmingham University England, 1956-57.

ओर घेरा बना दो। अन्दाज मत लगाओ। अगर तुम्हें अपने उत्तर पर पूरा विश्वास, नहीं है तो उसे छोड़ दो अन्यथा गलती करने पर अंक कट जावेंगे।

'स' 'अ' द्रव में गैस घुल जाती है।

(अपरिवर्तित सत्य-असत्य का उदाहरण)

आदेश—नीचे दिया हुआ कथन यदि सत्य है तो उसके सामने लिखे 'स' के चारों ओर घेरा लगा दो, यदि असत्य है तो 'अ' के चारों ओर घेरा लगा दो। असत्य होने पर दो काम और करो। एक तो पहले कोष्ठक में वह शब्द लिखो जिसके कारण यह कथन गलत होरहा है। दूसरा, दूसरे कोष्ठक में वह शब्द लिखो जिसके कारण यह कथन सत्य बन सकता है।

'स' 'अ' सूर्य पश्चिम से उदय होता है।

(ग) **प्रश्न को सही उत्तर से मिलाना** (Matching form) :

आदेश—नीचे दो स्तम्भ (columns) दिये हैं। प्रथम स्तम्भ के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दूसरे स्तम्भ में दिया गया है। तुम्हें सही उत्तर ढूँढ़ना है और उत्तर के कोष्ठक में लिखे हुए अक्षर को प्रथम स्तम्भ के बाँई ओर सामने वाले खाली कोष्ठकों में लिखना है।

निम्नलिखित को किन इकाइयों में नापते हैं ?

( )	(१) घनत्व	(क) फुट पौंड
( )	(२) ताप की शक्ति	(ख) सेन्टीमीटर प्रतिसैकिंड प्रति-सैकिंड
( )	(३) गुप्त ताप	(ग) ऐम्पीयर
( )	(४) कार्य	(घ) वोल्ट
( )	(५) ताप की मात्रा	(ङ) डाइन
( )	(६) विभव अन्तर	(च) फुट पौंड प्रति सैकिंड
( )	(७) बल	(छ) ग्राम प्रति घन सेन्टीमीटर
( )	(८) शक्ति	(ज) कैलोरीज
( )	(९) दबाव	(झ) डाइप्टर (Dioptre)
( )	(१०) विद्युत धारा	(ञ) कैलोरीज प्रति ग्राम
		(ट) पौन्ड भार
		(ठ) पौन्ड भार प्रति वर्ग इन्च

(घ) **साधारण प्रत्यास्मरण रूप** (simple recall form) :

आदेश—नीचे के प्रश्न का उत्तर दिये हुए कोष्ठक में लिखो।

तापक्रम को किस यंत्र से नापते हैं ?

( )

(ङ) **रिक्त स्थान पूर्ति रूप** (completion form) :

आदेश—नीचे लिखे प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति करो।

जिस यंत्र से············नापते हैं उसे बैरोमीटर कहते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि प्रश्न कई प्रकार के हो सकते हैं। इनमें एकान्तर प्रत्युत्तर रूप उपयोगी नहीं है। यदि इसे प्रयोग किया भी जाय तो हमें अंक प्रदान करने के लिए शुद्धि सूत्र (correction formula) का प्रयोग करना चाहिए। शुद्धि सूत्र निम्नलिखित है :—

$$S = R - \frac{W}{N-1}$$

यहाँ S = शुद्ध किए हुए अंक

R = सही उत्तरों की संख्या

W = गलत उत्तरों की संख्या

N = अनुमानों की संख्या (जैसे कि सत्य-असत्य प्रश्नों में दो अनुमान होते हैं, (१) सत्य और (२) असत्य। मान लीजिये हमारे पास ४० सत्य असत्य प्रश्न हैं। एक बालक इनमें से ३० सही करता है और १० गलत। यदि एक प्रश्न १ अंक का हो तो उस बालक को ३० अंक नहीं दिये जावेंगे बल्कि सूत्र द्वारा उसके अंक ज्ञात किये जावेंगे।

$$S = ३० - \frac{१०}{२-१}$$

$$= ३० - १०$$

$$= २०$$

उस बालक को २० अंक मिलेंगे।

इस सूत्र का उपयोग उन बहुनिर्वचन प्रश्नों में भी किया जाता है, जिनमें प्रत्येक प्रश्न के चार या चार से कम उत्तर दिये जाते हैं। यदि हम एक प्रश्न के तीन उत्तर देते हैं तो ऊपर के सूत्र का प्रयोग करते समय 'N' का मान ३ लिखेंगे।

अन्य प्रकार के प्रश्नों में जिनके ऊपर उदाहरण दिये हैं अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

आरम्भ में हमें जितने सम्भव प्रश्न बन सकें बनाने चाहिये। यह भी नहीं सोचना चाहिए कि कितने बहुनिर्वचन रूप के, कितने प्रत्यास्मरण रूप के, आदि प्रश्न बनाने चाहिये। जिस प्रसंग (topic) या

कथन (statement) के लिये जो रूप उचित सिद्ध हो उसी रूप में प्रश्न बनाने चाहिये। यह तो आखीर में देखा जावेगा कि एक रूप (form) के कितने प्रश्न बने। यदि बहुनिर्वचन या अन्य रूप के एक परीक्षा-पत्र में केवल चार ही प्रश्न बन पाए तो तब हम उन्हें दूसरे रूप में बनाने का प्रयत्न करते हैं। पहली बार कम से कम २०० प्रश्न बनाने चाहिये।

५—अब इन प्रश्नों को मनोवैज्ञानिकों तथा विज्ञान विषय के अध्यापकों के पास भेजना चाहिये और उनसे यह राय लेनी चाहिये कि वे प्रश्न किन-किन उद्देश्यों का मापन कर सकते हैं। यदि विषय के विशेषज्ञ (expert) इस बात से सहमत हों कि हमारे प्रश्न उन्हीं उद्देश्यों का मापन कर रहे हैं जिनके हेतु वे बनाये गए हैं, तभी हम उन प्रश्नों को अपनी परीक्षा में रखते हैं। ऐसे प्रश्न जो उन उद्देश्यों का मापन नहीं करते हैं या तो हटा दिये जाते है या उनमें शुद्धि की जाती है।

६—इस प्रकार मान लीजिये हमारे पास १५० प्रश्न रह गये जो तीन उद्देश्यों का मापन करने के लिये पर्याप्त हैं। इन प्रश्नों द्वारा बनी हुई परीक्षा का नाम प्रथम निर्माण-परीक्षा (First try-out test) कहेंगे। अभी अंतिम परीक्षा (Final test) नहीं बनी। प्रथम निर्माण परीक्षा में एक रूप (form) के प्रश्न एक साथ रखे जाते हैं; जैसे—बहुनिर्वचन एक साथ, प्रत्यास्मरण एक साथ आदि। प्रत्येक रूप के प्रश्नों में प्रश्न हल करने के लिये आरम्भ में आदेश (Directions) दे दिये जाते हैं। ये आदेश स्पष्ट होने चाहिये ताकि परीक्षार्थियों को परीक्षा हल करने में असुविधा न हो। परीक्षा में शब्दों को स्थूल (bold) तथा स्पष्ट (distinct) होना चाहिये। किसी प्रकार की गलतियाँ नहीं होनी चाहिए अन्यथा परीक्षा की वैधता (validity) में प्रभाव पड़ेगा।

परीक्षा के सबसे ऊपरी पेज (Title page) में परीक्षा के हल करने के हेतु साधारण आदेश (General directions) दे देने चाहिये; जैसे—

(क) यह प्रश्न-पत्र (test) तीन भागों में विभक्त है।

(ख) तुम्हें हर भाग के प्रश्न हल करने आवश्यक हैं।

(ग) हर भाग में जितने अधिक प्रश्न हल कर सकते हो, करो। तुमसे आशा है कि हर भाग में जितने अधिक से अधिक प्रश्न हल कर सकते हो, करोगे।

(घ) एक भाग में प्रश्न हल करने पर तुरन्त दूसरे भाग में कार्य आरम्भ कर दो।

(ङ) अनुमान से उत्तर न लिखो अन्यथा तुम्हारे अंक कट जावेंगे।

(च) पहले सरल प्रश्नों को करो तब कठिन प्रश्नों को। यदि पहला प्रश्न तुम्हें न आवे तो दूसरे को करो, फिर तीसरे को करो आदि; तब बाद में फिर छोड़े हुए पहले प्रश्नो को करो।

(छ) किसी उत्तर को बदलना हो तो रबड़ से मिटाकर लिखो या उसे काटकर दुबारा लिखो। आदि, आदि.........

इस प्रथम निर्माण-परीक्षा (First try-out test) के हल करने के लिये समय निश्चित नहीं किया जाता है। इस परीक्षा में यह देखा जाता है कि कितने समय में करीब ८० या ९० प्रतिशत परीक्षार्थी परीक्षा को हल कर सकते हैं। इसका वर्णन अभी आगे आवेगा।

७—अब प्रथम निर्माण-परीक्षा (First try-out test) एक ऐसे समूह में प्रयोग की जाती है जिसमें काफी विचरणशीलता (variability) हो। इसका अर्थ यह है कि उस समूह में उच्च योग्यता, सामान्य योग्यता तथा निम्न योग्यता सभी प्रकार के विद्यार्थी सम्मिलित हों। ये विद्यार्थी लगभग संख्या में ३०० होने चाहिए। इनको भिन्न-भिन्न स्कूलों से छाँटना चाहिए। विद्यार्थी उसी कक्षा के होने चाहिये जिसके लिए यह परीक्षा बनाई गई है। कभी-कभी परीक्षा इस कक्षा से एक छोटी कक्षा तथा एक बड़ी कक्षा में भी प्रयोग की जाती है। इसका क्या उपयोग है, यह अभी आगे बताया जावेगा।

८—परीक्षा देते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सब परीक्षार्थियों के लिये भौतिक दशाएँ (physical conditions) एकसी हों। बैठने व लिखने के लिए एक ही प्रकार की सुविधा होनी चाहिये। परीक्षार्थियों को आदेश दे दिया जाता है कि जो शब्द या वाक्य उन्हें कठिन मालूम होते हैं या गलत मालूम होते हैं उनमें निशान लगादें। इस प्रकार की बातों में परीक्षा निर्माता (test constructor) अन्तिम परीक्षा बनाते समय विचार कर सकता है। कक्षा का निरीक्षण सावधानी से किया जाता है ताकि परीक्षार्थी नकल न कर सकें, क्योंकि ऐसी परीक्षाओं में नकल करने में सुविधा होती है। परीक्षा के समाप्त होने पर परीक्षक टैस्ट (test) को इकट्ठा कर लेता है। परीक्षक यह भी ज्ञात कर लेता है कि ८० प्रतिशत परीक्षार्थियों ने परीक्षा को हल करने के लिये कितना समय लिया। मान लीजिये यह समय ७५ मिनट आता है

जिसमें परीक्षार्थी १५० प्रश्न वाले प्रश्न-पत्र को हल करते हैं। इसका तात्पर्य हुआ कि ऐसे एक प्रश्न को हल करने का समय आधा मिनट हुआ। इससे हमको अन्तिम परीक्षा का समय निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

९—अब इन टैस्टों में अङ्क प्रदान किये जाते हैं। अंक प्रदान करने के लिये कुंजी (key) का प्रयोग किया जाता है। यह कुंजी एक तो साधारण रूप की होती है जिसमें कि एक खाली टैस्ट में सही उत्तर भर लिए जाते हैं और उत्तरों वाले टैस्ट के भाग को काट लिया जाता है। यह तब सम्भव है जबकि टैस्ट के सब उत्तर एक स्तम्भ (column) में हों। इस कुंजी (key) को किसी भी टैस्ट के सामने लगा देने पर और इसमें लिखे हुए सही उत्तरों का उस विद्यार्थी द्वारा लिखे हुए उत्तर से मिलान करने पर अंक प्रदान करने में सरलता हो जाती है। ऐसा करने में बहुत कम समय व्यय होता है क्योंकि इसके प्रश्नों का केवल एक ही सही उत्तर होता है जिसके लिए अंक निश्चित होते हैं और उत्तरों को जाँच के लिये कुंजी प्राप्त होती है।

कभी-कभी स्टैन्सिल कुंजी (Stencil key) का भी प्रयोग किया जाता है। यह तब बनाई जाती है जबकि उत्तर टैस्ट के पृष्ठों में एक सीधे स्तम्भ (column) में न होने के बजाय पृष्ठों के किसी भी स्थान में हो सकते हैं। ऐसी अवस्था में एक टैस्ट के उन-उन भागों को काट लिया जाता है, जहाँ-जहाँ उत्तर रखने के स्थान होते हैं। इन कटे भागों के ऊपरी सिरों में सही उत्तर लिखे जाते हैं। यदि इस स्टैन्सिल कुंजी को हम किसी विद्यार्थी के टैस्ट के ऊपर रखें तो हमें इस कुंजी के कटे भागों से उसके उत्तर स्पष्ट दिखाई देंगे। अब हम इस कुंजी के सिरों पर लिखे उत्तरों का उस विद्यार्थी के उत्तरों से मिलान कर सकते हैं और इस प्रकार अंक प्रदान कर सकते हैं। अंक प्रदान करने में यदि आवश्यकता हो तो शुद्धि-सूत्र का प्रयोग करना चाहिये जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

१०—जब सब परीक्षाओं में अंक प्रदान कर दिये जाते हैं तो उन अंकों के मध्यमान (Average) तथा प्रमाप विचलन (Standard deviation) ज्ञात कर लिये जाते हैं। जैसे अभी पहले कहा गया था कि इस परीक्षा का निश्चित कक्षा से एक छोटी तथा एक बड़ी कक्षा

में भी प्रयोग करना उचित होता है। यदि हमने ऐसा किया है तो हर कक्षा के अंकों का मध्यमान अलग-अलग ज्ञात कर लेना चाहिये। यहाँ हमको यह देखना चाहिये कि छोटी कक्षा का मध्यमान निश्चित कक्षा के मध्यमान से कम होना चाहिये तथा बड़ी कक्षा के अङ्कों का मध्यमान निश्चित कक्षा के मध्यमान से अधिक होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो हमारी परीक्षा वैध (valid) नहीं कहलाई जावेगी। इसका आगे भी वर्णन किया गया है। अब इन भिन्न-भिन्न कक्षाओं के अङ्को का ग्राफ खींच लेना चाहिये। यदि यह ग्राफ एक सामान्य वक्र (normal curve) के रूप में आये तो हमारी परीक्षा अच्छी मानी जावेगी। जिस कक्षा के लिए परीक्षा बनाई गई है, उस कक्षा के विद्यार्थियों का मध्यमान ५०% होना चाहिए, तभी परीक्षा अच्छी कहलाई जावेगी। यदि मध्यमान २०% आता है तो परीक्षा उस स्तर के लिये कठिन मानी जावेगी। यदि मध्यमान ८०% आता है तो परीक्षा उस स्तर के लिये अति सरल मानी जावेगी।

११—अब इस प्रथम निर्माण परीक्षा की वैधता (validity) ज्ञात की जाती है। यहाँ पर संक्षेप में वैधता का वर्णन करना अनुचित न होगा ताकि पाठकों को उसकी उपयोगिता ज्ञात हो जाय।

हम चाहते हैं कि हमारी परीक्षा शुद्धता के साथ और साधकता (effectiueness) के साथ उस योग्यता का मापन कर सके, जिसके हेतु उसका निर्माण किया गया है। अङ्गरेजी में वैधता की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"Validityof the test is thee ffectiveness with which measures what it intends to measure।' यदि परीक्षा शुद्धता के साथ उस योग्यता का मापन नहीं करती जिसके लिये उसका निर्माण किया गया है, तो वह व्यर्थ है।

वैधता चार प्रकार की होती है :—

(अ) **तर्क-संगत वैधता** (Lolgical validity) :—इसका अर्थ यह है कि एक परीक्षा को उन उद्देश्यों (objectives) का सही रूप से मापन करना चाहिये जिस हेतु उसे बनाया है। मान लीजिये हम विज्ञान की परीक्षा में इस उद्देश्य का मापन करना चाहते हैं कि विद्यार्थी इकाइयों का ज्ञान ठीक से कर सकें तो हमारी परीक्षा में तभी तर्क-संगत वैधता

कहलावेगी जबकि वह इस उद्देश्य का मापन करे न किसी और उद्देश्य का।

हर प्रश्न को उस उद्देश्य का मापन करना चाहिये जिसके लिये उसे बनाया गया हो, तभी पूरी परीक्षा में तर्कसंगत वैधता हो सकेगी। विशेषज्ञ इस बात को बताने में सहायक होंगे कि हमारे प्रश्न उन उद्देश्यों का मापन कर रहे हैं या नहीं जिनके हेतु उनको बनाया गया है।

(ब) पाठ्य-विषय सम्बन्धी वैधता (curricular or content validity) : इस वैधता का अर्थ यह है कि हमारी परीक्षा में सम्पूर्ण प्रश्न पाठ्य-क्रम पर आधारित होने चाहिये। कक्षा के स्तर से कठिन या सरल प्रश्न नहीं होने चाहिए। पाठ्य-क्रम के सभी अंगों से कुछ न कुछ प्रश्न अवश्य होने चाहिये। यहाँ पर परीक्षा निर्माता को भिन्न-भिन्न पाठ्य-पुस्तकों का विश्लेषण भी करना चाहिए जिससे वह ज्ञात कर सके कि कौनसा प्रसंग अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसमें कि अधिक बल देना चाहिये। विषय के अध्यापक इस बात में सहायक सिद्ध होते हैं।

(स) अनुभव-जन्य वैधता (Empirical validity) : इस प्रकार की वैधता का अर्थ होता है कि हमारी परीक्षा उस योग्यता का साधकता के साथ मापन कर रही है जिसके हेतु उसे बनाया गया है या नहीं। जैसे मान लीजिये हम विद्यार्थियों की विज्ञान की योग्यता का मापन करना चाहते हैं। इसके लिये हम पहले अपनी परीक्षा का प्रयोग उन विद्यार्थियों में करते हैं। फिर उन विद्यार्थियों के उसी विषय में स्कूल की परीक्षाओं के अंक प्राप्त कर लेते हैं। यह अच्छा होता है कि कम से कम स्कूल की तीन परीक्षाओं का मध्यमान (average) ले लिया जाय। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी के स्कूल के उस विषय के तीन परीक्षाओं का मध्यमान हमारे लिये एक मान दंड (criterion) हो जाता है। अब हम अपने परीक्षा के अंकों की तुलना इस मान-दंड वाले अंकों से करते हैं। इसके लिये उन अंकों के बीच जो विद्यार्थियों को हमारी परीक्षा में मिले हैं तथा उन मान-दंड अंकों (criterion scores) में सह-सम्बन्ध (correlation) ज्ञात कर लिया जाता है। यदि यह सह-सम्बन्ध गुणक (coefficient of correlation) ऊँचा आता है तो हम समझते हैं कि हमारी विज्ञान परीक्षा एक अच्छी सीमा तक उसी योग्यता का मापन कर रही है, जिस

योग्यता को स्कूल की परीक्षाओं ने उस विषय में किया है। अन्वेषणों द्वारा ज्ञात होता है कि यह सह-सम्बन्ध गुणक ·३, ·४, ·५, आदि आते हैं जो काफी कम हैं। यह इसलिये होता है कि एक तो स्कूल की परीक्षाएँ स्वयं ही दोषपूर्ण होती हैं; वे उद्देश्यों की सही माप नहीं करती हैं और न ही वह विश्वसनीय (reliable) or वैषयिक (objective) होती हैं। यदि गुणक ·४, या ·५ आ भी जाता है तो इससे हम यह तात्पर्य नहीं निकाल सकते हैं कि हमारी परीक्षा भी वैध है। पहले तो मान-दंड को स्वयं ही वैध होना चाहिये क्योंकि उसी से तुलना करने पर हम अपनी परीक्षा को वैध सिद्ध करते हैं। स्कूल की परीक्षाएँ स्वयं ही वैध नहीं होतीं इसलिये उनको मानदंड मानना व्यर्थ है। डरल (Durrell) ने ठीक ही कहा है कि "स्कूल की परीक्षाओं से अपनी परीक्षा की तुलना करके, अपनी परीक्षा की वैधता ज्ञात करने के बजाय हमें स्कूल की परीक्षा की वैधता ज्ञात करनी चाहिये; क्योंकि हमारी परीक्षा कम से कम वैषयिक (objective) और विश्वसनीय (reliable) तो होती है तथा उसमें पाठ्य-विषय सम्बन्धी और तर्क-संगत वैधता तो होती है। हम लोगों को तुलना हेतु कोई वैध मान-दंड लेना चाहिए तभी हम अपनी परीक्षा की वैधता ज्ञात कर सकते हैं। परन्तु वैध परीक्षा की प्राप्ति कभी-कभी दुर्लभ हो जाती है।"

(द) भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता (Predictive validity) : जैसा कि इसके नाम से विदित होता है, इस वैधता का अर्थ ही यह होता है कि हमारी परीक्षा ने किसी योग्यता के बारे में सफल भविष्यवाणी की है या नहीं। उदाहरणार्थ मान लीजिये हमारी एक विज्ञान की परीक्षा में एक आठवीं कक्षा का विद्यार्थी उच्च अंकों से उत्तीर्ण होकर नवीं कक्षा में जाता है। अब देखना यह है कि वह नवीं कक्षा में भी विज्ञान में उतना ही योग्य सिद्ध होता है या नहीं। यदि अनेकों आठवीं कक्षा के विद्यार्थी हमारी परीक्षा में अच्छे अंकों में उत्तीर्ण होकर अगली कक्षाओं में उसी विषय में विफल होते हैं तो निश्चय ही हम कहेंगे कि हमारी परीक्षा वैध रूप से भविष्यवाणी नहीं करसकी; अर्थात् उसमें भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता नहीं है। अधिकांश लोग अभिरुचि परीक्षाओं (aptitude tests) की भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता निकालना उचित समझते हैं, जिससे यह ज्ञात किया जाता है कि वे व्यक्ति जिनको अभिरुचि परीक्षाओं के आधार पर अलग-अलग पेशों में भेजा था वे उन

पेशों में सफलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं या नहीं। भविष्यवाणी संबंधी वैधता को ज्ञात करने के लिये अपनी परीक्षा के अंकों तथा बाद में उन्हीं विद्यार्थियों के उसी विषय या पेशे के प्राप्त अंकों के बीच सह-सम्बन्ध ज्ञात कर लिया जाता है। यदि यह सह-सम्बन्ध गुणक ऊँचा होता है तो हम कहते हैं कि हमारी परीक्षा में भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता है। विशेषज्ञों की अनुमति है कि प्रथम निर्माण परीक्षा (First-try-out test) की केवल पाठ्य-विषय सम्बन्धी तथा तर्क-संगत वैधता ज्ञात करनी चाहिये। अनुभव-जन्य वैधता तथा भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता अन्तिम परीक्षा (Final test) में, जिसका आगे वर्णन किया जावेगा, निकालनी चाहिये।

१२—प्रथम निर्माण परीक्षा की वैधता निकालने के पश्चात् उसकी विश्वसनीयता(reliability)निकालना परम आवश्यक है। एक विश्वसनीय परीक्षा वह है जिसमें विश्वास किया जा सके। इस प्रकार की परीक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी बार-बार परीक्षा लेने पर एक निश्चित अंक प्राप्त करता है या अगर उसकी पुस्तिका भिन्न-भिन्न परीक्षकों द्वारा जाँची जावे तो वे भी इस पुस्तिका में एक निश्चत अंक देते हैं। अंग्रेजी में विश्वसनीयता की परिभाषा इस प्रकार दी गई है. "By reliability of a test means the consistency with which a test measures what it intends to measure." विश्वसनीयता ज्ञात करने की निम्न-लिखित चार विधियाँ हैं जिनमें पहली दो विधियाँ अधिक दोषपूर्ण हैं। तीसरी और चौथी विधियाँ उपयोगी समझी जाती हैं। चौथी विधि सबसे अधिक उपयोगी है।

(क) **परीक्षा-पुनर्परीक्षा विधि** (Test-Retest Method) : यदि इस विधि से हम अपनी परीक्षा की विश्वसनीयता ज्ञात करना चाहें तो पहले अपनी परीक्षा का प्रयोग करके उसमें अंक प्रदान करते हैं और फिर कुछ समय बाद (१ या २ महिने बाद) वही परीक्षा उन्हीं विद्यार्थियों में प्रयोग करके उसमें अंक प्रदान करते हैं। इन दोनों अंकों में सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। यदि सह-सम्बन्ध गुणक ·९ या इससे अधिक आता है तो हम कहते हैं हमारी परीक्षा विश्वसनीय है।

इस विधि की अनेकों परिसीमाएँ हैं। यदि पुनर्परीक्षा कुछ ही समय बाद ली जावे तो दूसरी बार की परीक्षा में अभ्यास के कारण अंक बढ़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त बच्चे कई प्रश्न याद कर लेते हैं और इसलिये भी उनके अंक दूसरी बार की परीक्षा में बढ़ जाते हैं। इसलिये

सह-सम्बन्ध गुणक सही विश्वसनीयता बताने में असफल रहता है। यदि परीक्षा अधिक दिनों बाद (६ महिने बाद) ली जावे तो उपरोक्त प्रभाव तो हट जावेंगे परन्तु तब तक बालकों में कुछ मानसिक विकास हो जाता है और इससे दूसरी बार की परीक्षा के अंक प्रभावित होते हैं। यह विधि अच्छी नहीं मानी जाती है।

(ख) एकान्तर या समानान्तर परीक्षा-विधि (Alternate or Parallel form Method) : दो परीक्षाएँ एकान्तर या समानान्तर तब कहलाती हैं जब दोनों में रूप (form), वस्तु (content) तथा कठिनाई (difficulty) में समानता हो। यह समानता दोनों परीक्षाओं के प्रत्येक प्रश्न में होनी चाहिए। इस विधि का प्रयोग करने के लिये पहली विधि के ही अनुसार एक या दो महिने के अन्तर में ये दोनों समानान्तर परीक्षाएँ कुछ निश्चित विद्यार्थियों में प्रयोग की जाती हैं। पहली परीक्षा के अंकों तथा दूसरी पराक्षा के अंकों में सह-सम्बन्ध विश्वसनीयता का सूचक होता है। यदि सह सम्बन्ध गुणक ·६ या इससे अधिक आता है तो हम समझते हैं कि हमारी परीक्षा विश्वसनीय है।

इस विधि की भी वे सभी परिसीमाएँ (limitations) हैं जो पहली विधि की थीं। इसके अतिरिक्त इस विधि के प्रयोग में सबसे बड़ी समस्या तो यह होती है कि समानान्तर परीक्षा उपलब्ध होना दुर्लभ होता है। यदि समानान्तर परीक्षा बनाई जावे तो स्मरण रहे कि उस परीक्षा को पहली परीक्षा का प्रतिरूप (duplicate) नहीं होना चाहिये परन्तु उनमें समानता अवश्य होनी चाहिये। यह विधि भी बहुत कम काम में लाई जाती है।

(ग) अर्द्ध-विच्छेदित परीक्षा विधि (Split-Half Method) : इस विधि के प्रयोग से उक्तलिखित विधियों की परिसीमाओं को दूर करके विश्वसनीयता को सही रूप में ज्ञात किया जा सकता है। इसके अनुसार पहले एक परीक्षा प्रयोग की जाती है और प्रत्येक परीक्षार्थी को पुस्तिका में प्रत्येक प्रश्न में अंक प्रदान कर दिये जाते हैं। अब यह ज्ञात किया जाता है कि प्रत्येक परीक्षार्थी को समसंख्या (even-number) वाले प्रश्नों में (जैसे दूसरे प्रश्न, चौथे प्रश्न, छठे प्रश्न आदि में) कुल कितने अंक मिले और विषम संख्या (odd number) वाले प्रश्नों में (जैसे पहले प्रश्न, तीसरे प्रश्न, पाँचवे प्रश्न आदि में) कुल कितने अंक मिले। सम व विषम संख्या वाले प्रश्नों के कुल अंक अलग-अलग हर विद्यार्थी के लिये ज्ञात कर लिये जाते हैं और इनमें सह-सम्बन्ध

ज्ञात कर लिया जाता है। मान लीजिये, सह-सम्बन्ध गुणक ·८ आता है। यह सह-सम्बन्ध गुणक आधी परीक्षा की विश्वसनीयता बतायेगा। इससे पूरी परीक्षा को विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिये (Spearman Brown Prophecy formula) का सूत्र प्रयोग किया जाता है जो कि नीचे दिया गया है।

$$R = \frac{2r}{1+r}$$

इसमें: R = पूरी परीक्षा की विश्वमनीयता

r = आधी परीक्षा की विश्वसनीयता

इस सूत्र में यदि r के स्थान में ·८ रख दिया जाय तो R का मान ज्ञात किया जा सकता है। वह ·८ से अवश्य अधिक होगा।

विश्वसनीयता ज्ञात करने की यह विधि बहुत अच्छी समझी जाती है। इसमें हम दोनों परीक्षाएँ (क्योंकि विच्छेदित करके इसके दो भाग कर लिये जाते हैं जो समानान्तर परीक्षा का कार्य करते हैं) एक ही समय में देते हैं इसलिये समय के अन्तर का प्रभाव व अभ्यास तथा प्रश्न याद कर लेने का प्रभाव नहीं पड़ सकता है।

यह विधि तभी काम में लाई जा सकती है जबकि परीक्षा-पत्र के प्रश्न कठिनाई के क्रम में हों तभी वे विच्छेदन करने पर दो समानान्तर परीक्षाओं में विच्छेदित होंगे।

इस विधि की परिसीमा यह है कि परीक्षा को दो भागों में अनेकों प्रकार से विच्छेदित किया जा सकता है और इसलिये हर बार विश्वसनीयता गुणक ((reliability coefficient) अलग-अलग आते हैं। कुछ भी हो, यह विधि उत्तम विधि मानी गई है।

(घ) **तर्क-युक्त समानता विधि** (Method of Rational Equivalence) :—कूडर (Kuder) तथा रिचर्डसन (Richardson) ने विश्वसनीयता ज्ञात करने की १६ विधियाँ बताई हैं जिनमें यह विधि सबसे उत्तम बताई गई है। इस विधि द्वारा समस्त विधियों के दोषों का निवारण हो जाता है। इस विधि द्वारा परीक्षा के प्रश्नों का पारस्परिक सम्बन्ध एवं प्रश्नों का समस्त परीक्षा से सम्बन्ध सुगमता पूर्वक ज्ञात किया जा सकता है।

इसके लिये निम्नलिखित सूत्र प्रयोग किया जाता है :—

$$r = \frac{n}{n-1} \left[\frac{\sigma^2 - \Sigma PQ}{\sigma^2} \right]$$

इसमें : r = परीक्षा की विश्वसनीयता का गुणक
n = परीक्षा के प्रश्नों की संख्या
σ = परीक्षा के अंकों का प्रमाप विचलन
(standard deviation)
P = प्रत्येक परीक्षा प्रश्न में सही उत्तर देने वाले परीक्षार्थी वर्ग का अनुपात
Q = प्रत्येक परीक्षा प्रश्न में गलत उत्तर देने वाले परीक्षार्थी वर्ग का अनुपात

इस विधि द्वारा विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिये पहिले परीक्षा को प्रयोग किया जाता है और परीक्षा पुस्तिकाओं में अंक प्रदान किये जाते हैं। इन अंकों का σ ज्ञात कर लिया जाता है। अब प्रत्येक प्रश्न के लिये यह ज्ञात किया जाता है कि उसको पूरे परीक्षार्थी वर्ग के किस अनुपात ने सही किया है और किस अनुपात ने गलत। इनको क्रमशः P और Q से दर्शाया जाता है। फिर P को Q से गुणा करके प्रत्येक प्रश्न के लिये P Q का मान ज्ञात कर लिया जाता है। मान लीजिये हमारी परीक्षा में १५० प्रश्न हैं तो इस प्रकार हमारे पास १५० अलग-अलग PQ के मान आ जावेंगे। इन सब PQ को जोड़ने पर ΣPQ का मान ज्ञात हो जावेगा। 'n' का मान ज्ञात रहता ही है। जैसे इस उदाहरण में n का मान १५० हुआ। σ, ΣPQ तथा n का मान ऊपर के सूत्र में रखने पर विश्वसनीयता गुणक ज्ञात हो जाता है। यह विधि सब विधियों में श्रेष्ठ समझी गयी है।

यदि प्रथम निर्माण परीक्षा का विश्वसनीयता गुणक ·८ से कम आता है तो हम समझ लेते हैं कि हमारी परीक्षा में कुछ दोष हैं; वह विश्वसनीय नहीं है। यदि यह गुणक ·६ या ·७ आता है तो ऐसी परीक्षा से कोई लाभ नहीं होता उसे पूरा ही बदलना होता है। प्रश्नों की संख्या बढ़ाने से भी विश्वसनीयता बढ़ाई जा सकती है।

१३—एक अच्छी परीक्षा वह होती है जो कि योग्य तथा अयोग्य बालकों में सही रूप से भेद ज्ञात कर सके; अर्थात् परीक्षा को विभेद-कारी (discriminating) होना चाहिये। एक परीक्षा तभी विभेदकारी होगी जबकि उसके प्रत्येक पद (item) विभेदकारी होंगे। यदि किसी पद को उच्च योग्यता वाले विद्यार्थियों (अच्छे विद्यार्थियों) में से ५० प्रतिशत से अधिक कर पाते हैं और निम्न योग्यता वाले विद्यार्थियों (कमजोर विद्यार्थियों) में से ५० प्रतिशत से कम कर पाते हैं तो

वह प्रश्न या पद विभेदकारी माना जाता है। परन्तु यह एक वैज्ञानिक ढङ्ग नहीं हुआ क्योंकि मान लीजिये एक प्रश्न को अच्छे विद्यार्थियों में से ५५ प्रतिशत ने ठीक हल किया और ४८ प्रतिशत कमजोर विद्यार्थियों ने ठीक हल किया तो क्या यह प्रश्न विभेदकारी होगा ? नहीं। इस प्रकार की विधि में केवल अनुमान से काम लिया जाता है।

एक और दूसरी विधि भी उपलब्ध है जिससे प्रत्येक प्रश्न का विभेदकारी मान ज्ञात किया जा सकता है। इस विधि के अनुसार पहले हम अपनी परीक्षा में अंक प्रदान करके परीक्षा की पुस्तिकाओं को अंकों के क्रम में लगा लेते हैं। इस प्रकार जिन पुस्तिकाओं में अधिक अंक होंगे वे ऊपर होंगी, बीच में मध्यम श्रेणी के अंक वाली पुस्तिकाएँ होंगी तथा नीचे कम अंक वाली पुस्तिकाएँ। इस पूरे में से ऊपर की एक तिहाई पुस्तिकाएँ अलग रख दी जाती हैं और नीचे की एक तिहाई पुस्तिकाएँ दूसरी ओर अलग रख दी जाती हैं। बीच की एक तिहाई पुस्तिकाओं को काम में लाने की आवश्यकता नहीं है। ऊपर की एक तिहाई पुस्तिकाएँ अच्छे विद्यार्थियों की होंगी तथा नीचे की एक तिहाई पुस्तिकाएँ कमजोर विद्यार्थियों की। हमें इन्हीं दोनों वर्गों में भेद देखना है। अब यह ज्ञात कर लिया जाता है कि ऊपर के वर्ग में पहले प्रश्न को कितने प्रतिशत विद्यार्थियों ने सही हल किया है तथा कितनों ने गलत। इनको क्रमशः X_1 तथा Y_1 कहेंगे। इस प्रकार ऊपर के वर्ग में प्रत्येक प्रश्न के लिये X_1 और Y_1 ज्ञात कर लिये जाते हैं। इसी तरह नीचे के वर्ग में भी यह ज्ञात कर लिया जाता है कि प्रत्येक प्रश्न को कितने प्रतिशत ने सही हल किया है तथा कितने प्रतिशत ने गलत हल किया है। इनको क्रमशः X_2 और Y_2 कहेंगे। माना ऊपर के वर्ग में विद्यार्थियों की संख्या N_1 है और नीचे के वर्ग में N_2। वैसे N_1 तथा N_2 बराबर होते हैं क्योंकि हम दोनों वर्गों में कुल का एक तिहाई भाग लेते हैं।

मान लीजिये हमें इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न के लिये X_1, Y_1, X_2, Y_2, N_1 तथा N_2 ज्ञात हैं तो इनका मान नीचे के सूत्र में रखकर प्रत्येक प्रश्न का अलग-अलग विभेदकारी मान ज्ञात कर लिया जाता है।

$$D = \frac{X_1 - X_2}{\sqrt{\frac{X_1 Y_1}{N_1} + \frac{X_2 Y_2}{N_2}}}$$

इस सूत्र में D का अर्थ है विभेदकारी मान । यदि यह मान १·९६ से अधिक होता है तो हम जान लेते हैं कि हमारा प्रश्न विभेदकारी है, अर्थात् यह अच्छे और कमजोर विद्यार्थी में भेद बता सकता है । इसी प्रकार हम प्रत्येक प्रश्न का विभेदकारी मान (Discriminating value) निकाल लेते हैं और उन प्रश्नों को अच्छा समझते हैं जिनका विभेदकारी मान १·९६ या २ से अधिक हो । इस विधि को प्रश्न-विश्लेषण कहते हैं क्योंकि इसमें प्रत्येक प्रश्न का विश्लेषण किया जाता है । देखा जाता है कि यदि प्रथम निर्माण परीक्षा में १५० प्रश्न हैं तो इसमें लगभग ५० ऐसे होते हैं जिनका विभेदकारी मान २ से कम होता है । ऐसे प्रश्न परीक्षा पत्र (test) से हटा दिये जाते हैं ।

१४—**अन्तिम परीक्षा का निर्माण** (Construction of Final Test): इतना सब हो जाने पर तब अन्तिम परीक्षा बनाई जाती है । इस परीक्षा में केवल वे प्रश्न रखे जाते हैं जिनका विभेदकारी मान २ से अधिक हो । यहाँ इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि प्रथम निर्माण परीक्षा में परीक्षार्थियों को परीक्षा हल करने में कहाँ-कहाँ कठिनाई हुई । कोई शब्द कठिन तो नहीं थे जिससे वे आदेशों को नहीं समझ पाये । यदि ऐसा है तो उन सबकी शुद्धि करली जाती है । यह भी ध्यान रखा जाता है कि अन्तिम परीक्षा में प्रत्येक उद्देश्य के मापन हेतु पर्याप्त प्रश्न हैं या नहीं । मान लीजिये उन ५० प्रश्नों में से जिनको प्रथम निर्माण परीक्षा से विभेदकारी मान के आधार पर हटाना पड़ा, अधिक प्रश्न एक ही उद्देश्य के मापन हेतु हैं और अब अन्तिम परीक्षा में इस उद्देश्य के मापन हेतु केवल चार प्रश्न रह गये, तो अच्छा यह होगा कि इन चारों प्रश्नों को हटा दिया जाय । अन्तिम परीक्षा में यह भी ध्यान रखा जाता है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि एक प्रकार के प्रश्न (मान लीजिये बहुनिर्वचन प्रश्न) बहुत कम रह गये हों अर्थात् ३ या ४ ही इस प्रकार के प्रश्न रह गये हों । यदि ऐसा है तो उनको दूसरे प्रकार के प्रश्नों में बदल सकते हैं । ऐसा करने में केवल प्रश्न के रूप में परिवर्तन होना चाहिये, न कि उसके विषय (content) में । जैसे नीचे के दो प्रश्न एक ही विषय पर आधारित हैं । पहले का रूप साधारण प्रत्यास्मरण है और दूसरे का रिक्त स्थान पूर्ति ।

प्रश्न १—तापक्रम किस यंत्र से नापते हैं ? ( )

रिक्त स्थान भरो :—

प्रश्न २—तापक्रम नापने के लिये············का प्रयोग करते हैं ।

अन्तिम परीक्षा में आदेश (directions) और अनुदेश (instructions) ठीक प्रकार से देने चाहिये। बाहरी पृष्ठ पर परीक्षा को हल करने का समय भी निश्चित रूप से लिख दिया जाता है। मान लीजिये प्रथम परीक्षा में १५० प्रश्न थे और ८० प्रतिशत विद्यार्थियों ने उसे ७५ मिनट में किया तो हम ज्ञात कर लेते हैं कि इस प्रकार का १ पद या प्रश्न आधे मिनट में हल हो सकता है। यदि अन्तिम परीक्षा में केवल १०० प्रश्न हैं तो उनको हल करने का समय ५० मिनट होना चाहिए। इस अन्तिम परीक्षा की कई हजार कापियाँ छपवा ली जाती हैं।

१५—अब इस अन्तिम परीक्षा को एक बड़े नमूने (Sample) में, जो २००० से कम न हो, प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी तो हम पाँच या छ: हजार तक का भी नमूना लेते हैं। जितना ही बड़ा नमूना हम लेंगे उतना ही हमारी परीक्षा का प्रमापीकरण (standardization) अच्छा होगा। स्मरण रहे कि इस नमूने में काफी विचरणशीलता (variability) होनी चाहिए। इसमें उच्चयोग्यता, सामान्य योग्यता तथा निम्न योग्यता वाले सभी प्रकार के विद्यार्थी सम्मिलित हों अन्यथा हमारे परिणाम दोष पूर्ण होंगे। परीक्षा का प्रयोग करते समय उन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए जिनका वर्णन प्रथम परीक्षा के प्रयोग के समय कर दिया गया है। इस बार सबसे अधिक ध्यान समय का रखना होता है। परीक्षक को निश्चित समय से एक भी मिनट कम या अधिक नहीं देना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की परीक्षा में एक मिनट में परीक्षार्थी दो या तीन प्रश्न और हल कर लेता है और इससे उसके अंकों में प्रभाव पड़ता है।

१६—परीक्षा के प्रयोग हो जाने के पश्चात् पुस्तिकाओं में अंक प्रदान किए जाते हैं। उन अंकों को रेखा-चित्र (graphs) में अंकित किया जाता है। यह रेखाचित्र एक सामान्य वक्र (Normal curve) के रूप का होना चाहिए। अंकों का मध्यमान (mean) तथा प्रमाप विचलन (Standard deviation) ज्ञात कर लिये जाते हैं। यह मध्यमान लगभग ५० प्रतिशत होना चाहिए तभी यह परीक्षा अच्छी मानी जावेगी।

१७—अब इस परीक्षा की वैधता (validity) तथा विश्वसनीयता ज्ञात की जाती हैं। यहाँ हम अनुभव-जन्य वैधता (Empirical validity) निकालते हैं। भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता (predictive validity) तो बाद में निकाली जावेगी जब कि विद्यार्थी अगली कक्षाओं

में चले जावेंगे। विश्वसनीयता के लिए अर्द्ध-विच्छेदित परीक्षा विधि तथा तर्क-युक्त समानता विधि अच्छी हैं। इन्हीं से विश्वसनीयता निकालनी चाहिए। अन्तिम परीक्षा के लिए विश्वसनीयता गुणक ·९ से सदा ऊपर होना चाहिए।

१८—कुछ लोग एक बार परीक्षा के प्रत्येक प्रश्न का फिर यहाँ पर विश्लेषण करके देख लेते हैं कि प्रत्येक प्रश्न विभेदकारी है या नहीं। यह बहुत आवश्यक नहीं है।

१९—अन्त में अब परीक्षा का प्रमापीकरण (standardization) करने का प्रश्न आता है। एक प्रमापीकृत परीक्षा वह है जिसके लिए सामान्य स्तर (Norm) ज्ञात हों। ये सामान्य स्तर कई प्रकार के होते हैं। ये सामान्य स्तर स्कूल के विद्यार्थी की श्रेणी सम्बन्धी (school grade norm), आयु सम्बन्धी (age norm), लिङ्ग सम्बन्धी (sex norms) तथा शहर और ग्राम सम्बन्धी (urban and rural norms) हो सकते हैं। मान लीजिये हम अपनी परीक्षा को आठवी, नवीं तथा दसवीं कक्षा में प्रयोग करते हैं तो इन भिन्न-भिन्न कक्षाओं या श्रेणियों के लिए सामान्य स्तर निकाले जा सकते हैं। हम आठवीं कक्षा के अंकों का मध्यमान (mean) निकाल लेंगे और वही उसका सामान्य स्तर होगा। इसी प्रकार नवीं व दसवीं कक्षा के अलग-अलग मध्यमान क्रमशः उन कक्षाओं के सामान्य स्तर होंगे। ये श्रेणी सम्बन्धी सामान्य स्तर कहलायेंगे। इसी प्रकार उक्त लिखित सभी प्रकार के सामान्य स्तर ज्ञात किये जा सकते हैं। लड़कियों का सामान्य स्तर निकालने के लिए उनके अंकों का मध्यमान निकालना होगा और लड़कों का सामान्य स्तर निकालने के लिए उनके अंकों का मध्यमान निकालना होगा। कभी-कभी प्रमाप अंक सामान्य स्तर (standard score norm) भी ज्ञात किये जाते हैं। इसके अनुसार हम अपनी परीक्षा के अंकों का मध्यमान (M) तथा प्रमाप विचलन(standard deviation, σ) ज्ञात कर लेते हैं। अब मान लीजिए हमें अपनी परीक्षा में किसी विद्यार्थी के अंक (X) को प्रमाप अंक (standard score) में बदलना है तो हम निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करते हैं :—

$$\frac{X - M}{\sigma} = \frac{X_1 - M_1}{\sigma_1}$$

इस सूत्र में X, M तथा σ हमें ऊपर से ज्ञात हैं। M_1 को ६० तथा σ_1 को १० मान लेते हैं। इससे X_1 का मान ज्ञात हो जाता है

श्रौर वही उस विद्यार्थी के, जिसके परीक्षा में X अंक थे, प्रमाप अंक (standard score) कहलाते हैं। कभी-कभी M_1 को ५० तथा $_1\sigma$ को १० माना जाता है श्रौर उस दशा में हम कहते हैं कि परीक्षा के अंकों को T—अंकों (T—score) में परिवर्तित किया जा रहा है। हर परीक्षार्थी के अंकों को प्रमाप अंकों में बदला जा सकता है श्रौर इन्हीं को प्रमाप अंक सामान्य स्तर कहते हैं।

श्राजकल लोग प्रतिशतीय सामान्य स्तर (Percentile norms) निकालना अधिक अच्छा समझते हैं। इन सामान्य स्तरों में यह सरलता से देखा जाता है कि अमुक विद्यार्थी के अङ्कों से कितने प्रतिशत विद्यार्थियों ने कम अङ्क प्राप्त किये हैं। यदि किसी विद्यार्थी के अङ्कों को प्रतिशतीय अङ्कों में परिवर्तित किया जाय श्रौर वह २० आवे तो हम कह सकते हैं कि उस विद्यार्थी की कक्षा में २० प्रतिशत विद्यार्थी उस अमुक विद्यार्थी से कम अंक पाये हैं। प्रतिशतीय अंक या तो गणना द्वारा ज्ञात किये जा सकते हैं या संचयी वक्र (Ogive or cumulative percentage curve) द्वारा। इसको पूर्ण रूप से समझने के लिए पाठक लेखक की पुस्तक (शिक्षण मापन का इतिहास, सिद्धान्त तथा प्रयोग) का पाचवाँ अध्याय देख सकते हैं।

इस प्रकार केवल वही परीक्षा प्रमापीकृत कहलाई जा सकती है जिसके सामान्य स्तर (Norms) ज्ञात हों। इन्हीं सामान्य स्तरों के आधार पर भिन्न-भिन्न विद्यार्थियों की योग्यता (Ability) की तुलना की जा सकती है। समान्य स्तर एक प्रकार से एक प्रमाप इकाई (Standard unit) का कार्य करते हैं जिसके आधार पर भिन्न-भिन्न विद्यार्थियों की योग्यता की तुलना की जा सकती है। इसलिए उस परीक्षा को प्रमापीकृत परीक्षा (Standardised test) कहते हैं जिसके सामान्य स्तर (Norms) ज्ञात हों।

२०—किसी भी परीक्षा का प्रयोग करने के पश्चात् उसकी व्याख्या करना अनिवार्य है अन्यथा परीक्षा बनाने का कोई उपयोग नहीं समझा जावेगा। परीक्षाएँ भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए बनाई जाती हैं श्रौर इसीलिए उनकी व्याख्याएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

विज्ञान की साफल्य परीक्षा का उदाहरण—लेखक ने एक विज्ञान परीक्षा का प्रयोग उत्तरप्रदेश के कुछ स्कूलों में तथा इंगलैंड के कुछ स्कूलों में किया। जो परीक्षा प्रयोग में लाई गई उसका हिन्दी अनुवाद इस अध्याय के अन्त में दिया गया है। यह परीक्षा इङ्गलैंड के Fourth

Form के विद्यार्थियों तथा भारतवर्ष के १० वीं, ११ वीं तथा १२ वीं कक्षा के विद्यार्थियों में प्रयोग की गई। इस परीक्षा को प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :—

विज्ञान परीक्षा का प्रयोग करने के लिए साधारण आदेश :—

(१) अध्यापकों तथा परीक्षकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ जहाँ यह परीक्षा काम में लाई जाय वहाँ सब परीक्षार्थियों के लिए वातावरण व दशायें एक समान हों। बालकों को मानसिक तथा शारीरिक दशा सामान्य (normal) हो। बच्चों को उनके घर के लोगों के सामने परीक्षा नहीं देनी चाहिए।

(२) यह अच्छा होगा कि यदि परीक्षा को पेंसिल से हल किया जाय। परीक्षक को अपने पास कुछ पेंसिल रखनी चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह परीक्षार्थी को दे सके।

(३) परीक्षा के लिए निश्चित किये हुए समय को ध्यान में रखना चाहिए। कभी भी कम या अधिक समय नहीं देना चाहिए। इस विज्ञान परीक्षा का समय ४० मिनट है।

(४) इस प्रकार की परीक्षाओं में परीक्षार्थी को नकल करने में सुविधा रहती है इसीलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि उनकी बैठने की व्यवस्था काफी दूर-दूर हो जिससे कि वे नकल न कर सकें।

(५) जब परीक्षा आरम्भ हो जाती है तो उसके बाद विद्यार्थी को किसी प्रकार की बात पूछने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए। परीक्षक भी परीक्षार्थी को किसी प्रकार को मदद न दे।

(६) परीक्षा को वर्ष के उस निश्चित महीने में प्रयोग करना चाहिए जिसके लिए उसको बनाया गया हो। तभी उस परीक्षा के सामान्य स्तर (norms) काम में लाये जा सकते हैं। इस विज्ञान परीक्षा को भारतीय स्कूलों में अगस्त या सितम्बर के महीने में प्रयोग करना चाहिए।

विज्ञान परीक्षा प्रयोग करने की विधि :—

(१) जब परीक्षक कक्षा को व्यवस्था ठीक कर लेता है तो परीक्षा पत्रों को बाँट देता है। पत्र को खुली अवस्था में नहीं बाँटना चाहिए। परीक्षार्थियों को कह दिया जाता है कि जब तक उनसे कहा न जाय परीक्षापत्र को न खोलें।

तब परीक्षक कहता है—

"पेंसिल से अपना नाम लिखो। वर्षों एवं महीनों में अपनी आयु

लिखो। अपने स्कूल, स्थान एवं अपनी कक्षा का नाम तथा आज की तारीख लिखो। अब यह लिखो कि तुमने साधारण विज्ञान या विज्ञान कितने वर्ष पढ़ा है। लिखना समाप्त करने पर अपना हाथ उठा दो।"

(२) जब सब परीक्षार्थी नाम आदि लिख चुकते हैं तो परीक्षक कहता है—

"ऊपर के पृष्ठ पर लिखे गये आदेशों को देखो। जब मैं पढ़ूँ तब तुम समझते चलो।" परीक्षक पृष्ठ के ऊपर लिखे साधारण आदेशों को पढ़ाता है और समझाता है।

साधारण आदेश—

(१) "इस पत्र की बाईं ओर को तुम अपने अभ्यास कार्य के लिए प्रयोग कर सकते हो।

(२) जब तक परीक्षक न कहे, इस पत्र को मत खोलो।

(३) इस पत्र के तीन भाग हैं और इसको करने का समय ४० मिनट है।

(४) प्रत्येक भाग के आरम्भ में, उसे करने के लिए आवश्यक आदेश दे दिये गये हैं। उन्हें घ्यान से पढ़ो और तुरन्त ही कार्य आरम्भ करो।

(५) किसी भी प्रश्न पर अधिक समय न लगाओ। पहले पहल सरल प्रश्नों को कर डालो। यदि समय शेष रहे तो कठिन प्रश्नों को करो।

(६) प्रत्येक भाग के लिए कोई निश्चित समय नहीं है।

(७) तुमसे यह आशा है कि प्रत्येक भाग के जितने अधिक से अधिक प्रश्न तुम कर सकते हो, करोगे।

(८) उत्तरों को अन्दाज से मत लिखो क्योंकि अन्दाज से तुम्हारे प्राप्तांक कम हो जावेंगे।

(९) पेंसिल से ही लिखो। यदि किसी उत्तर को बदलना हो तो उसे रबड़ से मिटा कर साफ-साफ लिखो।"

तब परीक्षक कहता है—

"परीक्षा के लिए केवल ४० मिनट हैं।"

(३) जब परीक्षक यह देख लेता है कि सब परीक्षार्थी परीक्षा के लिए तैयार हैं और सब व्यवस्था ठीक है तो वह अपनी घड़ी को कार्यान्वित करता है और कहता है! "अपनी पुस्तिका का प्रथम पृष्ठ खोलो, पारम्भ करो।"

(४) २० मिनट बाद परीक्षक कहता है :

"केवल २० मिनट शेष हैं।"

फिर अगले २० मिनट बाद परीक्षक कहता है :

"रुक जाओ। पेंसिल नीचे रख दो। पुस्तिकाएँ बन्द कर दो। अपने हाथ में पुस्तिका लेकर खड़े हो जाओ।"

इसके बाद परीक्षक पुस्तिकाएँ इकट्ठी कर लेता है।

अङ्क प्रदान करने की विधि—

(१) अङ्क प्रदान करने के लिये रङ्गीन पेंसिल का प्रयोग करना चाहिये।

(२) हर परीक्षा के साथ उसकी कुंजी (scoring key) दी रहती है। अङ्क प्रदान करने के लिये परीक्षक को इस कुंजी का उपयोग करना चाहिये। इस अध्याय के अन्त में विज्ञान परीक्षा की कुंजी दी है।

(३) जिन प्रश्नों में अनुमान (guessing) द्वारा उत्तर देने की सम्भावना होती है उनमें अङ्क प्रदान करते सनय शुद्धि सूत्र (correction formula) का प्रयोग करना चाहिये। इसका वर्णन इसी अध्याय में पीछे किया जा चुका है।

(४) विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अङ्कों को प्रतिशतीय अङ्कों (percentile scores) में परिवर्तित करने के लिये इस अध्याय के अन्त में दिये हुए सामान्य स्तर टेबुल (table of norms) का प्रयोग करना चाहिये।

विज्ञान परीक्षा के परिणामों की व्याख्या (Interpretation) हर परीक्षा को प्रयोग करने के उद्देश्य भिन्न होते हैं और इसलिये व्याख्या भी भिन्न होती है। उदाहरणार्थ इस विज्ञान परीक्षा को प्रयोग करने का उद्देश्य इस बात का ज्ञान प्राप्त करना था कि इङ्गलैंड के Fourth Form के विद्यार्थियों (औसत आयु १४ वर्ष ११ महीना) तथा भारतवर्ष के दशवीं कक्षा के विद्यार्थियों (औसत आयु १४ वर्ष १० महीना) में कौन लोग सामान्य विज्ञान में अधिक अच्छे हैं। साथ ही इस बात का भी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया कि भारतवर्ष के किस कक्षा के विद्यार्थी इङ्गलैंड के Foruth Form के विद्यार्थियों से सामान्य विज्ञान योग्यता में मिलते जुलते हैं।

परीक्षा का प्रयोग करने के पश्चात् हर कक्षा के विद्यार्थियों के प्राप्ताङ्कों का मध्यमान आदि निकाला गया। यह पूरा वर्णन यहाँ उचित न होगा। इस परीक्षा के प्रयोग से यह ज्ञात हो गया कि इंगलैंड

के Fourth Form के विद्यार्थी (औसत आयु १४ वर्ष ११ महीना) भारतवर्ष के १२ वीं कक्षा के विद्यार्थियों (औसत आयु १७ वर्ष ४ महीना) से सामान्य विज्ञान योग्यता में मिलते जुलते हैं। इस प्रकार इङ्गलैंड तथा भारतवर्ष के विद्यार्थियों की सामान्य विज्ञान योग्यता में २½ वर्ष का अन्तर है। इस अन्तर के अनेकों कारण हो सकते हैं जिनका वर्णन यहाँ पर उचित न होगा।

इस परीक्षा द्वारा इस बात का भी ज्ञान हुआ कि भारतीय विद्यार्थियों को विज्ञान की Terminology में कठिनाई होती है। कुछ Terms ऐसे हैं जो कई प्रकार से लिखे जाते हैं, जैसे—कैनाइन (canine) या कील दांत या छेदन दांत। इसलिये इस बात से कभी-कभी विद्यार्थी भ्रम में पड़ जाते हैं।

इस परीक्षा के प्रयोगसे यह ज्ञात हुआ कि विद्यार्थी इकाइयों का बहुत कम ज्ञान रखते हैं। साधारण चीजों की इकाइयों में वे गलतियाँ करते हैं। वही विद्यार्थी विज्ञान में अपने भाव स्पष्ट कर सकता है जिसको इकाइयों का ज्ञान भली भाँति हो।

परीक्षा ने इस बात की भी पुष्टि की कि भारतवर्ष तथा इंगलैंड दोनों देशों में लड़के लड़कियों से विज्ञान की योग्यता में आगे हैं।

इस परीक्षा के प्रयोग से भिन्न-भिन्न स्कूलों के विज्ञान के स्तर का भी ज्ञान किया जा सका।

पाठक इस परीक्षा का पूरा वर्णन निाम्नलिखित पुस्तक में पढ़ सकते हैं।

D. S. Rawat, "A Comparative study of the standard of general science in certain seconary Schools in England and in U.P. (India) for Pupils of a chosen age range;" M.A. Education Thesis; Birmingham University 1956-57.

किसी भी परीक्षा को प्रयोग करने के पश्चात् उसकी व्याख्या करना अनिवार्य है अन्यथा परीक्षा का कोई महत्व नहीं है। परीक्षा प्रयोग करने के पश्चात् सामान्य-स्तर के आधार पर भिन्न-भिन्न विद्यार्थियों की योग्यता की तुलना की जा सकती है। भिन्न-भिन्न स्कूलों के पाठ्यस्तर की भी तुलना की जा सकती है। यह सब कुछ तभी हो सकता है जब कि परीक्षा प्रमाप परीक्षा (standard test) हो अन्यथा हमारी तुलना के परिणाम सही नहीं होंगे।

आगे के पृष्ठों में लेखक द्वारा निर्मित की गई विज्ञान परीक्षा

उसकी कुंजी तथा विद्यार्थियों के अङ्कों को प्रतिशतीय अंकों (percentile score) में बदलने के लिये टेबुल (table) दिए गए हैं।

"साधारण विज्ञान परीक्षा"

by

D. S. Rawat

निम्न स्थान भरिये **समय—४० मिनट**

नाम..............................

(स्पष्ट लिखिये)

विद्यालय का नाम..................

तुम्हारी आयु वर्ष.......मास....... तुम्हारा लिंग

(लड़का या लड़की)

साधारण विज्ञान या विज्ञान, तुमने कितने वर्ष पढ़ा है (वर्षों की संख्या)..................

साधारण आदेश

१—इस पत्र की बाईं ओर को तुम अभ्यास कार्य के लिये प्रयोग कर सकते हो।

२—जब तक परीक्षक न कहे इस पत्र को मत खोलो।

३—इस पत्र के तीन भाग हैं और इसे भरने का समय ४० मिनट है।

४—प्रत्येक भाग के आरम्भ में, उसे करने के लिये आवश्यक आदेश दे दिये गए हैं। उन्हें ध्यान से पढ़ो और तुरन्त ही कार्य आरम्भ करो।

५—किसी भी प्रश्न पर अधिक समय न लगाओ। पहले पहल सरल प्रश्नों को कर डालो। यदि समय शेष रहे तो कठिन प्रश्नों को करो।

६—प्रत्येक भाग के लिये कोई निश्चित समय नहीं है।

७—तुम से यह आशा है कि प्रत्येक भाग के जितने अधिक से अधिक प्रश्न तुम कर सकते हो करोगे।

८—उत्तरों को अन्दाज से मत लिखो क्योंकि अन्दाज से तुम्हारे प्राप्तांक कम हो जावेंगे।

९—पेन्सिल से ही लिखो। यदि किसी उत्तर को बदलना हो तो उसे रबड़ से मिटाकर साफ लिखो।

भाग १

आदेश—नीचे के अधिकांश विभाग दो स्तम्भों में बटे हुये हैं। प्रथम स्तम्भ के प्रत्येक वाक्य का उत्तर दूसरे स्तम्भ में दिया गया है। तुम्हें सही उत्तर ढूंढ़ना है। इस उत्तर के कोष्ठक में लिखे हुए अक्षर को प्रथम स्तम्भ के बाईं ओर सामने वाले खाली कोष्टकों में लिखना है। उदाहरण के लिये पहले प्रश्न को हल कर दिया गया है। इसी प्रकार बाकी आठ विभागों के प्रश्नों को जहाँ तक तुम कर सकते हो करो।

प्रथम विभाग—नीचे लिखे पदार्थों के एक अणु के लिए कौन सा रसायनिक सूत्र है ?

(अ)	१—नाइट्रिक आक्साइड	(अ) H_2SO_4
( )	२—अमोनियम क्लोराइड	(आ) $KMnO_4$
( )	३—नाइट्रस आक्साइड	(इ) $NaCl$
( )	४—शोरे अम्ल या नाइट्रिक एसिड	(ई) $CaCO_3$
( )	५—पोटास	(उ) $(NH_4)_2SO_4$
( )	६—गन्धक का अम्ल या सलफ्यूरिक एसिड	(ऊ) HNO_3
( )	७—हाइड्रोजन सल्फाइड (सल्फ्यूरेटेड हाईड्रोजन)	(ए) NH_4OH
( )	८—अमोनियम सल्फेट	(ऐ) NH_4Cl
( )	९—सोडियम क्लोराइड	(ओ) H_2S
		(औ N_2O
		(अं) $Ca[OH)_2$
		(अः) NO

द्वितीय विभाग—निम्नलिखित को किन इकाइयों में नापते हैं ?

( )	१—घनत्व	(क) फुट पौन्ड
( )	२—ताल की शक्ति	(ख) सेन्टीमीटर, प्रतिसेकिन्ड प्रतिसेकिन्ड
( )	३—गुप्त ताप	(ग) ऐम्पीयर
( )	४—कार्य	(घ) वोल्ट
((	५—ताप की मात्रा	(ङ) डाइन

( ) ६—विभव अन्तर	(च) फुट पौन्ड प्रति सेकिन्ड
( ) ७—बल	(छ) ग्राम प्रति घ० सेन्टीमीटर
( ) ८—शक्ति	(ज) कैलोरीज
( ) ९—दबाव	(झ) डाइप्टर (Dioptre)
( ) १०—विद्युत धारा	(ञ) कैलोरीज प्रति ग्राम
	(ट) पौन्ड भार
	(ठ) पौन्ड भार प्रति वर्ग इन्च

तृतीय विभाग—नीचे बाईं ओर नौ विधियाँ दी हुई हैं। दाहिनी ओर उन्हीं के दस वर्णन दिए हुए हैं। ये वर्णन क्रम से नहीं हैं। विधियों के उपयुक्त वर्णन ढूँढ़कर उनके कोष्टकों के अक्षरों को बाईं ओर दिए गए खाली कोष्टकों में भरो।

( ) १—संचालन	(अ) एक अनघुल पदार्थ किसी द्रव से अलग करने की विधि।
( ) २—विद्युत विश्लेषण	(आ) एक पार दर्शक माध्यम से दूसरे पारदर्शक माध्यम को तिरछी जाने वाली प्रकाश की किरण का झुक जाना है।
( ) ३—सम्वहन	(इ) ठोसों में एक बिन्दु से दूसरे तक ताप जाने की विधि।
( ) ४—आवर्तन	(ई) घुले हुए पदार्थ को द्रव से अलग करने की विधि।
( ) ५—स्रावन	(उ) द्रव में ताप का एक बिन्दु से दुसरे बिन्दु तक जाने की मुख्य विधि।
( ) ६—विकिरण	(ऊ) कोष से पानी निकल जाने पर उसके प्रोटोप्लाजम का सिकुड़ना और बैठ जाना।
( ) ७—वाष्पीकरण	(ए) घोल में स्थिति द्रवों तथा पदार्थों का शोषक तथा अर्धशोषक झिल्लियों से होकर प्रवेश करने की विधि।
( ) ८—रसकोच	(ऐ) विद्युतधारा द्वारा किसी पदार्थ का रासायनिक विश्लेषण करने की विधि।

(   ) ६—रसाकर्षण (ओ किसी घोल से शुद्ध जल प्राप्त करने की विधि।

(औ) बीच के माध्यम को बिना अच्छी तरह गर्म किए हुए ताप की किसी स्थान से हम तक पहुँचने की विधि।

चतुर्थ विभाग—नीचे दिये हुये प्रथम स्तम्भ को सामान्य संज्ञाओं के रासायनिक नाम बताओ।

(   ) १—खड़िया (क) कांपर सल्फेट
(   ) २—बुझा चूना (ख) सोडियम क्लोराइड
(   ) ३—नीला थोथा (ग) जिन्क सल्फेट
(   ) ४—धोने का सोड़ा (घ) कैल्शिमय कारबोनेट
(   ) ५—शोरा (ङ) पोटैशियम हाइड्रोआक्साइड
(   ) ६—साधारण नमक (च) कैल्शियम सल्फेट
(छ) सोडियम कारबोनेट
(ज) सोडियम हाइड्रो आँक्साइड
(झ) कैल्शियम हाइड्रो आँक्साइड
(ञ) सोडियम नाइट्रेट
(ट) जिन्क कारबोनेट
(ठ) पोटैशियम नाईट्रेट।

पंचम विभाग—आगे दिया गया रेखा चित्र आँख की बनावट दिखलाता है। रेखा चित्र में कौन सा तीर सूचक निशान नीचे लिखे भागों को सूचित करता है ?

(   ) १—कार्निया
(   ) २—तारा
(   ) ३—दृष्टि नाड़ियाँ
(   ) ४—मूर्ति-पट

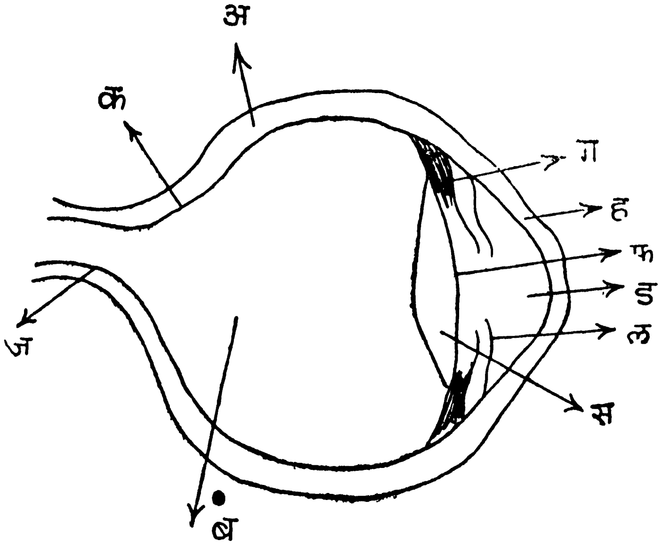

षठम विभाग—नीचे दिया गया रेखा चित्र, लम्बाई में कटा हुआ फूल का आधा भाग है। निम्नलिखित को कौन सा तीर सूचक निशान बतलाता है ? (वस्तुओं के सामने के कोष्टों में तीर सूचकों के अक्षरों को लिखो)

( ) १—अन्डयों
( ) २—स्तम्भक
( ) ३—पंखुड़ी
( ) ४—पुंकेसर
( ) ५—अंखुड़ी

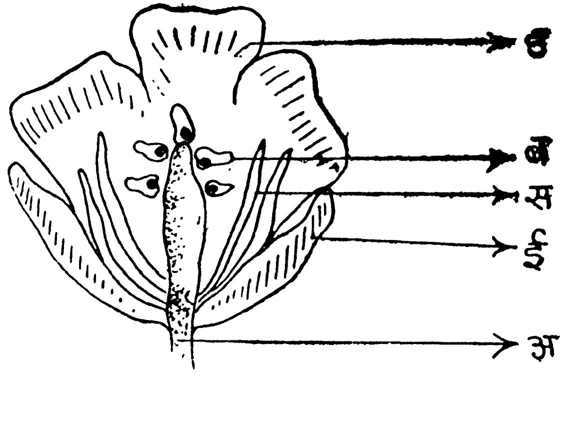

सप्तम वभाग—नीचे दिये रेखा चित्र में विद्युत् परिपथ दिखाया गया है। नीचे लिखी वस्तुओं को कौन सा तीर सूचक बतलाता है ?

(   ) १—वोल्ट मापी

(   ) २—अम्मापी

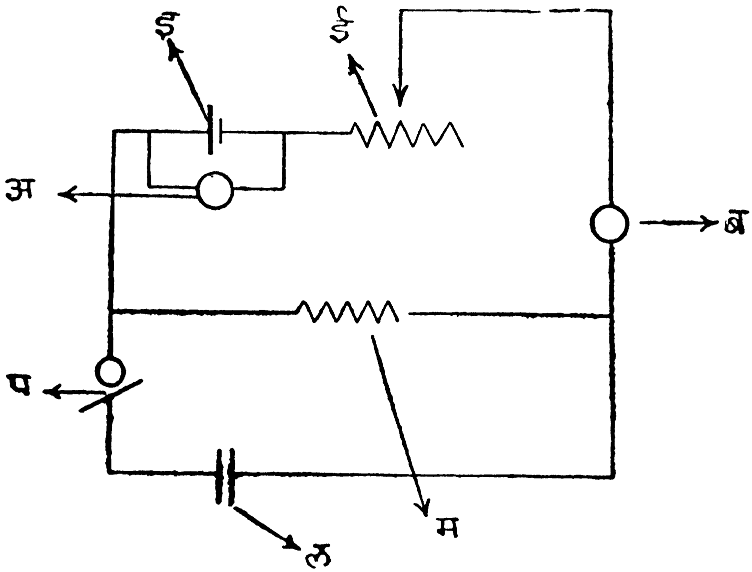

(   ) ३—परिवर्ती प्रतिरोधक

(   ) ४—बैटरी

(   ) ५—निश्चित प्रतिरोधक

(   ) ६—कुन्जी

(   ) ७—संधारित्र (Condenser)

भाग २

आदेश—नीचे लिखे हुए प्रत्येक प्रश्न के पाँच उत्तर दिये गये हैं। प्रत्येक प्रश्न से सही उत्तर छाँटो और उसके सामने लिखे अक्षर को कोष्टक में बाँई ओर लिखो ? प्रथम प्रश्न उदाहरण के रूप में हल किया गया है।

वायुमण्डल का दबाव नापने वाले यन्त्र को कहते हैं :—

१—(ब) (अ) थर्मामीटर (ब) बैरोमीटर (स) पाइरोमीटर (द) लैक्टोमीटर (य) हाइड्रोमीटर।

२—लोहे के एक टुकड़े का हवा में भार १० पौन्ड है और उसका पानी में भार ८·७ पौन्ड है। उसका आपेक्षिक घनत्व बराबर होगा।

(   ) (अ)·१३ (ब) १·८७ (स) ७·७ (द) ८·७ (य) १०

३—ठन्डी जलवायु में ऊनी कपड़ों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि :

(   ) (अ) वे काफी समय तक चलते हैं। (ब) वे शरीर को गर्मी देते हैं। (स) वे शरीर से कम गर्मी निकलने देते हैं। (द) वे सूती कपड़ों से भारी होते हैं। (य) वे देखने में सुन्दर लगते हैं।

४—नीचे के चित्र में एक वस्तु अवतल दर्पण के सामने मुख्य संगम (स) तथा दर्पण के बीच रक्खी है उसका बिम्ब :—

(   ) (अ) वस्तु के बराबर, वास्तविक और उलटा होगा। (ब) वस्तु से बड़ा, सीधा और वास्तविक होगा। (स) वस्तु से बड़ा, उलटा और वास्तविक होगा। (द) वस्तु से बड़ा, सीधा और काल्पनिक होगा। (य) वस्तु से छोटा, उलटा और वास्तविक होगा।

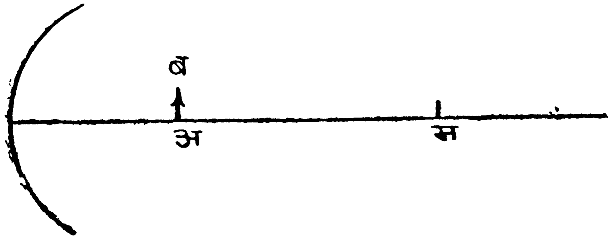

५—यह सत्य नहीं है कि उतल दर्पण से बना हुआ बिम्ब सदैव :—

(   ) (अ) काल्पनिक होगा (ब) मन्द होगा (स) सीधा होगा (द) दर्पण से उतनी ही दूर पीछे होगा जितनी कि वस्तु दर्पण के सामने दूर है। (य) दर्पण के पीछे उतनी दूरी पर नहीं होगा जितनी कि वस्तु दर्पण के सामने है।

६—इनमें से कौनसा कथन कार्बन डाई-आक्साइड के लिए सत्य नहीं है :—

(   ) (अ) कार्बन डाई-आक्साइड रङ्गहीन गैस है। (ब) कार्बन डाई-आक्शाइड में हल्की गन्द होती है। (स) कार्बन डाई-आक्साइड में हल्का स्वाद होता है। (द) कार्बन डाई-आक्साइड साधारण कमरे के तापक्रम में दबाव द्वारा द्रवीभूत की जा सकती है। (य) कार्बन डाई-आक्साइड हवा से हल्की होती है।

७—निम्न में से कौन सा ढङ्ग कार्बन डाई-आक्साइड बनाने का नहीं है।

( ) (अ) कार्बन को हवा में जलाने से। (ब) हल्के अम्ल की भिन्न भिन्न कार्बोनेटों पर क्रिया से। (स) सोडियम कार्वोनेट को गरम करने से। (ब) जानवरों के साँस लेने से। (ध) किन्वन (सड़ने के विधि से) (fermentation)

८— नीचे लिखे द्रवों में से कौन सा नीले लिटमस को लाल करता है—

( ) (अ) नीबू का रस (ब) सोडा वाटर (स) अल्कोहाल (द) कास्टिक सोड़ा का घोल (ध) सोडियम हाइड्रो आक्साइड का घोल।

९—निम्नलिखित में कौन सा सूत्र गन्धक के अम्ल के तीन अणु संबोधित करता है।

( ) (अ) ३$HSO_४$ (ब) ३$H_2SO_४$ (स) ३$H_3SO_४$ (द) ३$H(SO_४)_3$ (ध) H_3 $SO_४$

१०—निम्नलिखित में कौन से बीजों में याँत्रिक विधि के द्वारा विकिरण होता है।

( ) (अ) मटर (ब) नारियल (स) कालो वेर (द) चेरी (ध) पौपी।

११—निम्नलिखित में कौन ठन्डे खून का जानवर है:—

( ) (अ) तोता (ब) खरगोश (स) मनुष्य (द) बतख (ध) रैप्टाइल (Reptile)

१२—निम्नलिखित में से किसके कोष्टकों से पित रस निकलता है:—

( ) (अ) ड्यूडेनम (ब) रेक्टम (स) यकृत (द) आमाशय (ध) क्षुद्र आंत (ileum)।

१३—निम्नलिखित में कौन सा विकर (Enzyme) वसा को प्रतिलम्बित करता और गलाता है।

( ) (अ) रेनिन (ब) डाईस्टेज (स) ट्रिपसिन (द) पेपसिन (ध) लाइपेज।

१४—निम्नलिखित में किसकी कमी के कारण जानवरों के खराब दाँत तथा कमजोर हड्डियाँ हो जाती हैं।

( ) (अ) विटामिन 'डो' (ब) विटामिन 'ए' (स) विटामिन 'ई' (द) बिटामिन 'वी' (ध) मिटामिन 'सी'

१५—निम्नलिखित में किस पदार्थ में प्रोटीन की सबसे अधिक मात्रा प्राप्त होती है :—

( ) (अ) चावल (ब) अण्डे की सफेदी (स) सब्जी (द) फल (ध) दूध।

१६—हृदय से रुधिर को ले जाने वाली नालियों को।

( ) (अ) शिरायें (ब) कोशकायें (स) धमनियाँ (द) ट्रेकिया (ध) नाड़ियाँ कहते हैं।

१७—जब वायु नाक से होकर फेफड़ों में पहुँचती है तो नीचे लिखे हुए में से किस भाग से होकर नहीं जाती।

( ) (अ) ग्रस्वनिका (ब) स्वर यन्त्र (स) टेटुआ (द) वायु प्रणालियाँ (ध) प्रणालि विहीन ग्रन्थियाँ।

१८—मोटर कारों में किस प्रकार के दर्पण का प्रयोग होता है :—

( ) (अ) समतल दर्पण (ब) अवतल (स) समतल और अवतल मिला हुआ (द) उतल (ध) समतल और उतल मिला हुआ।

१९—निम्नलिखित में से कौन फोटोसिन्थेसिस के लिए आवश्यक नहीं है :—

( ) (अ) कार्बन डाई आक्साइड (ब) पानी (स) नाइट्रोजन (द) गर्मी (ध) प्रकाश।

२०—वाष्पीकरण द्वारा जल का पौधे के कोष्टकों से कोष्टकों के बीच के भाग में जाने की विधि तथा स्टोमेटा से भाप निकलने की विधि को कहते हैं।

( ) (अ) श्वासोच्छ्वास क्रिया (ब) आसमोसिस (रसाकर्षण) (स) अन्तचूषण (द) रसकोच (ध) ट्रांसपाइरेशन।

२१—इनमें कौन सा मिश्रण है यौगिक नहीं :—

( ) (अ) जल (ब) हवा (स) लोहे का सल्फाइड (द) नमक (ध) गन्धक का अम्ल।

२२—इसमें कौनसा तत्व नहीं है :—

( ) (अ) ताँबा (ब) हाइड्रोजन (स) पीतल (द) सोडियम (ध) कैलशियम।

२३—नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के संश्लेषण द्वारा अमोनिया का व्यापारिक विधि से बनाने में फैरिक आक्साइड का प्रयोग किस रूप में किया जाता है :—

(   ) (अ) अवकारक (ब) विरन्जन कारक (स) आक्सीकारक (द) निर्जलीकारक (ध) उत्प्रेरक ।

२४—हम साधारण रूप से सामान्य नमक को कह सकते हैं :—
(   ) (अ) प्रक्लेद्य (ब) आर्द्रताग्राही (स) प्रस्फुटित (द) जलयोजित (ध) अकेलास

२५—इनमें कौनसा हाइड्रो आक्साइड पानी में घुलनशील हैं :—
(   ) (अ) अमोनियम हाइड्रो आक्साइड (ब) कैलशियम हाइड्रो आक्साइड (स) वैरियम हाइड्रो आक्साइड (द) जस्ते का हाइड्रो आक्साइड (थ) ताँबे का हाइड्रो आक्साइड ।

भाग ३

आदेश—नीचे लिखे प्रश्नों में "अ" और "ब" रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी है। तुमको अपने उत्तर कोष्टकों के अन्दर लिखने हैं। प्रथम प्रश्न उदाहरणार्थ तुम्हारे लिए हल किया गया है।

१—पौधे रात्रि के समय (अ)······लेते हैं और (ब)······देते हैं।
(आक्सीजन) (अ)। (कार्बन डाइ-आक्साइड) (ब)

२—दांत जिनका कार्य मांस चीरना है उन्हें (अ)······कहते हैं।
(   ) (अ)

३—मछलियाँ श्वासोच्छ्वासक्रिया के लिये अपने······(अ) द्वारा पानी से (ब)·········लेती हैं।
(   ) (अ)। (   ) (ब)

४—जब धातु के कार्बोनेट्स का गर्मी के द्वारा विच्छेदन किया जाता है तो·········(अ) निकलता है और धातु का············(ब) बच रहता है।
(   ) (अ)।   (   ) (ब)

५—१०० सेन्टीग्रेड तापक्रम को फाइरनहाइट स्केल में बदलने से······(अ) होता है।
(   ) (अ)

६—रक्त के द्रव वाले भाग को·········(अ) कहते हैं।
(   ) (अ)

७—नीचे एक ठोस कांच का चित्र खिचा है इस पर एक प्रकाश की किरण पड़ रही है। यह किरण कांच के अन्दर तथा कांच से बाहर आकर किस तरह चलेगी। चित्र में अंकित करो।

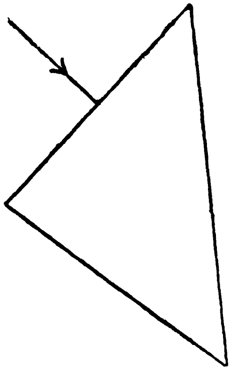

८—नीचे दिए चित्र में "स" सूर्य, "म" चन्द्रमा, और "ई" पृथ्वी को अंकित करता है--

कौन से चाप पूर्ण ग्रहण के भाग को संबोधित करते हैं ?

( ) ( )

कौन से चाप अर्ध ग्रहण के भाग को संबोधित करते हैं ?

( ) ( )

कौन से चाप बिना ग्रहण वाले भाग को संबोधित करते हैं ?

( ) ( )

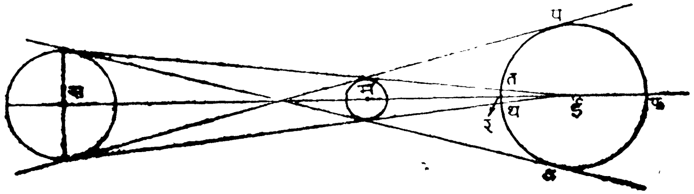

नोटः—कार्य समाप्त करने पर अपने स्थान पर बैठे रहो।

[विज्ञान परीक्षा में अंक प्रदान करने की कुंजी]

SCORING KEY FOR THE GENERAL SCIENCE TEST (FINAL TEST) HINDI VERSION

पृष्ठ १	पृष्ठ २	पृष्ठ ३	पृष्ठ ४	पृष्ठ ५
अ	घ	ब	स	आक्सीजन, कार्बन डाई आक्साइड

ऐ	झ		ध	कैंनाइ ´, सूल, कील
औ	क	स	अ	गिलस्, हवा या आक्सीजन
अ	छ		ब	कार्बन डाई आक्साईड, आक्साईड

पृष्ठ १	पृष्ठ २	पृष्ठ ३	पृष्ठ ४	पृष्ठ ५	
आ	ठ	स	स	२१२° फा० हा०	
अ	ख		ध		
ओ		द	द	प्लाजमा	
उ			स	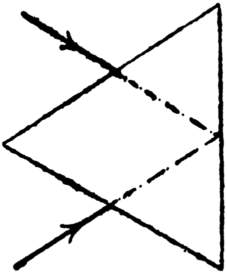	
इ	ह्	द	ध		
	फ	य	ब		
	ज	स	स		
छ	क	अ	घ	रत	रथ
झ		व	ब या अ	पत	थब
ञ		ऊ	अ	पफ	फब
क	ब	घ			
ज	अ				
घ	ड				
ड	स				
च	ई				
ठ					
ग	अ				
इ					
ऐ	ब				
उ	ई				
आ	इ				
ओ	म				
औ	प				
ई' अ, स	ल				

कक्षा १०, ११ तथा १२ के विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अङ्कों के प्रतिशतीय अङ्कों में परिवर्तित करने के लिए तालिका (Table)

(Table for Converting the raw scores of the X Class, XI Class and XII Class pupils to Percentile Scors)

CLASS X

Raw Scores	Percentile Scores	Raw Scores	Persentile Scores
1	1	31	84
2	2·5	32	86
3	3	33	87
4	4	34	88
5	5	35	90
6	7	36	92
7	8	37	93
8	10	38	94
9	11	39	95
10	13	40	96
11	14	41	96·5
12	16	42	97
13	18	43	97·5
14	22	44	98
15	26	45	98·5
16	29	46	99
17	32	47	99·5
18	36	48	99·5
19	40	49	100
20	44	50	100
21	48	51	100
22	54	52	100
23	58	53	100
24	62	54	100
25	66	55	100
26	70	56	100
27	74	57	100
28	76	58	100
29	78	59	100
30	81	60	100

CLASS XI

Raw Scores	Percentile Scores	Raw Scores	Percentile Scores
10	0	36	73
11	0	37	76
12	1	38	78
13	2	39	80
14	3	40	81
15	4	41	83
16	6	42	85
17	8	43	87
18	10	44	88
19	12	45	90
20	14	46	91
21	16	47	92
22	20	48	93
23	23	49	95
24	27	50	96
25	30	51	97
26	34	52	98
27	37	53	98·2
28	40	54	98·5
29	44	55	99
30	49	56	99·5
31	54	57	100
32	58	58	100
33	63	59	100
34	66	60	100
35	70		

CLASS XII

Raw Scores	Percentile Scores	Raw Scores	Percentile Scores
10	0	41	56
11	0	42	58
12	0	43	62
13	0	44	64
14	0	45	68
15	·2	46	70
16	·5	47	72
17	1	48	76
18	1	49	78
19	1·5	50	80
20	2	51	82
21	2·5	52	83
22	3	53	85
23	4	54	86
24	6	55	88
25	7	56	90
26	9	57	91
27	11	58	93
28	12	59	94
29	14	60	95
30	16	61	97
31	19	62	98
32	22	63	98·2
33	26	64	99
34	29	65	99·8
35	32	66	100
36	36	67	100
37	41	68	100
38	44	69	100
39	48	70	
40	52		

प्रश्न

१—आपकी समझ में विज्ञान परीक्षा की क्या २ विशेषताएं होनी चाहिए ? उदाहरण देकर समझाइये ।

२—विज्ञान विषय की निबन्धात्मक परीक्षाओं में क्या २ दोष हैं ? उन दोषों को दूर करने के लिये अपने सुझाव दीजिये ।

३—आप एक विज्ञान की साफल्य परीक्षा का निर्माण किस प्रकार करेंगे तथा उसका प्रमापीकरण किस प्रकार करेंगे ?

४—अध्यापक निर्मित तथा प्रमापीकृत विज्ञान की साफल्य परीक्षा के क्या २ गुण तथा दोष हैं ? समझाकर लिखिये ।

विज्ञान शिक्षण सम्बन्धी पाठ-सूत्रों के कुछ नमूने

पाठ-सूत्र—१

दिनांक—२०-३-१९५८ **विद्यालय**—महात्मा गांधी विद्यालय
कक्षा—६ **अन्तर**—प्रथम **समय**—४० मि०

विषय—सामान्य-विज्ञान (वनस्पति शा०) **उपविषय**—पुष्प के भाग और उसके कार्य।

सामान्य-उद्देश्य—(१) छात्रों की मानसिक तथा तार्किक शक्तियों का विकास करना।
(२) छात्रों को वैज्ञानिक रीति से सोचने की क्षमता प्रदान करना।
(३) छात्रों को प्रकृति के विषय में ज्ञान कराना।
(४) छात्रों में विज्ञान के प्रति प्रेम जागृत कराना ताकि वे दैनिक जोवन में लाभ उठा सकें।
(५) उनमें निरन्तर परिश्रम करने की आदत डालना।
(६) उनकी विचारात्मक मौलिकता को प्रोत्साहन देना।

मुख्य-उद्देश्य—छात्रों को पुष्प के अंगों एवं उनके कार्यों का ज्ञान करना।

सहायक-सामग्री—(१) गुड़हल के फूल तथा डण्ठलयुक्त एवं डण्ठलविहीन पुष्प।
(२) फोल्डर पर बना पुष्प का चित्र।

गुड़हल का पुष्प

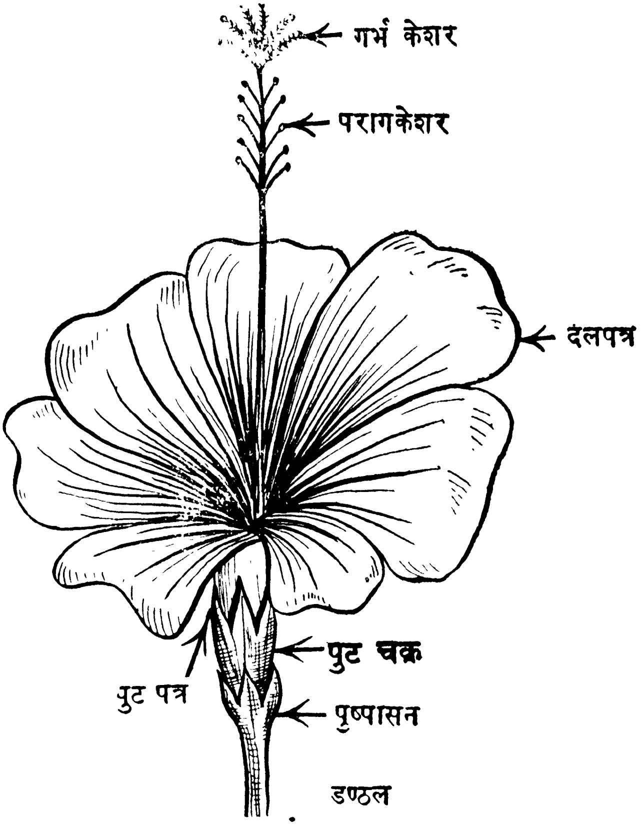

पूर्व-ज्ञान—छात्र दैनिक जीवन में पेड़-पौधों, फल, और फूलों को देख चुके हैं।

प्रस्तावना—	**प्रश्न**	**प्रत्याशित उत्तर**
	(१) पौधों के मुख्य भाग कितने होते हैं ?	पौधों के मुख्य भाग छः होते हैं।
	(२) वे छः भाग कौन-कौन होते हैं ?	वे भाग—जड़, तना, शाखाएँ, पत्तियाँ, फल और फूल होते हैं।
	(३) पौधे का सबसे आकर्षक भाग कौन होता है ?	पौधे का सबसे आकर्षक भाग पुष्प होता है।

उद्देश्य कथन—आज हम पुष्प के विभिन्न भागों एवं उनके कार्यों का अध्ययन करेंगे।

पाठ्योपस्थापन—शिक्षण सुविधा के लिये प्रस्तुत पाठ को दो अन्वितियों में विभक्त किया जायेगा :—

(१) पुष्प के अनावश्यक अंग तथा उनके कार्य।

(२) पुष्प के आवश्यक अंग तथा उनके कार्य।

पुष्प के अनावश्यक भाग

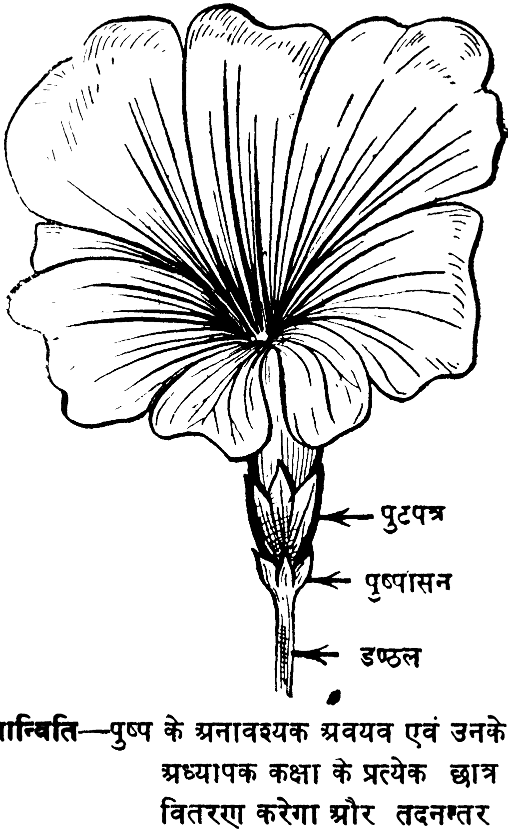

प्रथमान्विति—पुष्प के अनावश्यक अवयव एवं उनके कार्य।

अध्यापक कक्षा के प्रत्येक छात्र को एक-एक पुष्प वितरण करेगा और तदनन्तर उनसे निम्न प्रश्न करेगा :—

१—पुष्प का कौन सा भाग टहनी से जुड़ा रहता है ?	(१) पुष्प का निचला भाग टहनी से जुड़ा रहता है।
२—पुष्प के इस निचले भाग को क्या कहते हैं ?	(२) इस निचले भाग को डण्ठल कहते हैं।

३—पुष्प में डण्ठल का क्या उपयोग है ?	(३) यह पुष्प को थामे रहता है।

अध्यापक द्वारा कथन—कुछ पुष्प ऐसे भी होते हैं जिनमें डण्ठल नहीं होते; जैसे—गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा और भिण्डी।

३—डण्ठल का ऊपरी भाग किस आकार का है ?	(३) ऊपरी भाग मोटा है।
४—इस मोटे भाग को किस नाम से पुकारा जाता है ? (यदि विद्यार्थी न बता सकें तो अध्यापक स्वयं बतायेगा)	(४) इसको स्तम्भक या पुष्पासन् कहते हैं।
५—पुष्पासन् पर कौन-कौन भाग जुड़े हैं ?	(५) इस पर डण्ठल, हरी पत्तियाँ, रङ्गीन पत्तियाँ और कुछ सूत्र मिले हैं।
६—डण्ठल के ऊपर सबसे बाहर की ओर क्या देख रहे हो ?	(६) हरी पत्तियाँ देख रहे हैं।
७—इस पुष्प में कितनी हरी पत्तियाँ हैं ? अध्यापक बतलायेगा, इस एक पत्ती को पुट-पत्र के नाम से पुकारा जाता है और सब पुटपत्रों को पुट-चक्र के नाम से पुकारा जाता है।	(७) इस पुष्प में ५-६ हरी पत्तियाँ हैं।
८—पुट-चक्र का क्या काम होता है ?	(८) पुटचक्र कलियों की रक्षा करता है।

अध्यापक द्वारा कथन—कुछ पुष्प ऐसे भी होते हैं जिनमें पुटचक्र अलग नहीं होता है; जैसे—प्याज।

तदनन्तर अध्यापक छात्रों को आदेश देगा कि वे अपने पास के पुष्प के पुटचक्रों को सावधानी से हटा दें। पुनः निम्नलिखित प्रश्न किये जायेंगे:—

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
९—पुट-चक्र के अन्दर कौन सा भाग देख रहे हो ?	(९) पुष्प की रंगीन पत्तियाँ दीख रही हैं।

१०—ये पत्तियाँ किस रंग की हैं ?	(१०) ये पत्तियाँ लाल रंग की हैं।
११—ये कितनी रंगीन पत्तियाँ हैं ? अध्यापक बतलायेगा कि इस एक रंगीन भाग को दल-पत्र कहते हैं और इन सभी दल-पत्रों के समूह को दल-चक्र कहते हैं।	(११) ये ५ रंगीन पत्तियाँ हैं।
१२—दल-चक्र का क्या काम होता है ?	(१२) दल-चक्र मधुमक्खियों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

अध्यापक द्वारा कथन—कुछ पुष्प ऐसे भी होते हैं जिनमें दल-पत्र पृथक-पृथक नहीं होते वरन् आपस में मिले रहते हैं जैसे-तुरई, करेला, धनियाँ।

श्यामपट्ट संक्षेप—पुष्प के अनावश्यक भाग एवं उनके कार्य—

पुष्प के भाग	**कार्य**
डण्ठल	पुष्प को थामें रखता है, भोजन पहुंचाता है।
स्तम्भक	पुष्पों के अंगों को जुड़ाता है।
पुट-चक्र	पुष्प की रक्षा करता है।
दल-चक्र	कीट पतंगों को अपनी ओर आकर्षित करता है तथा सुगन्ध प्रदान करता है।

द्वितीयान्विति—पुष्प के आवश्यक अंग एवं उनके कार्य।

अध्यापक छात्रों को आदेश देगा कि वे दलपत्रों को सावधानी से हटा दें।

प्रश्न	**प्रत्याशित उत्तर**
१—दल-चक्र के हटाने पर अब तुम क्या देख रहे हो ?	(१) बीच में एक लम्बा सूत्र है।
२—इस लम्बे सूत्र के चारों ओर क्या देखते हो ?	(२) छोटे-छोटे सूत्र नजर आते हैं।

पुष्प के आवश्यक अंग

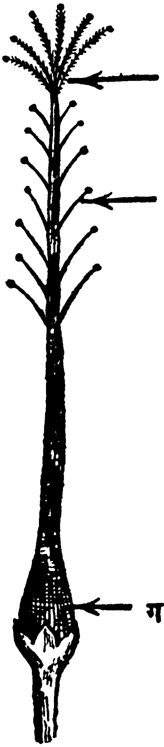

३—इन छोटे सूत्रों का ऊपरी भाग कैसा है ?	(३) इनका ऊपरी भाग कुछ चौड़ा है।
४—इन छोटे सूत्रों का निचला भाग कैसा है ?	(४) इनका निचला हिस्सा बारीक है।

अध्यापक द्वारा कथन—ये छोटे-छोटे सूत्र इसके नर अंग हैं। इनके ऊपरी चौड़े भाग को परागाशय या लिंगछत्र कहते हैं जिनमें पराग एकत्रित रहता है और निचले पतले भाग को परागसूत्र कहते हैं। जिस प्रकार बच्चा उत्पन्न होने में पुरुष का महत्व है वही स्थान इस भाग का फल उत्पन्न होने में है। परागाशय और पराग सूत्र को मिलाकर 'पुंलिग-चक्र, या पराग-केशर' के नाम से पुकारा जाता है।

५—पराग केशर में कौन-कौन मुख्य अङ्ग हुए ?	(५) परागाशय और पराग-सूत्र।
६—यह पुष्प का कौन सा भाग है ?	(६) यह पुष्प का नर भाग है।
७—पराग केशर किस पर जुड़े हैं ?	(७) पराग केशर एक लम्बे सूत्र पर जुड़े हैं।
८—यह फूल के किस भाग में स्थित है ?	(८) यह फूल के मध्य भाग में स्थित है।
९—इसका सबसे ऊपरी भाग कैसा है ?	(९) इसका सबसे ऊपरी भाग चौड़ा है।
अध्यापक द्वारा कथन—	इस चौड़े भाग को योनि छत्र कहते हैं।
१०—योनि छत्र का निचला भाग कैसा है ?	(१०) इसका निचला भाग बारीक है।
११—सबसे निचला भाग कैसा है ?	(११) सबसे निचला भाग गोल मोटा सा है।

गर्भ केशर एवं पराग केशर

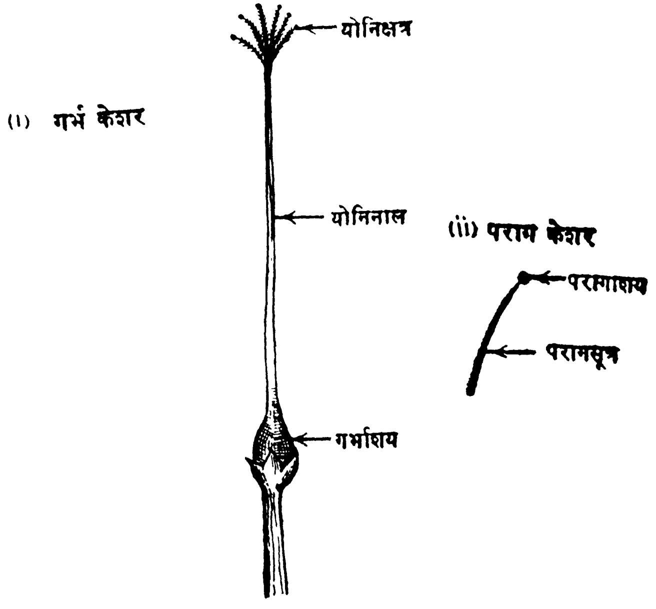

अध्यापक द्वारा कथन—पुष्प का यह स्त्री-अंग है। इसके ऊपरी चौड़े भाग को योनिछत्र, बारीक भाग को योनिनाल और सबसे निचले भाग को गर्भाशय के नाम से पुकारा जाता है। जो स्थान बच्चे उत्पन्न करने में स्त्री का है वही स्थान इसका फल उत्पन्न करने में है।

१२—योनिछत्र में तुम क्या देखते है ? (१२) इसमें एक चिपचिपा पदार्थ है।

अध्यापक द्वारा कथन—योनिसूत्र के भीतर एक बारीक छेद होता है जो गर्भाशय तक पहुँचता है। यह चिपचिपा पदार्थ ही पराग कणों को गर्भाशय तक पहुँचाता है। (श्यामपट पर चित्र बनाना) अध्यापक आगे बतायेगा कि कुछ पुष्प ऐसे भी होते हैं जिनमें परागकेशर और गर्भकेशर पृथक-पृथक होते हैं, एक ही फूल के अन्दर नहीं। (अध्यापक लौकी और पपीता के फूल दिखायेगा)। इसके अलावा और भी ऐसे फल होते हैं; जैसे—तुरई, करेला आदि। इनको एकलिंगी पुष्प कहते हैं।

श्यामपट संक्षेप—पुष्प के आवश्यक अङ्ग:—

परागकेशर—भाग—१—परागाशय, २—परागसूत्र पुष्प का पुरुष अङ्ग पराग को रखता है।

गर्भकेशर—भाग—१—योनिछत्र, २—योनिनाल ३—गर्भाशय; पुष्प का स्त्री भाग है, रजकण रखता है। रजकण और पराग-कण के मेल से फूल की उत्पति होती है।

पराग-केशर और गर्भकेशर के आधार पर फूलों के भेद—(१) एकलिंगी—तुरई, पपीता, करेला, लौकी।
(२) उभयलिंगी—गुड़हल, सरसों, धतूरा।

पुनरावृत्ति—(१) पुष्प के कौन भाग होते हैं ?
(२) पुष्प के स्त्रीभाग को किस नाम से पुकारा जाता है ?

अध्यापक छात्रों के सामने फोल्डर पर बने पुष्प को प्रस्तुत करेगा और छात्रों की सहायता से पुष्प के प्रत्येक अङ्ग के नाम लिखेगा ।

गृहकार्य—(१) अपनी कापी के पृष्ठ पर एक फूल का स्वच्छ चित्र बनाओ और प्रत्येक अङ्ग के नाम भी लिखिए ।

पाठ-सूत्र—२

विद्यालय :—भारतीय उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय
दिनांक:—१५-४-१६५८ **कक्षा**:—८ अ, **अन्तर** :-तीसरा, **समय** ४० मि०
विषय:—सामान्य विज्ञान; **उपविषय**:—तैरने का सिद्धान्त तथा पन्डूवी

सामान्य उद्देश्य :—(१) बालकों में अन्वेषण की भावना, तर्क शक्ति का विकास तथा वस्तुओं के ज्ञान की स्वयं निर्धारित करने की क्षमता प्रदान करना।
(२) उस गुण का विकास करना जिससे बालक निरीक्षण, स्वयं कार्य और कठोर श्रम करने के अभ्यासी हों।
(३) बालकों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करना।
(४) प्रकृति के नियमों का वैज्ञानिक परिचय देकर उनसे अन्धविश्वाश कीं भावना दूर करना।

विशिष्ट उद्देश्य :—बालकों को तैरने के सिद्धान्त का ज्ञान कराकर उन्हें पन्डूबी के कार्य का परिचय देना।

आवश्यक सामग्री :—नाव तथा पन्डूवी का नमूना, लड़की की वस्तु, नांद, बाट, गुब्बारा।

पूर्वज्ञान :—बालक आर्कीमिडीज के सिद्धान्त से परिचित हैं।

प्रस्तावना :—

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
१—एक वस्तु को पानी में डुबाया गया। उसपर कार्य करने वाले पानी के उछाल तथा उसके द्वारा हटाये गये पानी के भार में क्या सम्बन्ध होगा ?	(१) वस्तु पर कार्य करने वाला पानी का उछाल तथा उसके द्वारा हटाये गये पानी का भार आपस में बराबर होंगे।
२—यह वस्तु कितना आयतन पानी का हटायेगी ?	(२) यह वस्तु अपने आयतन के बराबर आयतन पानी का हटायेगी
३—उछाल का बल वस्तु को किस दिशा में ले जाना चाहता है ?	(३) उछाल का बल वस्तु को ऊपर की ओर ले जाना चाहता है ।
४—वस्तु का भार उसको किस दिशा में ले जाना चाहता हैं। एक वस्तु "क" को एक वल नीचे की ओर खींच रहा है और दूसरा ऊपर की ओर धक्का दे रहा है।	(४) वस्तु का भार उसको नीचे को ओर ले जाना चाहता है।
५—यदि इनमें से एक बल अधिक हो तो वस्तु किस दिशा में जायेगी ?	(५) वस्तु अधिक बल वाले की दिशा में जायेगी।
६—यदि ये दोनों बल बराबर हों तो वस्तु किस दिशा में जायेगी ?	(६) वस्तु अपने स्थान पर स्थिर रहेगी।
७—लोहे की वस्तु को पानी में डालने पर क्या होता है ?	(७) वह पानी में डूब जाती है ।
८—लड़की की वस्तु को पानी में डालने पर क्या होता है ?	(८) वह पानी में तैरने लगती है।

उद्देश्य कथन :—आज हम वस्तुओं के तैरने के सिद्धान्त का अध्ययन करते हुये यह ज्ञात करेंगे कि पन्डूबी किस प्रकार कार्य करता है।

पाठ को सुविधा के हेतु दो अन्वितियों में बाँटा गया है :—

प्रथम अन्विति :—

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
अध्यापक पानी से हल्की एक वस्तु को पानी पर छोड़ेगा और प्रश्न करेगा :—	
१—किश्ती को पानी पर छोड़ने से क्या होता है ?	(१) किश्ती पानी पर तैरती है ।
२—इस वस्तु को पानी पर छोड़ने से क्या हो रहा है ?	(२) यह पानी पर तैर रही है ।
३—वस्तु का भार इसको किस दिशा में ले जाना चाहता है ।	(३) भार इसको नीचे की ओर ले जाना चाहता है ।
४—पानी का उछाल वस्तु को किस दिशा में ले जाने का प्रयत्न कर रहा है ?	(४) पानी का उछाल इसको ऊपर की ओर ले जाना चाहता है ।
५—वस्तु पर इन दोनों बलों के लगने से यह किस बल की दिशा में जा रही है ?	(५) यह किसी भी बल की दिशा में नहीं जा रही है।
६—इन दोनों बलों में क्या संबंध होगा ?	(६) ये दोनों बल एक-दूसरे के बराबर होंगे ।
७—कोई भी वस्तु कब तैरती है ?	(७) कोई भी वस्तु तब तैरती है जब उसका भार और उस पर पानी का उछाल बराबर हो ।
अब हम इस वस्तु को पानी में डुबाना चाहते हैं ।	
८—हम इसको किस बल की दिशा में ले जाना चाहते हैं ?	(८) हम इसको भार की दिशा में ले जाना चाहते हैं ।
९—यह भार की दिशा में कब जा सकती है ?	(९) जब भार उछाल वाले बल से अधिक हो ।
१०—भार को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ?	(१०) वस्तु का भार बढ़ाकर ।
अध्यापक वस्तु के साथ बाट बाँधेगा और उसको डुबा देगा । यह वस्त अब पानी में डूबी है :—	

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
११—अब इस वस्तु के भार और उछाल में क्या सम्बन्ध है ?	(११) वस्तु का भार उछाल से अधिक है ।
१२—कोई भी वस्तु कब डूबती है ?	(१२) वस्तु तब डूबती है जब उसका भार उछाल से अधिक हो ।
अब हम इस वस्तु को ऊपर लाना चाहते हैं :—	
१३—हम वस्तु को किस बल की दिशा में ले जाना चाहते हैं ?	(१३) वस्तु को उछाल की दिशा में ले जाना चाहते हैं ।
१४—यह उछाल की दिशा में कब जा सकती है ?	(१४) जब पानी का उछाल वस्तु के भार से अधिक हो ।
१५—उछाल को भार से अधिक करने के लिये हमें किस बल को घटाना होगा ? अध्यापक वस्तु पर रखे भार को उठा देगा और इस प्रकार वस्तु ऊपर आ जायेगी ।	(१५) हमें वस्तु के भार को घटाना होगा ।
१६—उछाल को भार से अधिक करने के लिये हम किस बल को बढ़ायेंगे ?	(१६) हम पानी के उछाल को बढ़ायेंगे ।
१७—वस्तु पर कार्य करने वाला पानी का उछाल किसके बराबर होता है ?	(१७) वस्तु के द्वारा हटाये गये पानी के भार के बराबर ।
१८—वस्तु कितना आयतन पानी का हटायेगी ?	(१८) वस्तु अपने आयतन के बराबर आयतन पानी का हटायेगी ।
१९—इसलिये उछाल को बढ़ाने के लिये हमें क्या बढ़ाना होगा ?	(१९) हमें वस्तु का आयतन बढ़ाना होगा ।
अध्यापक गुब्बारे में हवा भरेगा :—	
२०—गुब्बारे में हवा भरने से गुब्बारे के आयतन में क्या अन्तर आयेगा ?	२०—गुब्बारे का आयतन बढ़ जायेगा ।

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
२१—इस प्रकार वस्तु और गुब्बारे के आयतन के योगफल में क्या अन्तर आयेगा ?	(२१) वस्तु और गुब्बारे के आयतन का योग-फल भी बढ़ जायेगा।
२२—आयतन बढ़ने से उछाल पर क्या प्रभाव होगा ?	(२२) उछाल भी बढ़ जायेगा।
२३—उछाल के बढ़ने से वस्तु किस दिशा में जायेगी ?	(२३) वस्तु ऊपर को उठेगी।

यह वस्तु ऊपर को उठ रही है।

श्यामपट संक्षेप :—अध्यापक प्रश्नों द्वारा बालकों से निम्नलिखित संक्षेप निकालेगा :—

यदि किसी वस्तु को पानी में डुबाया जाता है तो उस पर दो बल कार्य करने लगते हैं—एक उसका भार और दूसरा पानी का उछाल।

यदि वस्तु का भार और पानी का उछाल बराबर हो तो वस्तु तैरेगी। यदि भार पानी के उछाल से अधिक हो तो वस्तु पानी में डूब जायेगी।

द्वितीय अन्विति:—

अध्यापक पन्डूबी का नमूना प्रस्तुत करेगा और बतलायेगा यह एक प्रकार का जहाज होता है जो पानी पर तैर सकता है। इसको इच्छानुसार पानी के अन्दर ले जाया जा सकता है। फिर सतह पर लाया जा सकता है :—

१—यदि पन्डूबी पानी पर तैर रहा है तो उसके भार और पानी के उछाल में क्या सम्बन्ध होगा ?	(१) पन्डूबी का भार और पानी का उछाल आपस में बराबर होंगे।

अब यदि इसे पानी में डुबाना चाहें :—

२—तो इसके लिये हमें कौनसा बल बढ़ाना होगा ?	(२) हमें पन्डूबी का भार बढ़ाना होगा।

इसमें हौज बने होते हैं जिसमें पानी भरने से इसका भार बढ़ जाता है और यह डूब जाता है।

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
माना हम उसे फिर सतह पर लाना चाहते हैं :—	
३—हम किस बल की दिशा में इसे ले जाना चाहते हैं ?	(३) हम इसे उछाल की दिशा में ले जाना चाहते हैं।
४—यह उछाल की दिशा में कब जा सकता है ?	(४) जब उछाल पन्डूबी के भार से अधिक हो।
५—उछाल को भार से अधिक किस प्रकार किया जा सकता है ?	(५) पन्डूबी का आयतन बढ़ाकर अथवा उसका भार घटाकर।

पन्डूबी का आयतन तो बढ़ाया नहीं जा सकता, इसीलिए हमें इसका भार घटाना होगा।

६—पन्डूबी का भार किस प्रकार बढ़ाया गया था ?	(६) इसमें पानी भरकर।
७—इसलिए इसका भार कैसे घटायेंगे ?	(७) इसमें से पानी निकाल कर।

इसके हौजों से पानी पम्पों द्वारा निकाल दिया जाता है :—

८—भार के उछाल से कम होने पर यह किस दिशा में जायेगा ?	(८) यह ऊपर को उठेगा।

श्यामपट संक्षेप—प्रश्नों द्वारा निम्नलिखित संक्षेप अध्यापक बालकों से निकालेगा :—पन्डूबी एक प्रकार का जहाज होता है जो पानी पर तैर सकता है। इसमें कुछ हौज बने होते हैं जिसमें पानी भरने से इसका भार उछाल से अधिक हो जाता है और यह डूब जाता है। इस पानी को पम्पों से निकाल देने पर इसका भार उछाल से कम हो जाता है और यह सतह पर आ जाता है।

पुनरावृत्ति—(१) पानी में डुबाई गयी वस्तु पर कार्य करने वाला पानी का उछाल और स्थानान्तरित जल के भार में क्या सम्बन्ध होता है ?

(२) लकड़ी पानी पर क्यों तैरती है ?

(३) लोहा पानी में क्यों डूब जाता है ?

(४) पन्डूबी को किस प्रकार पानी के अन्दर ले जाया जा सकता है ?

(५) पन्डूबी में से पानी निकाल देने पर वह क्यों ऊपर को उठने लगता है ?

गृहकार्य—वस्तुओं के तैरने का सिद्धान्त क्या है ? क्या कारण है कि लोहा पानी में डूब जाता है किन्तु लोहे का बना जहाज पानी पर तैरता है ?

पाठ-सूत्र — ३

विद्यालय—महावीर दिगम्बर जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
दिनांक—२०-२-५९ कक्षा, ९ अन्तर—सप्तम, समय—४० मिनट

सामान्य उद्देश्य—

(१) बालकों को प्रकृति एवं उसमें कार्य करने वाले नियमों का परिचय प्रदान करना।

(२) बालकों को निरीक्षण, परीक्षण, तर्कसंगत मनन आदि, व्यावहारिक प्रक्रियाओं का अभ्यास कराना।

(३) बालकों को वैज्ञानिक दृष्टि-कोण प्रदान करना।

(४) बालकों में धैर्य व स्वाध्याय व स्वावलम्ब की प्रवृति को जाग्रत करना।

विशिष्ट उद्देश्य—

छात्रों को कृत्रिम वर्धी प्रजनन से परिचय कराना।

सहायक सामग्री—(१) कृत्रिम विधियों का चित्र।
(२) कृत्रिम विधियों के कुछ मॉडल।

पूर्व-ज्ञान--छात्र जानते हैं कि प्राकृतिक व कृत्रिम दो प्रकार के प्रजनन होते हैं। छात्र पौधों के प्राकृतिक वर्धी प्रजनन से परिचित हैं।

प्रस्तावना—

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
१—वर्धी प्रजनन किसे कहते हैं ?	(१) प्रजनन की वह क्रिया है जिसके द्वारा वनस्पति शरीर का कोई भी भाग उसी वर्ग के नवीन पौधों को जन्म देता है।
२—यह क्रिया कितने प्रकार की होती हैं ?	(२) यह क्रिया दो प्रकार की होती हैं। (i) प्राकृतिक वर्धी प्रजनन, (ii) कृत्रिम वर्धी प्रजनन।
३—प्राकृतिक वर्धी प्रजनन किसे कहते हैं ?	(३) वनस्पति शरीर का कोई भाग जब किसी प्रकार मुख्य पौधे से अलग उपयुक्त वातावरण में प्राकृतिक रूप से अपने आप उसी वंश के नवीन पौधों के रूप में जन्म लेता है।

उद्देश्य कथन—आज हम कृत्रिम वर्धी प्रजनन के विषय में ही अध्ययन करेंगे।

विषय प्रवेश—

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
१—तुम्हारे स्कूल के बगीचे में कौन-कौन से पुष्प हैं ?	(१) हमारे स्कूल के बगीचे में गेंदा, सूरजमुखी आदि पुष्प हैं।
२—गुलाब के पौधों को बगीचे में कैसे लगाते हैं ?	(२) इसके तनों को छोटे टुकड़ों में काटकर भूमि में खड़ा-खड़ा गाड़ देते हैं और पानी से सींचते रहते हैं।
३—पानी से क्यों सीचते हैं ?	(३) इसलिए सीचते हैं कि इसकी जड़ें जल्दी से निकल आयें और अपने को भूमि में दृढ़ता से स्थिर कर सकें।

४—जड़ें तनों के किस भाग से निकलती हैं ? (४) जड़ें तनों की गाठों से निकलती हैं।

कृत्रिम वर्धी प्रजनन

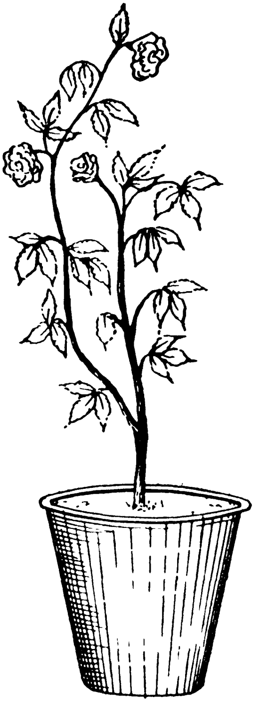

गुलाब का पौधा

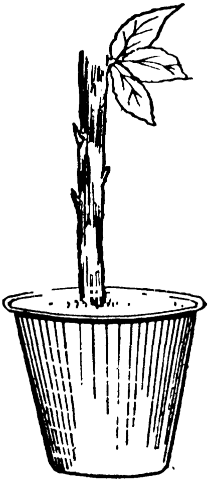

गुलाब की बैठाई हुयी डाल

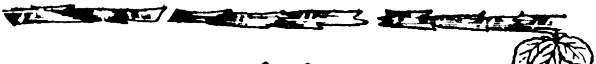

गुलाब की कटी हुयी डाल

१—डाल काटकर लगाना (Cutting)

अध्यापक द्वारा वर्णन—पौधों की डालों को काटकर लगाने की क्रिया को काटकर लगाना (Cutting) कहते हैं।

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
५—काटकर लगाने वालों के कुछ पौधों के नाम बताओ।	(५) गुलाब, गन्ना, अंगूर, चमेली, मेंहदी इत्यादि पौधे काटकर लगाये जाते हैं।
६—कुछ सुगंधित फूलों के नाम बताओ।	(६) गुलाब, बेला, चमेली, रात की रानी, जूही आदि सुगंधित फूल हैं।
७—बेला की किसी एक डाल को झुकाकर उसके बीच के भाग को मिट्टी से दबा दिया जाय तो कुछ दिन बाद क्या परिणाम निकलेगा ?	(७) कुछ दिनों बाद उसके दबे हुए भाग से जड़ें फूट निकलेंगीं।
८—किस प्रकार की डालें झुकाई जा सकतीं हैं ?	(८) जो डालें पतली, कोमल व लचकदार होंगी वे ही डालें झुकाई जा सकती हैं।

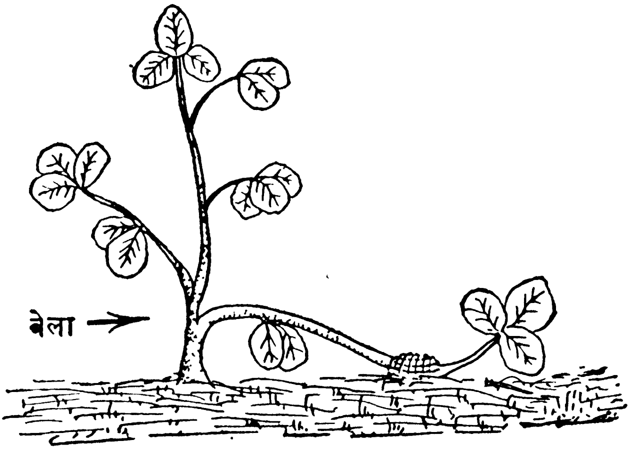

२—दाब लगाना (Layering)

९—इस प्रकार की डालों से नवीन पौधे कैसे बनाओगे ?	(९) इन डालों को झुकाकर पृथ्वी के अन्दर गाढ़ देंगे और बराबर सींचते रहेंगे।
१०—इससे क्या होगा ?	(१०) नई जड़ें प्रस्फुटित होंगी।
११—जड़ें निकलने पर क्या	(११) जड़ें जब काफी लम्बी व

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
करोगे ?	दृढ़ हो जायँ तो टहनी को पेड़ से काटकर अलग करेंगे।

अध्यापक द्वारा वर्णन—इस प्रकार डाल झुकाकर मिट्टी से दबा देना दाब लगाना (layering) कहलाता है।

१२—दाब लगाने से तुम क्या अर्थ समझते हो ?	(१२) पौधों की डाल को झुकाकर उसके किसी भाग को पृथ्वी में मिट्टी से दाब देते हैं।
१३—डाल का कौन भाग नहीं दबाओगे ?	(१३) डाल का अगला भाग नहीं दबायेंगे।
१४—अगला भाग क्यों नहीं दबाया जावेगा ?	(१४) अगला भाग इसलिये नहीं दबाया जायेगा क्योंकि अगला भाग इसकी वृद्धि मात्र है।

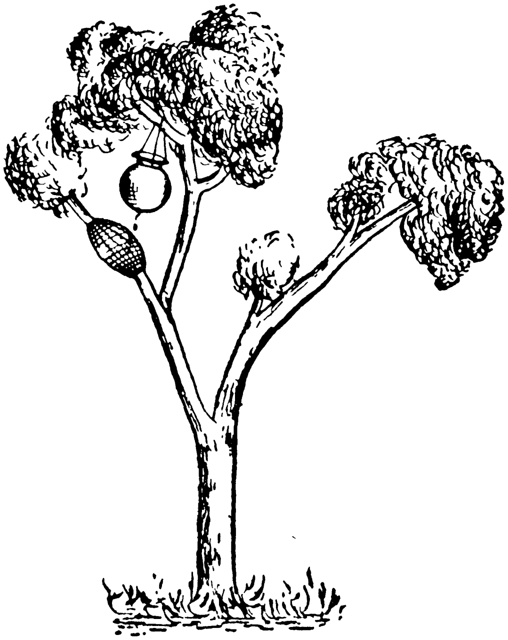

अमरूद

३—गुट्टी लगाना (Gotte)

१५—यदि इसको पृथ्वी में न	(१५) यदि आवश्यकता अनुसार

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
दबा कर वहीं मिट्टी बाँध दी जाय और उस पर पानी छोड़ा जाय तो क्या होगा ?	मिट्टी बाँधकर लगातर पानी छोड़ा गया तो उसमें भी जड़ें निकलना आरम्भ हो जायेंगी।
१६—जड़ें निकलने पर क्या करोगे ?	(१६) जड़ें निकल आने पर उस भाग को मुख्य पौधे से काट कर अलग कहीं लगा देंगे।

अध्यापक द्वारा वर्णन—पौधे के किसी डाल में गीली मिट्टी से बाँधकर उसे लगातार पानी द्वारा नम रखकर नये पौधे बनाये जा सकते हैं। इसे गुट्टी लगाना (Gotte) कहते हैं।

१७—कुछ मीठे फलों के नाम बताओ ?	(१७) केला, अमरूद, आम आदि मीठे फल हैं।
१८—आम कितने प्रकार के होते हैं ?	(१८) आम दो प्रकार के होते हैं।
१९—दो प्रकार के आम कौन हैं ?	(१९) कलमी आम और देसी तुकमी आम।
२०—तुकमी आम के पौधे को कलमी आम का पौधा किस प्रकार बनाओगे ?	(२) तुकमीं आम में कलमी आम की कलम लगा देंगे।
२१—कलम कैसे लगाओगे ?	(२१) तुकमी आम के तने को तिरछा काट देंगे और कलमी आम की तिरछी कटी हुई टहनी को इस पर इस प्रकार रखकर बाँध देंगे कि जोड़ एक-दूसरे पर ठीक से लग जाय।
२२—बाँधने के बाद क्या करते हैं ?	(२२) कोई लेप चढ़ा देते हैं।
२३—कुछ समय बाद इसकी क्या स्थिति हो जायेगी ?	(२३) कुछ दिनों बाद दोनों डालें मिलकर एक डाल हो जाती

है और पूर्ण रूप से जुड़ जाती है।

२४—जुड़ जाने पर यह आम का पौधा किस प्रकार का हो जाता है?

(२४) जुड़ जाने पर यह कलमी आम का पौधा हो जाता है।

४—कलम लगाना (Grafting)

२५—इससे क्या लाभ हुआ?

(२५) घटिया फल के पौधों से बढ़िया फल का पौधा बन जाता है।

अध्यापक द्वारा वर्णन—इस प्रकार से पौधे लगाने को कलम लगाना कहते हैं।

२६—फल किसके द्वारा बनते हैं?

(२६) फल पुष्प से बनते हैं।

२७—पुष्प किससे बनते हैं?

(२७) पुष्प कली से बनते हैं।

२८—कलियाँ कितने प्रकार की होती हैं?

(२८) कलियाँ दो प्रकार की होती हैं।

२९—दो प्रकार की कौन सी कलियाँ होती हैं?

(२९) अग्रस्थ कलिका और कक्षस्थ कलिका होती हैं।

३०—इन कलियों से पौधे के

(३०) इन कलियों से ही पौधे की

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
किन भागों का निर्माण होता है ?	शाख, पत्ती, पुष्प, फल आदि बनते हैं।
३१—यदि कली लगाने के बजाय किसी पौधे के तने में रख दो जाय तो क्या परिणाम होगा ?	(३१) कली उस पौधे की ही एक अंग बनकर एक शाख के रूप में विकसित होगी।
३२.—कली लगाने के लिए हमें किस बात की सावधानी रखनी चाहिए ?	(३२) कली का कोई भी भाग टूटने न पाय।
३३—यदि टूट गई तो क्या होगा ?	(३३) कली के वृद्धि अंङ्ग नष्ट हो जायेंगे और पौधे में कली विकसित न होगी।

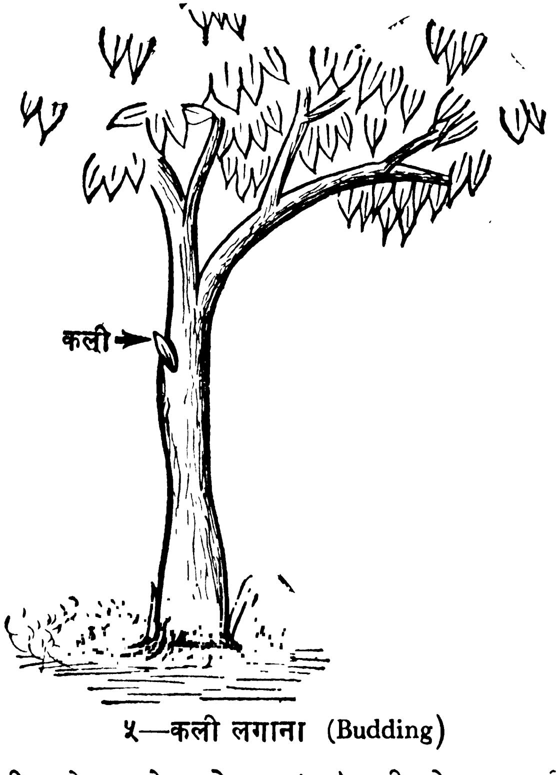

५—कली लगाना (Budding)

३४—कली टूटने न पाये इसके	(३४) कली को सावधानी से जड़

लिये क्या करोगे ?

समेत तोड़ेंगे ।

३५—रखने में टूट न जाय इसके लिये क्या करोगे ?

(३५) जिस पौधे की शाख में कली लगानी होगी उसमें पहले से ही गड्ढा कर देंगे ।

३६—गड्ढे में कली सुरक्षित रखने के लिये क्या करोगे ?

(३६) गड्ढे को किसी वस्तु से मूँद कर बाँध देंगे ।

३७—इस विधि को तुम क्या कहोगे ?

(३७) इसको कली लगाना कहेंगे ।

अध्यापक द्वारा वर्णन—कली द्वारा पौधों का लगाना कली लगाना (Budding) कहलाता है ।

श्यामपट सारांश

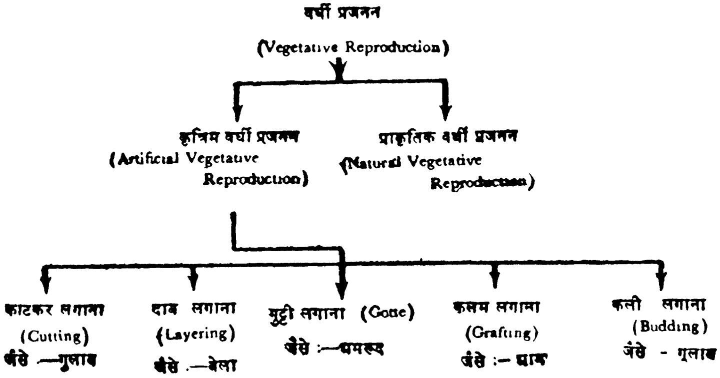

पुनरावृत्ति

१—पौधों में वनस्पति उत्पादन किन-किन रीतियों से होता है ?

१—काटकर लगाना किसे कहते हैं ? दो उदाहरण दो।

३—दाब लगाना किसे कहते हैं ? दो उदाहरण दो।

४—गुट्टी लगाना किसे कहते हैं ? दो उदाहरण दो।

गृह-कार्य

१—वर्धी प्रजनन से तुम क्या अर्थ समझते हो ? विभिन्न रीतियों का चित्र सहित वर्णन करो।

पाठसूत्र—४

विद्यालय—दयानन्द स्वामी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

दिनांक—१०-३-५८

अन्तर—प्रथम **समय**—४० मिनट

कक्षा—६

विषय—विज्ञान **उपविषय**—भौतिक विज्ञान (तार द्वारा समाचार भेजना)

सामान्य उद्देश्य—

१—छात्रों में वैज्ञानिक ढंग से विचार करने की क्षमता उत्पन्न हो जाय।

२—छात्रों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो जाय।

३—छात्र वैज्ञानिक विधियों का व्यावहारिक जीवन में सदुपयोग कर सकें।

४—छात्र विज्ञान की उपयोगिता समझ सकें।

५—छात्रों में कुछ वैज्ञानिक तथ्यों, सिद्धान्तों और प्रत्ययों का ज्ञान आजाय।

विशिष्ट उद्देश्य—

छात्र तार द्वारा समाचार भेजने की क्रिया और सिद्धान्त से भली-भाँति अवगत हो जायँ।

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर

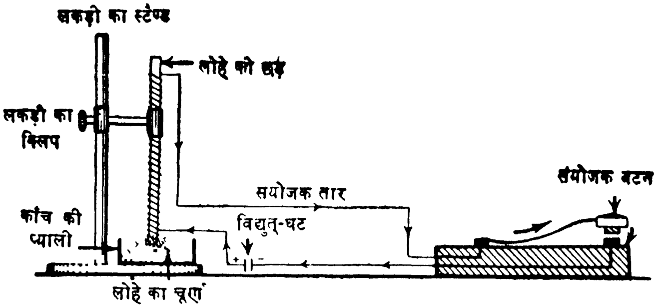

चित्र —१ विद्युत-चुम्बक पर विद्युत का प्रभाव

आवश्यक सामग्री—

१—समाचार-प्रेषक,
२—समाचार-ग्राहक
३—शुष्क विद्युत-घट
४—संयोजक-तार
५—विद्युत-चुम्बक
६—संयोजक-बटन
७—काँच की प्याली
८—लोहे का चूर्ण
९—लकड़ी का स्टैन्ड
१०—मोर्स-कोड का आलेख

पूर्वज्ञान—

(१) छात्र विद्युत-चुम्बक से भली-भाँति परिचित हैं।
(२) छात्र चुम्बक का लोहे पर प्रभाव जानते हैं।
(३) छात्र तार द्वारा समाचार भेजने की उपयोगिता समझते हैं।

प्रस्तावना—

अध्यापक एक साधारण उपकरण प्रस्तुत करेगा और निम्नलिखित ढंग से प्रश्न करेगा :—

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
१—इस लकड़ी के स्टैंड में यह क्या वस्तु लगी हुई है ?	(१) इस लकड़ी के स्टैंड में एक विद्युत-चुम्बक लगा हुआ है।
२—इस विद्युत-चुम्बक की छड़ किस वस्तु की बनी हुई है ?	(२) इस विद्युत-चुम्बक की छड़ लोहे की बनी हुई है।
३—(संयोजक-बटन को दबाकर) संयोजक-बटन को दबाकर इस विद्युत-चक्र में विद्युत प्रवाहित करने से विद्युत-पर क्या प्रभाव पड़ा ?	(३) विद्युत-चुम्बक में चुम्बकत्व उत्पन्न हो गया।

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
४—यह कैसे ज्ञात हुआ कि चुम्बक में चुम्बकत्व उत्पन्न हो गया ?	(४) विद्युत-चुम्बक ने लोहे के चूर्ण को अपनी ओर खींच लिया।
५—(संयोजक-बटन को छोड़कर) संयोजक-बटन छोड़ देने से विद्युत-चुम्बक पर क्या प्रभाव पड़ा ?	(५) संयोजक-बटन छोड़ देने से विद्युत-चुम्बक का चुम्बकत्व समाप्त हो गया।
६—यह कैसे ज्ञात किया कि विद्युत-प्रवाह रुक जाने से विद्युत-चुम्बक का चुम्बकत्व समाप्त हो जाता है ?	(६) विद्युत-प्रवाह रुक जाने से विद्युत-चुम्बक ने लोहे के चूर्ण को आकर्षित करना छोड़ दिया, इससे ज्ञात हुआ कि विद्युत-धारा के बन्द हो जाने से विद्युत-चुम्बक का चुम्बकत्व समाप्त हो जाता है।
७—सबसे सुगम और किस साधन द्वारा तुम शीघ्र समाचार भेज सकते हो ?	(७) हम तार द्वारा सुगमता से शीघ्र समाचार भेज सकते हैं।

उद्देश्य कथन—

हम आज यही अध्ययन करेंगे कि एक स्थान से दूसरे स्थान को तार द्वारा समाचार शीघ्रता से किस प्रकार भेजा जाता है।

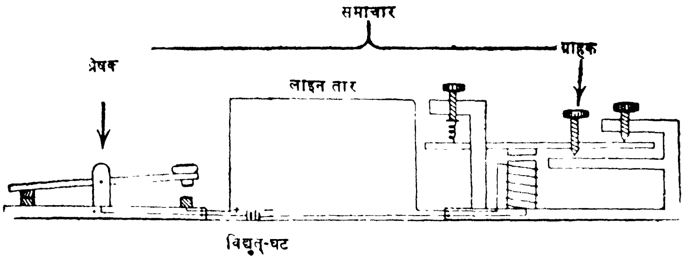

चित्र—२

पाठ्योपस्थान—

प्रथम-अन्विति

(शिक्षक समाचार-प्रेषक, समाचार-ग्राहक और

शुष्क विद्युत-घटों को संयोजक-तार द्वारा श्रेणी में सम्बन्धित करके समाचार-ग्राहक को छात्रों के समीप एक मेज पर रख देगा तथा प्रेषक-लीवर को दबाकर निम्नलिखित ढंग से प्रश्न करेगा—)

१—जब यह बटन दबाकर इस लीवर को छोड़ा जाता है तो तुम्हें उस यन्त्र से किस प्रकार की ध्वनि सुनाई पड़ती है ?	(१) हमें खट-खट की ध्वनि सुनाई पड़ती है।
२—इस उपकरण का हमारे दैनिक जीवन में क्या उपयोग है ?	(२) इस उपकरण द्वारा हम एक स्थान से दूसरे स्थान को समाचार भेजते हैं।

अध्यापक द्वारा—मेज पर रखे हुए इस यन्त्र को ट्रांसमीटर, समाचार-प्रेषक, मोर्स-की या डेमी कहते हैं और तुम्हारे समीप जो यन्त्र रखा है उसे रिसीवर, समाचार ग्राहक या मोर्स-साउण्डर कहते हैं।

३—मोर्स-की और मोर्स-साउण्डर आपस में किसके द्वारा सम्बन्धित हैं ?	(३) मोर्स-की और मोर्स-साउण्डर आपस में संयोजक-तारों द्वारा सम्बन्धित हैं।
४—मोर्स-की और मोर्स-साउण्डर के अतिरिक्त इस चक्र में और क्या वस्तु जुड़ी हुई है ?	(४) मोर्स-की और मोर्स-साउण्डर के अतिरिक्त इस चक्र में शुष्क विद्युत-घट जुड़े हुए हैं।

अध्यापक द्वारा—तार-घरों में शुष्क विद्युत-घटों के स्थान पर डेनियल विद्युत-घटों का प्रयोग होता है।

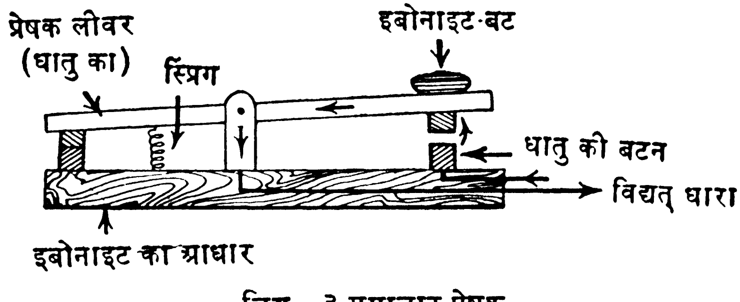

चित्र—३ समाचार-प्रेषक

५—तार द्वारा समाचार भेजने	(५) तार द्वारा समाचार भेजने

में किन-किन उपकरणों का प्रयोग होता है ?	में—(अ) समाचार-प्रेषक, (ब) समाचार-ग्राहक, (स) लाइन-तार और (द) विद्युत-घटों का प्रयोग होता है।

अध्यापक सूक्ष्म रूप से इस विधि के आविष्कार का इतिहास बतलाएगा।

६—(मोर्स-की दिखलाकर) इस समाचार-प्रेषक का आधार किस बस्तु का बना हुआ है ?	(६) इस समाचार-प्रेषक का आधार इबोनाइट का बना हुआ है।
७—इसका लीवर किस वस्तु का बना है ?	(७) इसका लीवर पीतल का बना है।
८—लीवर के इस सिरे पर यह घुन्डी किस वस्तु की लगी हुई है ?	(८) यह घुन्डी इबोनाइट की लगी हुई है।
९—लीवर में दूसरी ओर यह क्या लगा हुआ है ?	(९) लीवर में दूसरी ओर एक स्प्रिंग लगी हुई है।

अध्यापक बतलाएगा कि आधार में लगे हुए इन दोनों पेंचों को संयोजक-पेंच कहते हैं।

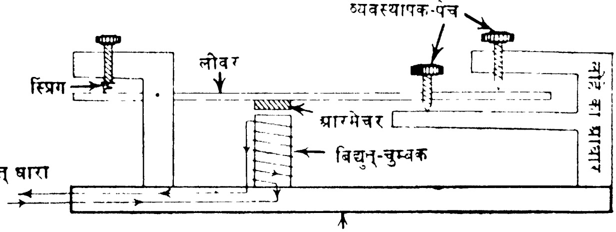

चित्र—४ समाचार-ग्राहक

१०–(समाचार-प्रेषक के आधार को दिखलाकर) इस संयोजक पेंच का सम्बन्ध किस वस्तु से है ?	(१०) इस संयोजक-पेंच का संबंध लीवर से है।

१३

११–दूसरे संयोजक-पेंच का संबंध किससे है ?	(११) दूसरे संयोजक-पेंच का सम्बन्ध आधार में लगी हुई पीतल की बटन से है।
१२–(मोर्स-साउण्डर दिखलाकर) मोर्स-साउण्डर का आधार किस वस्तु का बना हुआ है ?	(१२) मोर्स-साउण्डर का आधार लकड़ी का बना हुआ है।
१३–इसके लीवर में एक ओर यह क्या लगा हुआ है ?	(१३) इसके लीवर में एक ओर स्प्रिग लगी हुई है।
१४–इस लीवर का दूसरा सिरा इस समय किससे लगा हुआ है ?	(१४) इस लीवर का दूसरा सिरा इस समय ऊपर के पेंच से लगा हुआ है।
१५–लीवर को दबाने से इसके सिरे पर लगा हुआ पेंच किससे जाकर लग गया ?	(१५) लीवर को दबाने पर इसके सिरे पर लगा हुआ पेंच नीचे की लोहे की वस्तु से जाकर लग गया।
१६–लीवर में समकोण पर लगी हुई यह पट्टी किस धातु की बनी है ?	(१५) यह पट्टी लोहे की बनी है।

अध्यापक द्वारा—इस लोहे की पट्टी को आरमेचर और इन पेंचों को व्यवस्थापक-पेंच कहते हैं।

१७–इस आरमेचर के ठीक नीचे आधार पर ये क्या वस्तुएँ लगी हुई हैं ?	(१७) ये दो विद्युत-चुम्बक लगे हुए हैं।
१८–इन विद्युत-चुम्बकों पर जो तार लिपटा हुआ है उसके दोनों सिरे किस किस से सम्बन्धित हैं ?	(१८) विद्युत-चुम्बकों पर लिपटे हुए तार के दोनों सिरे आधार पर लगे हुए संयोजक पेंचों से प्रथक प्रथक सम्बन्धित हैं ?

श्यामपट्ट संक्षेप—

(अ) १८४४ में अमेरिका-निवासी मोर्स महोदय ने तार द्वारा समाचार भेजने की विधि का आविष्कार किया था।

(ब) तार द्वारा समाचार भेजने के लिए आवश्यक उपकरण—

१—समाचार-प्रेषक 　　　　३—लाइन-तार

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
२—समाचार-ग्राहक	४—विद्युत-घट

द्वितीय अन्विति

१—प्रेषक-लीवर के बटन को दबाने पर ग्राहक-लीवर में क्या परिवर्तन देखते हो ?	(१) ग्राहक-लीवर का व्यवस्थापक पेंच नीचे लोहे की वस्तु से लग जाता है।
२—ग्राहक-लीवर नीचे की ओर किस कारण से खिच जाता है ?	(२) ग्राहक-लीवर नीचे की ओर विद्युत-चुम्बक के चुम्वकत्व के कारण खिच जाता है।
३—विद्युत-चुम्बक में चुम्बकत्व कब उत्पन्न हो जाता है ?	(३) जब विद्युत-चुम्बक के तार में विद्युत-धारा बहने लगती है।
४—यह विद्युत-धारा कहाँ से चलना प्रारम्भ करती है ?	(४) विद्युत-धारा शुष्क विद्युत-घटों से चलना प्रारम्भ करती है।
५—विद्युत-घटों से निकलकर विद्युत-धारा किस रास्ते से आगे बढ़ती है ?	(५) विद्युत-घटों से निकलने के पश्चात् विद्युत-धारा प्रेषक के एक संयोजक-पेंच में प्रवेश करके लीवर से होती हुई दूसरे संयोजक-पेंच में पहुँचती है।
६—दूसरे संयोजक-पेंच के पश्चात् यह विद्युत-धारा कहाँ-कहाँ होती हई जाती है ?	(६) दूसरे संयोजक-पेंच के पश्चात् विद्युत-धारा ग्राहक के विद्युत-चुम्बकों पर लिपटे हुए तार में से होकर पुनः विद्युत-घटों में प्रवेश करती है।
७—प्रेषक-लीवर के बटन को छोड़ देने पर प्रेषक-लीवर ऊपर को उठकर इस पीतल के बटन से क्यों प्रथक हो जाता है ?	(७) प्रेषक-लीवर के बटन को छोड़ देने से प्रेषक-लीवर स्प्रिग के कारण ऊपर उठ कर पीतल के बटन से प्रथक हो जाता है।
८—इस पीतल के बटन से	(८) विद्युत-धारा रुक जाती है।

प्रेषक-लीवर के प्रथक होने पर विद्युत-धारा पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

९—विद्युत-धारा रुक जाने पर विद्युत-चुम्बक में क्या परिवर्तन हो जाता है ?

(९) विद्युत-धारा रुक जाने पर विद्युत-चुम्बक का चुम्बकत्व समाप्त हो जाता है।

१०—विद्युत-चुम्बक का चुम्बकत्व समाप्त हो जाने पर, ग्राहक-लीवर ऊपर उठकर ऊपर के व्यवस्थापक-पेंच से क्यों लग जाता है ?

(११) विद्युत-चुम्बक का चुम्बकत्व समाप्त हो जाने पर, ग्राहक-लीवर स्प्रिंग के कारण ऊपर उठकर ऊपर के व्यवस्थापक पेंच से जाकर लग जाता है।

११—प्रेषक-लीवर को एक बार दबा कर छोड़ देने पर ग्राहक लीवर कितनी बार खट-खट की ध्वनि करता है ?

(११) प्रेषक-लीवर को एक बार दबाकर छोड़ देने पर ग्राहक लींवर दो बार खट-खट की ध्वनि करता है।

१२—यदि प्रेषक-लीवर को दबा कर एक सेकिन्ड के बाद छोड़ दें तो ग्राहक-लीवर की इन दो ध्वनियों के मध्य लगभग कितना सयय लगेगा ?

(१२) ग्राहक लीवर की इन दो ध्वनियों के मध्य लगभग एक सेकिन्ड का ही समय लगेगा।

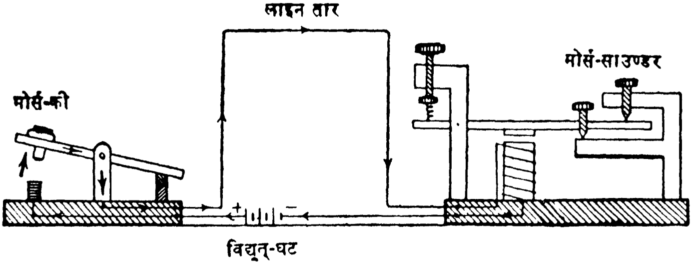

चित्र—५ तार द्वारा समाचार

१३—यदि प्रेषक-लीवर को

(१३) लगभग ५ सेकेन्ड।

दबा कर छोड़ने में ५
सेकेण्ड का अन्तर हो तो
ग्राहक को इन दो
ध्वनियों में समय का
लगभग कितना अंतर
होगा ?

शिक्षक द्वारा—यदि ग्राहक-लीवर को इन दो ध्वनियों में लगभग १/४ सेकन्ड का अन्तर हो तो तुम अपनी उत्तर पुस्तक में एक छोटा बिन्दु लगा दोगे और यदि १/२ सेकेण्ड के लगभग अन्तर हो तो एक छोटी रेखा खींच दोगे। यदि ग्राहक-लीवर लगभग एक या दो सेकेन्ड तक शान्त रहने के पश्चात् पुनः ध्वनि करना आरम्भ करे तो लगभग एक सेंटीमीटर स्थान छोड़ कर अपनी उत्तर पुस्तक पर चिन्ह लगाना प्रारम्भ करो। ग्राहक की ध्वनियों को ध्यान से सुनो।

चित्र—६ मोर्स-कार्ड

A .—	J .—	S ...
B —...	K —.—	T —
C —.—.	L .—. .	U . .—
D —. .	M — —	V ...—
E .	N —.	W ,— —
F .—.	O — — —	X —. .—
G — —.	P .— —.	Y —. — —
H	Q — —.—	Z — —. .
I . .	R .—.	

तत्पश्चात् शिक्षक कुछ संकेत प्रेषित करेगा।

१४—तुमने बिन्दु और रेखाएँ किस क्रम से रखी हैं ?

(१४) हमने बिन्दु और रेखाएं .——.के क्रम में रखो हैं।

१५—अब मान लो कि·—·से A
·—·से R
और——·से G
प्रकट होता है। बताओ
क्या समाचार भेजा गया ?

(१५) भेजा हुआ समाचार है 'AGRA'

फोल्डर खोलकर अध्यापक द्वारा—मोर्स महोदय ने प्रत्येक अंग्रेजी अक्षर के लिए इस प्रकार के संकेत निश्चित कर दिए हैं। इन संकेतों को मोर्स-कोड कहते हैं।

अब दूसरे फोल्डर को खोलकर अध्यापक उसपर बने हुए चित्र के प्रत्येक भाग का नाम छात्रों की सहायता से अंकित करेगा। तत्पश्चात् छात्रों को अपनी उत्तर पुस्तकों पर चित्र बनाने का आदेश देगा।

श्यामपट-संक्षेप : १—प्रेषक-लीवर को एक बार दबाकर छोड़ने पर ग्राहक-लीवर नीचे ऊपर टकरा कर दो ध्वनियां उत्पन्न करता है।

२—इन दो ध्वनियों के मध्य थोड़े समय को एक बिंदु द्वारा तथा अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय को एक छोटी रेखा द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

३—मोर्स-कोड की सहायता से इन चिन्हों को पढ़कर समाचार ज्ञात कर लिया जाता है।

पुनरावृत्ति-प्रश्न : १—यदि मैं पहले से ही अपने मित्र से कहदूँ कि वह मेरे द्वारा भेजे हुए समाचार में

A के स्थान पर उसका अगला अक्षर B लिखकर

P के स्थान पर उसका अगला अक्षर Q लिखकर

L के स्थान पर उसका अलगा अक्षर M लिखकर

इत्यादि, पढ़े जिससे समाचार गुप्त रहे। बताओ 'EHQRS' शब्द से वह क्या समझेगा ?

२—यदि प्रेषक-लीवर इबोनाइट का बना हुआ हो तो तार द्वारा समाचार भेजने की क्रिया पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

३—ऐसी कौन सी विधि हो सकती है जिससे समाचार-ग्राहक के ही द्वारा एक कागज पर विन्दु और रेखाओं के चिन्ह बन जाया करे ?

गृह-कार्य :—एक चित्र बनाकर तार द्वारा समाचार भेजने की विधि का वर्णन करो।

पाठ सूत्र—५

विद्यालय—मालवीय विद्यालय

दिनांग—१६-५-५५ **समय**—४० मिनट

अन्तर—द्वितोय

विषय—विज्ञान (रसायन विज्ञान)

उपविषय—पानी की पहिचान तथा भारी पानी की किस्में।

सामान्य उद्देश्य—(१) छात्रों में वैज्ञानिक ढंग से विचार करने की क्षमता उत्पन्न हो जाय।

(२) छात्रों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो जाय।

(३) छात्र वैज्ञानिक विधियों का व्यावहारिक जीवन में सदुपयोग कर सकें।

(४) छात्र विज्ञान की उपयोगिता समझ सकें।

(५) छात्रों में कुछ तथ्यों, सिद्धान्तों और प्रत्ययों का ज्ञान आ जाय।

विशिष्ट उद्देश्य—छात्रों को हल्के तथा भारी पानी की पहिचान कराना तथा इस बात का ज्ञान देना कि भारी पानी की कितनी किस्में होतीं हैं।

प्रस्तावना—

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
१—कुओं में कितने प्रकार का पानी मिलता है ?	(१) कुओं में दो प्रकार का पानी मिलता है।
२—किस किस प्रकार का पानी मिलता है ?	(२) किसी कुए में मीठा तथा किसी में खारी पानी मिलता है।
३—पानी खारी क्यों होता है?	(३) पानी खारी इसलिये होता है क्योंकि उसमें कुछ लवण मिले रहते हैं।
४—जिस पानी में लवण मिला होता है उसे खारी पानी के अतिरिक्त और क्या कहते हैं ?	(४) उसे भारी पानी कहते है
५—मीठे पानी को दूसरे किस नाम से पुकारते हैं ?	(५) मीठे पानी को हल्के पानी के नाम से पुकारते हैं।
६—यदि पानी का स्वाद नमकीन न हो परन्तु उसमें लवण मिले हों तो किस प्रकार पहिचानोगे कि वह हल्का पानी है अथवा भारी पानी ?	(६) सम्भवतः विद्यार्थी उत्तर नहीं दे पावेंगे।

उद्देश्य कथन—आज हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि हल्के तथा भारी पानी की पहिचान किस प्रकार की जा सकती है तथा भारी पानी की कितनी किस्में होती हैं।

नोट—पाठ का दो अन्वितियों में विभक्त किया जावेगा। पहिली अन्विति में हल्के तथा भारी पानी की पहिचान पढ़ाई जावेगी तथा दूसरी अन्विति में भारी पानी की किस्मों के बारे में पढ़ाया जावेगा।

प्रथम अन्विति-हल्के तथा भारी पानी की पहिचान

अध्यापक विद्यार्थियों को दो प्रकार का पानी दिखलायेगा। एक बीकर में हल्का तथा दूसरे में भारी पानी। उन्हें बतला दिया जावेगा कि

एक बीकर में नल का पानी है तथा दूसरे में खारे कुँए का पानी है ?

नल के पानी में साबुन घोलकर प्रश्न किया जावेगा—

१—तुम क्या देखते हो ?	(१) साबुन का झाग बन रहा है।
खारे पानी अर्थात भारी पानी में साबुन घोलकर प्रश्न किया जावेगा :	
२—अबकी बार तुम क्या देखते हो ?	(२) इस बार बहुत कम झाग बनता है।
३—तुमने इन दोनों पानी में साबुन घोलने में क्या अन्तर देखा है ?	(३) एक पानी में साबुन मिलने पर खूब झाग बनता है परन्तु दूसरे पानी में झाग बहुत कम बनता है।
४—जिस पानी में साबुन का झाग सरलता से तथा अधिक मात्रा में बनता है उसे कैसा पानी कहते हैं ?	(४) ऐसे पानी को हल्का पानी कहते हैं।
५—जिस पानी में साबुन का झाग सरलता से नहीं बनता तथा बहुत कम मात्रा में बनता है उसे कैसा पानी कहते हैं ?	(५) ऐसे पानी को भारी पानी कहते हैं।
६—पानी कितने प्रकार का हुआ ?	(६) पानी दो प्रकार का हुआ ?
७—कौन कौन से दो प्रकार का हुआ ?	(७) हल्का पानी तथा भारी पानी
८—हल्के तथा भारी पानी को किस प्रकार पहिचानोगे ?	(८) हल्के पानी में साबुन का झाग सरलता से तथा अधिक मात्रा में बन जावेगा परन्तु भारी पानी में साबुन का झाग

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
	सरलता से नहीं बनेगा और मात्रा में भी कम बनेगा।

श्यामपट संक्षेप—

पानी दो प्रकार का होता है—हल्का पानी तथा भारी पानी। हल्का पानी साबुन के साथ सरलता से अधिक झाग बनाता है परन्तु भारी पानी साबुन के साथ कठिनाई के साथ झाग बनाता है और कम झाग बनाता है।

द्वितीय अवन्विति—भारी पानी की किस्में।

१—पानी भारी क्यों हो जाता है ?	(१) पानी भारी इसलिये हो जाता है क्योंकि उसमें कुछ लवण मिले रहते हैं।
२—ये लवण पानी में कहाँ से मिल जाते होंगे ?	(२) ये लवण पानी में पृथ्वी के अन्दर प्राकृतिक रूप में मिल जाते होंगे।
अध्यापक स्वयं बतलायेगा कि भारी पानी में अधिकतर कैलशियम तथा मैगनीशियन के लवण मिले रहते हैं।	
३—कुछ मैगनीशियम के लवणों तथा कैलशियम के लवणों का नाम नाम बताओ (भिन्न भिन्न विद्यार्थियों से)	(३) मैगनीशियम बाइकारबोनेट, कैलशियम बाइकारबोनेट, मैगनीशियम सल्फेट, कैलशियम सल्फेट
अध्यापक बतलायेगा भारी पानी में या तो मैगनीशियम तथा कैलशियम बाइकारबोनेट होते हैं या इनके सल्फेट होते हैं।	
४—पानी में लवण दीखता क्यों नहीं है ?	(४) लवण उसमें घुली दशा में रहता है।
५—यदि हम पानी से लवण को	(५) उसे अनघुल दशा में लेआना

बाहर हटाना चाहें तो उसे कैसी दशा में ले आना चाहिये ?

चाहिये।

६—केलशियम बाइकारबोनेट अथवा मेंगनीशियम बाइ-कारबोनेट को गरम करने पर क्या प्रति क्रिया होती है ?

(६) केलशियम बाइकारबोनेट तो केलशियम कारबोनेट में परिणित हो जाता है तथा मेंगनीशियम बाइकार-बोनेट मेंगनीशियम कारबो-नेट में परिणित हो जाता है।

अध्यापक बतला देगा कि कारबोनेट लवण अनघुल होते हैं और बाइकारोनेट घुलित होते हैं।

७—यदि हमें भारी पानी से लवण दूर करना हो तो हमें क्या उपाय करना चाहिए।

(७) हमें पानी को उबाल लेना चाहिए।

८—इससे क्या होगा ?

(८) इससे लवण अनघुल दशा में परिणित हो जावेंगे।

९—इन अनघुल लवणों को पानी से किस प्रकार अलग किया जा सकता है ?

(९) इन्हें छानकर अलग किया जा सकता है।

१०—इन लवणों के हट जाने पर पानी कैसा बन जावेगा ?

(१०) इन लवणों के हट जाने पर भारी पानी हल्का हो जावेगा।

अध्यापक बतला देगा कि जिस पानी को केवल उबा-लने से उसके भारीपन को दूर किया जा सकता है उसे अस्थाई भारी पानी कहते हैं।

११—अस्थाई भारी पानी में कौन

(११) केलशियम तथा मेंगनी-

कौन से लवण घुले होते हैं ?
अध्यापक बतलायेगा कि जिस पानी में कैलशियम तथा मैगनीशियम के सल्फेट मिले होते हैं उन्हें गरम करने पर लवण अनघुल दशा में नहीं आते ।

शियम के बाइकारबोनेट

१२–जिस भारी पानी में कैलशियम तथा मैगनीशियम सल्फेट मिले होते हैं उसे हल्का करने के लिए उसको उबालने से क्या लाभ हो सकता है ?
अध्यापक बतला देगा कि जिस भारी पानी को केवल उबालने से हल्का नहीं किया जा सकता है उसे स्थाई भारी पानी कहते

(१२) पानी को उबालने से कोई लाभ न हो सकता है ।

१३—स्थाई भारी पानी मे कौन कोन से लवण घुले रहते है ?
अध्यापक बतला देगा कि स्थाई भारीपानी को हल्का बनाने के लिये उसमें सोडियम कारबोनेट मिला देते हैं। इससे वे कारबोनेट लवण में बदल जाते हैं ।

(१३) स्थाई भारी में मैगनीशियम तथा कैलशियम सल्फेट घुले मिले रहते हैं ।

१४—स्थाई भारी पानी को हल्का किस प्रकार बनाया जा सकता है ?

(१) स्थाई भारी पानी को हल्ला बनाने के लिये उसमें सोडियम कारवोनेट मिलाकर उसे छान लेना चाहिये ।

श्यामपट संक्षेप—भारी पानी में दो प्रकार के लवण होते हैं या तो कैलशियम तथा मैगनीशिय के बाइकारबोनेट या उनके सल्फेट। जिस पानी में बाइकारबोनेट, लवण होते हैं उसे उबाल कर और फिर छान कर उसे हल्का बनाया जा सकता है। ऐसे भारी पानी को अस्थाई भारी पानी कहते हैं। जिस पानी में सल्फेट लवण मिले होते हैं उसे स्थाई भारी पानी कहा जाता है। उसे हल्का करने के लिये उसमें सोडियम कारबोनेट मिलाकर उसे छान लेते है।

पुनरावृति :—

(१) पानी कितने प्रकार का होता है ?
(२) भारी पानी में कौन से पदार्थ घुले रहते हैं ?
(३) हल्के तथा भारी पानी को किस प्रकार पहिचानोगे ?
(४) भारी पानी कितने प्रकार का होता है ?
(५) अस्थाई भारी पानी में कौन २ से लवण घुले रहते हैं।
(६) अस्थाई भारी पानी को हल्का किस प्रकार बनाया जा सकता है ?
(७) स्थाई भारी पानी में कौन २ से लवण घुले रहते हैं ?
(८) स्थाई भारी पानी को हल्का किस प्रकार बनाया जा सकता है ?

गृह कार्य :—(१) पानी कितने प्रकार का होता है तथा उनको किस प्रकार पहिचानोगे ?

(२) भारी पानी कितने प्रकार का होता है ? उनमें कौन कौन से लवण मिले रहते हैं ? प्रत्येक प्रकार के भारी पानी को हल्का बनाने की विधियों का वर्णन करो।

परिशिष्ट-१

(उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की प्रयोगशाला के लिए आवश्यक यन्त्रों तथा सामग्री की सूची)

(a) APPARATUS

Quantity	Item
1	Ammeter
12	Balances
12	Balance cases for above
1	Balance, demonstration
12	Balance, spring 1-100 g
1	Balance, spring (Dairy scale), 0-1000 g
6	Balances, spring, 50 g-2 kg
1	Balance, spring, 50 g-4 kg
1	Ball and ring apparatus
36	Ball bearings
1	Bar, compound iron
1	Bar and gauge
1	Barometer, aneriod
1	Barometer, siphon
48	Basins, evaporating, 85-105 mm
15	Baths, water, with rings

24	Beakers, Pyrex, 100 cc.
24	Beakers, Pyrex 250 cc.
24	Beakers, Pyrex, 400 cc
6	Beakers, Pyrex, tall, 600 cc
1	Bell, electric, large
1	Bell, electric, small
12	Blocks, glass, 10 x 5 x 2.5 cm
12	Blocks, glass, cube, 2.5 cm
3	Blocks glass, semicircular, 9 cm
12	Blocks, wood, 8 x 8 x 4 cm
15	Blowpipes, 20 cm
12	Bobs, pendulum, lead
48	Borers, Cork
15	Bottles, 25 cc
6	Bottles, cast iron for bursting
144	Bottles, reagent, 250 cc, stoppered
36	Bottles, reagent, 175 cc, stoppered
36	Bottles, reagent, 250 cc, unstoppered, rubber corks
1	Breaking bar apparatus
6	Brushes test tube
2	Bucket and cylinder apparatus
15	Burettes, without tap, 50 cm
17	Burners, Bunsen
3	Calipers, vernier sliding, steel
6	Calipers, vernier sliding, wood
12	Calipers, in and outside
6	Calorimeters, complete, brass
6	Calorimeters, complete, iron
12	Cans, Calormeter
6	Cans, overflow
1	Capillarity apparatus
2	Casseroles, 150 cc
1	Cell, Leclanche
1 set	Charts, wall, human physiology
18	Clamps, boss-head
18	Clamps, retort
6	Clips, screw
18	Clips, spring
1 pr	Coil, electrical induction
1	Coil, floating
1	Coil, induction

1 Compass : mariner's model
12 Compasses, pocket
1 Condenser, Liebig, 50 cm
1 Conductivity apparatus
1 Counter, revolution
48 Covers, gas-jar
48 Crucibles, and lids
12 Crucibles, nickel, 25 cc
30 Cubes, 1 cm : Cu, Brass, Al, Zn, Wood
1 Cube, decimetre, tin
1 Cylinder, graduated, 5 cc
1 Cylinder, graduated, 10 cc.
3 Cylinders, graduated, 25 cc
6 Cylinders, graduated, 50 cc
12 Cylinders, graduated, 100 cc
12 Cylinders, graduated, 250 cc
1 Cylinder, graduated, 500 cc
1 Cylinder, graduated, 1000 cc
1 set Cylinders, metal for specific heat
6 Cylinders, wood, 4 x 4 cm
4 Dessicators, 12 cm
6 Diagrams for chemical lectures : Blast furnaces, ammonia-soda process, coal gas manufature, synthetic ammonia, ice plant, aluminium furnace
4 Diagrams, wall : maize, sunflower, fungi,mushroom
15 Diagrams, anatomical wall : rabbit, amoeba, spirogyra, sea-weed, moss, fern paramecium, hydra, earthworm, cockroach snail, dogfish, carp, frog, bird
1 Diamond, writing
1 Disc, Newton's with motor
6 Discs, wood, 10 x 2 cm
12 Dishes, dissecting
1 Davy's Safety Lamp

Electrical accessories :
72 Board-plugs and nuts "Electrano"
6 sets Connecting links
72 Hexagon lock-nuts
36 Insulating strips

12	Lamp-holders
72	Metal Strips, 5 cm
72	Metal strips, 2.5 cm
72	Nuts, terminal
4	Pinch plugs
36	Ptates, copper, lead, zinc (12 of each)
2 sets	Plug-board ("Electrano" or others)
72	Ruber pads
1	Series socket
72	Sockets
72	Socket plugs
72	Terminal, telephone
1 set	Electrical instruments ("Nivoc" or similar)
1 pr	Electrodes, Pt
1	Electro-magnet, lifting, 6 cm
1	Engine, hot-air
3	Flasks, hard glass, Rb 175 cc.
24	Flasks, Pyrex, 250 cc
24	Flasks, Pyrex, FB 500 cc
12	Flasks, Pyrex, conical, 300 cc
6	Flasks, Pyrex, conical, 500 cc
3	Flasks, Pyrex, RB 1000 cc
12	Flasks, Pyrex, RB 200 cc
2	Flasks, Thermos
1 pr	Forceps, blunt
1 pr	Forceps, bone
1 pr	Forceps, sharp
1 pr	Forceps, stainless, blunt
1 pr	Forceps, stainless, sharp
4	Forks, tuning
1 set	Funnels, filling, glass, small
18	Funnels, filter, 7.5 cm
2	Funnels, filter, 10 cm
2	Funnels, filter, 13 cm
1	Funnel, filter, 15 cm
1	Funnel, filter, 20 cm
5	Funnels, tap, 100 cc
24	Funnels, thistle, 20 cm
1	'g' apparatus
3	Gauges, micrometer screw, 10 cm
12	Gelatines, flood-light, coloured

36		Glasses, watch, 5 cm
36		Glasses, watch, 6.5 cm
2		Hares apparatus
1		Heater, immersion, 500 watt.
1	pr	Hemispheres, Magdeburg
2		Hydrometrs, O. 7 to 1
2		Hydrometers, 1 to 2
1		Hygrometer, wet and dry bulb
1		Hygrometer, paper and bimetallic thermometer
3		Hypsometers, glass
2		Indicators, Crompton Universal, complete
1		Jar, bell, 3 l, no tubulure
1		Jar, bell, 3 l, tubulure
1		Jar, bell, open flanged, 18 x 12 cm
48		Jars, gas, with covers, 20 x 5 cm
1		Kipp's apparatus
1		Klinostat (Geotropism)
1		Knife cork
2		Ladometer
1		Lamp arc
1		Lamp, clanny
1		Lamp, Davy
1		Lantern, projection, 15 cm lens with micro-projection, attachment and 2 screens
2		Lenses, hand 25 mm
4		Lenses, double concave, 50 mm, f=20 cm
4		Lenses, double concave. 50 mm, f=30 cm
4		Lenses, double convex, 50 mm, f=10 cm
4		Lenses, double convex, 50 mm, f=20 cm
4		Lenses, double convex, 50 mm, f=30 cm
1		Level, water
48		Magnets, CoCr, 5 x 0.5 cm
2		Magnets, bar, CoCr 15 x 0.5 x 0.5 cm
6		Magnets, horse shoe, 10 cm
1		Measure, 1000 cc enamelled
1		Microphone, carbon
1		Microscope
1		Mirror, cylinderical concave
1		Mirror, cylinderical convex
6		Mirrors, spherical, concave
6		Mirrors, spherical, convex

24	Mirror strips, plain 7.5 x 2.5 cm
15	Mortars and pestels, 11 cm
1	Motor, St. Louis
Models	
4	Anatomical models : Food canal, lungs, heart and thorax, skin section, eye, jaw and teeth, ear, kidney, head
1	Babcock boiler and slide-valve steam engine model
1	Force-pump model, glass
1	Lift-pump model, glass
1	Model each : paramecium, hydra, frog skeleton, rabbit skeleton
1	Needle, dip
36	Needles, dissseting, rustless
6	Opisometers (map measurer)
1	Optical demonstration apparatus
1	Oven, heating, 37-110° C with thermostatic control
1	Pascal's apparatus
24	Pints, Winchester, stoppered
1	Pipe, organ
6	Pipettes, 1 cc
6	Pipettes, 25 cc
6	Pipettes, 50 cc
1	Plane, inclined, apparatus
2	Plates, ground glass, 20 cm
6	Prisms, glass, 60° x 60° x 60°
6	Prisms, glass, 90° x 45° x 45°
3	prisms, glass, 90° x 60° x 50°
3	Prisms, glass, 75° x 75° x 30°
1	Prism, glass, hollow
12	Pulleys, bakelite, single
6	Pulleys, bakelite, double
6	Pulleys, bakelite, treble
1	Pump, air
1	Pump, filter, Cr plated
1	Pump filter, glass
2	Pyrometers
1	Resistance, sliding, mains
6	Retorts, stoppered, 125 cc
1	Rheostat, sliding, 2 A 41 ohm

12	Rulers, wood, 1 m, mm & in
12	Rulers, wood, O.50 cm, mm & in
1	Sandglass, 1 min
1 pr	Scales, Beranger
24	Scissors, dissecting
1	Screw-jack apparatus
5	Sieves, various meshes
1	Sieve receiver and cover for above
1	Siren
76	Slides, microscope, and cover strips
24	Slides, micro—: leaf, stem, root
1	Slide-rule
24	Spatulas, horn, 10 cm
1	Spinthariscope
15	Stands, filter
4	Stands, gas-jar, stoneware
2	Stands, gas-jar, glass
18	Stands, retort
2	Stands, retort, big
15	Stands, test-tube
15	Stands, tripod
1	Stereoscope
1	Stop-clock
1	Syringe, glass
12	Thermometers, 0-100 °C x 1/5°
12	Themometers, -10-100 °C x 1°
12	Themometers, 32-220° F x 1°
6	Thermometers, for filling
1	Thermometer, clinical
3	Thermometers, ungraduated
1	Thermometer, maximum
1	Thermometer, minimum
12	Tiles, square, white, 10 x 10 cm
15	Tongs, crucible, 20 cm
1	Transformer and rectifier
12	Traps, steam, glass
1	Tray, mercury, 30 x 30 cm
36	Trays, sand bath
24	Triangles, pipeclay
1	Trough, gas, glass, 25 cm
15	Troughs, gas, stoneware

2	Troughs, mercury, glass, 6 cm
3	Tubes, berometer, straight
1	Tube, gas, 25 cc, with tap
1200	Tubes, test, various sizes
6	Tumblers
1	Vacuum-vessel with unsilvered strip
1	Voltmeter
12 sets	Weights, commercial
1 set	Weights, 1/4 oz-2 lb.
1 set	Weights, 1 g-1 kg, brass
12 sets	Weights (spare) 0·01-2 g
1	Wheel and axle

(b) TOOLS

5	Auger bits, for carpenter's braces
12	Blades, hack saw
1	Block, mild steel,
1 set	Borers, cork
1	Brace, carpenter's, with ratchet
2	Bradawals
2	Calipers, inside and outside
2	Chisels cold
4	Chisels, wood
1 set	Countersink bits
1	Dividers, steel 15 cm
1	Drill, hand, 3-jaw chuck
1 set	Drills, twist
10	Files, different sizes and forms, with handles
1	Frame, hack saw
2	Gimlets
1	Glass cutter, diamond
1	Gouge, scribing
1	Grinder and polisher
2	Hammers
1	Lathe, 10 cm centres
1	Mallet, joiners
1	Motor, electric for grinder and polisher
1	Oilcan
2	Oilstones, coarse and fine
1	Plane, jack
1	Plane, smoothing

1	Pr	Pliers, electricians
1		Punch, centre
2		Rasps
1		Rule, carpenter's folding
1		Rules, steel, in cm
1		Saw bow
1		Saw, panel
1		Saw, tenon
2		Scribers
5		Screw drivers
1		Shearing machine
2	pr	Snips, tinman's
2		Soldering irons
1	set	Spanners
1		Spirit lavel
1		Spoke shave
1		Square, try, steel
2	sets	Stocks and dies
2		Stone slips for sharpening
1		Vice, parallel
1		Vice, woodworker's

(c) GENERAL SUPPLIES

5	g	Asbestos, platinized
288		Corks, assorted
120		Corks, rubber, assorted
10		Gauzes, copper wire, 10 x 10 cm
1	kg	Paper, emery, assorted
12	pkg	Paper, filter, 9·24 cm
1	pkg	Paper, sand, assorted
1	ream	Paper, transparent squared
2	m	Parchment, 50 mm
144		Pins, blanket
3	kg	Rods, glass, 3-7 mm
1		Spiral, Brass wire
24		Tubes, $CaCl$, straight
1·5	kg	Tubes, capillary, glass
5	kg	Tubes, glass, assortment, 3-7 mm
12		Tubes, glass, 25 x 450 mm
15	m	Tubes, rubber, various sizes
8	m	Tubes, rubber, pressure

2	Tubes, silica,
200	Tubes, specimen, 25 x 50, 70 & 100 mm
12	Tubes, thick glass, 50 x 100 mm
48	T-tubes, glass, 4 & 6 mm
30	U-tubes, glass 20 x 120 mm & 600 mm
1500 g	Wire, copper, bare, 0·5-0.4-0.3 mm
100 g	Wire, NiCr, 4·5 mm & 0.2 mm
100 g	Wire, phosphor brozne, 0.3 mm
100 g	Wire, piano brass
100 g	Wire, piano steell

(d) CHEMICALS

250 g	Acetic acid
250 g	Acetone
0.5 l	Alcohol, absolute
250 g	Alcohol, methylated
0·5 l	Alcohol, rectified
250 g	Aluminium foil, thin
250 g	Aluminium sheet, 0·5 mm
100 g	Aluminium wire, 1 mm
2 l	Ammonia, 0.910
100 g	Ammonium molybdate
250 g	Ammonium nitrate
100 g	Ammonium oxalate
250 g	Ammonium sulphate
500 g	Aniline
25 cc	Aniline, HCl solution
2 Kg	Anthracite
250 g	Antimony powder
500 g	Arsenious oxide
125 g	Asbestos, mineral, lump
125 g	Asbestos paper
125 g	Asbestos tape, 25 mm
250 g	Asbestol wool
250 g	Barium chloride
250 g	Barium hydroxide
500 g	Banzene
500 g	Bleaching powder
25 cc	Borax carmine solution
25 cc	Bromo-phenol blue indicator solution
100 g	Calcium metal shavings

3500 g	Calcium chloride
250 g	Calcium nitrate
100 g	Calcium phosphate, di-acid
250 g	Calcium sulphate, pure
100 g	Camphor
3 Kg	Carbon di-sulphide
100 g	Carborundum powder, coarse
100 g	Carborundum powder, fine
25 g	Carmine, finest powder
100 g	Casein, soluble
500 g	Charcoal, animal, granulated
100 g	Chatterton compound
500 g	Chloroform
250 g	Citric acid
25 g	Cloves, oil of
2 kg	Coal, bituminous
1	Coal fossils specimen
100 g	Cobalt chloride
5 g	Congo rod, solid
500 g	Copper foil
500 g	Copper, granulated
100 g	Copper acetate
250 g	Copper carbonate
500 g	Copper oxide, tech, powder
3 kg	Copper sulphate, crystal
100 g	Dextrin, pure
500 g	Dextrose
500 g	Dextrose, anhydrous
500 g	p-dichlorobenzene
25 cc	Eosin solution
500 g	Ether, 0.730
25 g	Fellis Bovini extract
100 g	Ferric phosphate, soluble
25 g	Fluorescein, souble
2 l	Formalin
25 g	Fructose
25 g	Galactose
125 g	Galatine, sheet
500 g	Glycerine
25 g	Glycine
250 g	Graphite, lump

25	cc	Haematoxylin
8	l	Hydrochloric acid
5	g	Invertase
100	g	Iodine
25	g	Iodoform
3	kg	Iron filings, coarse
3	kg	Iron filings, fine
100	g	Iron powder, reduced
100	g	Iron wire
250	g	Iron oxide, magnetic, lump
500	g	Iron sulphide, sticks
250	g	Lactose
500	g	Lampblack
250	g	Lead foil
500	g	Lead, gran
500	g	Lead shod
250	g	Lead wire
100	g	Lead acetate
500	g	Lead carbonate
500	g	Lead nitrate
500	g	Lead oxide, powd.
2	kg	Lignite
100	g	Litmus
48	bk	Listmus paper, blue
48	bk	Litmus paper, red
50	g	Magnesium ribbon
25	g	Megnesium wire
500	g	Magnesium carbonate
250	g	Magnesium nitrate
250	g	Magnesium sulphate
25	g	Maltose
3	g	Manganese dioxide, powd.
250	g	Mercuric oxide, red
25	g	Mercuric sulphate
3	kg	Mercury
25	g	Methyl violet
25	cc	Methylene blue solution
100	g	Millon's reagent
1	kg	Naphthalene marbles
25	g	X-Naphthol
25	cc	Neutral red indicator solution

25 g	Nickel foil
2 l	Nitric acid
250 g	Oleic acid
100 g	Palmitic acid
25 g	Pancreas, dried
1 kg	Paraffin wax
2 kg	Peat
25 g	Pepsin, granulated
25 cc	Phenol red indicator solution
5 g	Phenolphthalein, indicator
100 g	Phosphoric acid, sticks
250 g	O-Phosphoric acid
250 g	Phosphorus, powder, red
500 g	Phosphorus, yellow
3 kg	Plaster of Paris
5 cm^2	Platinum foil
25 g	Potassium metal in naphtha
3 kg	Potassium chlorate
250 g	Potassium chloride
500 g	Potassium dichromate
500 g	Potassium ferricyanide
100 g	Potassium ferrocyanide
250 g	Potassium hydroxide, pellets
100 g	Potassium iodide
3.25 kg	Potassium nitrate
100 g	Potassium oxalate
500 g	Potassium permanganate
25 g	Potassium thiocyanate
25 g	Pyrogallol
10 g	Quinine hydrochloride, soluble
1 kg	Rock salt, lump
1 tube	Rubber grease
25 cc	Safranin solution
25 g	Sapon in
25 g	Schultze solution
100 g	Silicon, lump
25 g	Silver nitrate
500 g	Soap, soft, green
500 g	Soda-lime
250 g	Sodium metal in naphtha
250 g	Sodium acetate, anhydrous

1 kg	Sodium bicarbonate
500 g	Sodium carbonate, anhydrous
3 kg	Sodium carbonate
3 kg	Sodium chloride
250 g	Sodium citrate
100 g	Sodium hydrosulphate
1 kg	Sodium hydroxide, pellets
500 g	Sodium hypochlorite, solution
100 g	Sodium phosphate
500 g	Sodium potassium tartrate
500 g	Sodium silicate solution
250 g	Sodium sulphate
500 g	Starch, potato
500 g	Stearic acid
500 g	Steel fillings, coarse
100 g	Sucrose
500 g	Sulphur, native mineral
1 kg	Sulphur, roll
1 kg	Sulphur, sublimed
1	Sulphur, troxide tube, specimen
4 l	Sulphuric acid, 95-98%
25 g	Thymol
100 g	Tin foil
100 g	Tin, granulated
500 g	Toluene
100 g	Urea
500 g	Vaseline, yellow
1	Wax stick
500 g	Wool, cotton, absorbent
100 g	Wool, glass
500 g	Xylene
250 g	Zinc foil
3 kg	Zinc
250 g	Zinc carbonate
500 g	Zinc oxide

सहायक पुस्तकों की सूची

(BIBLIOGRAPHY)

1. Armstrong, H. E. : 'The Teaching of Scientific Method', Macmillan Co. New York, 1910.
2. Brown, J. : 'Teaching of Science in Schools',University, Press, London, 1945.
3. Croxton, W. E. : 'Science in Elementary School'; Mc-Graw Hill Book Co., New York, 1947.
4. Dewey, J. : 'Method in Science Teaching'; The Science Teacher', XXII, April, 1955.
5. Downing, E. R. : 'Children's Interest in Nature Materials'; Nature Study Review, 1912.
6. Hurd, A. W. : 'Summary of a Factual Questionnaire on the Teaching of Perspective Teachers of Science'; Science Education, 1931, 1932.
7. Hunter, C. W. : 'Science Teaching'; American Book Co., New York, 1934.
8. Heiss, E. D., Obourn, E. S., Hoffman, C. W. : 'Modern Science Teaching'; The Macmillan Co., New York, 1955.

9. Johnson, P.O. : 'A Comparison of Lecture-Demonstration Group Laboratory Experimentation, and Individual Laboratory Experimentation, Method of Teaching High School Biology'; Journal of Educational Research, Sept. 1928.

10. Kilpatrick, W. H. : 'Project Teaching'; General Science Quarterly, No. 2, Vol. 1, 1917.

11. New-Bury : 'Teaching of Chemistry'; William Heinmann, Russell Street, London, W.C. 1., 1934.

12. Palmer, E. L. : 'How to meet some of Children's Nature, Interests'; Nature Study Review, Janu., Feb. 1922.

13. Peel, E. A. : 'Psychology and Teaching of Science'; Brit. J. Psy., Vol XXV, Part III, Nov. 1955.

14. Rawat, D. S. : 'A Comparative Study of the Standard of General Science in Certain Secondary Schools in England and in U. P. (India) for Pupils of a Chosen Age Range'; M. A. Education Thesis, Birmingham University, England, 1956-57.

15. Richardson, J. S., Cahoon. G. P. : 'Methods and Material for Teaching General and Physical Science'; McGraw Hill Book Co., INC, New York, London, Toronto, 1951,

16. Robertson, M. L. : 'A Basis for Selection of Course Content in Elementary Science'; Ph. D. Thesis, University of Michigan, 1933.

17. Sumner, W. L. : 'The Teaching of Science'; Oxford, Basil Blackwell, 1950.

18. Watkins, R. K. : 'Technique & Value of Project Teaching in General Science'; General Science Quarterly, May, Nov. 1923, Janu. 1924.

19. Westaway, F. W. : 'Science Teaching'; Blackie & Sons, Ltd., London, 1947.

20. Zim, H. S. : 'Science Interests and Activities of Adolescents'; Teachers College, Columbia University, New York, 1940.

21. 'UNESCO Source Book For Science Teaching'; UNESCO 1956.

22. 'The School Science Review' : Edt. Dyball, R. H.; Publisher, John Murray Ltd. Albemarle Street, London.

23. 'Report on the Teaching of General Science'; Albemarle Street, London, Published by John Murray, 1941.

24. 'Vigyan Shikshak'—'The Science Teacher' Edt.—Wanchoo—The All India Science Teachers Association; 33 Probyn, Road, Delhi—8.

—: • :—